0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

गु
नार

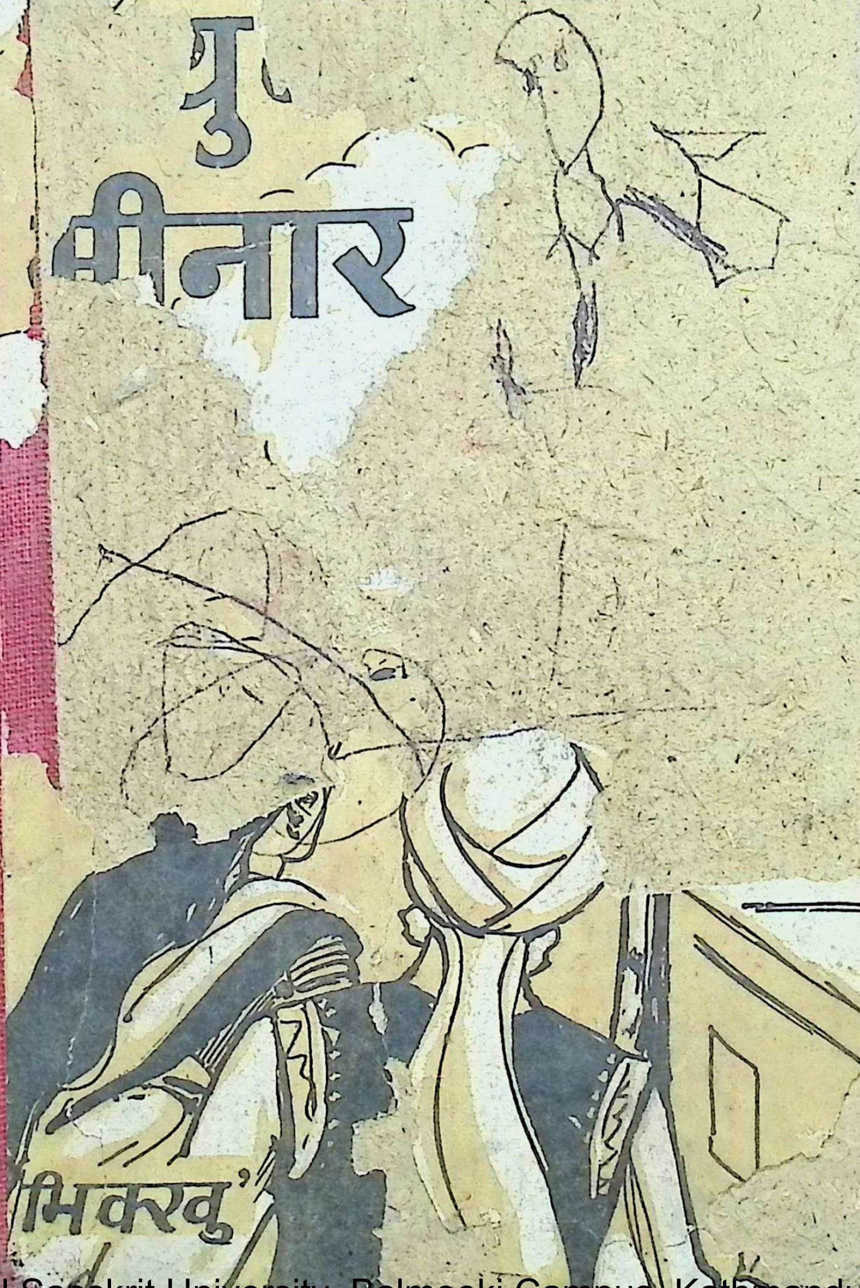

भिक्खु

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MH

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पि. [illegible]

५५१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri. Funding: M

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मृत्यु की मीनार

[कहानी-संग्रह]

❖

पि. ५५१

'भिक्खु'

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी–१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: Mi

संस्करण : द्वितीय
११००
फरवरी : १९६४

मूल्य [illegible] रुपए मात्र

९२६२८

प्रकाशक	मुद्रक
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय	भोला प्रिंटिंग वर्क्स
पो. बॉ. नं. ७०, पिशाचमोचन	पियरी कलाँ
वाराणसी-१	वाराणसी-१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जिनका विमल स्नेह

सदा मेरा जीवन-संबल रहा, उन्हीं अपनी

जीजी शकुन्तला मिश्र तथा जीजा जी

पं० धारादत्त जी मिश्र को

साभार समर्पित !

—'भिक्खु'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मंगलाचरणम्

अथ मंगलाचरणम् ! मंगलाचरण की पद्धति अब नहीं रही। वह तो प्राचीन साहित्यकारों की आत्म-भीरुता का प्रमाण है। अब तो "अयं अहं भोः" का युग है! शकुन्तला क्यों दुष्यंत की ही चिंता में खोई रहे? क्यों न दुर्वासा का भी ध्यान रखे? अतः लेखक ने भी घोषणा की—"अयं अहं भोः।" यही घोषणा बनी भूमिका। कृति से अधिक कृति की भूमिका। जो मूल में नहीं कहा जा सका, उसे भाष्य या वार्त्तिक में कहने की भूमिका। मैं भी क्यों चूकता! बस भूमिका के स्थान पर मंगलाचरण लिख दिया। है न कौशल की बात! हमारे युग का यही मंगल आचरण है।

पर मंगलाचरण की परंपरा के अनुसार तो मुझे ईश्वरी शक्तियों के प्रसाद की याचना करनी चाहिए। तो मैं भी अपने मंगल के लिए आज की ईश्वरी शक्तियों—क्रेता, विक्रेता, प्रकाशक, पाठक, समालोचक के अनुग्रह की याचना करूँ। पर इतनी भूमिका बाँध कर चुप रहना ही श्रेयस्कर है; क्योंकि किसी समझदार ने कहा है—माँगे मिले न भीख! इति मंगलाचरणम् समाप्यते!

:o: :o: :o:

[जब मंगलाचरण तो भरतवाक्य भी। कायदे से तो यह पुस्तक के अन्त में आना चाहिए। पर मैं प्रारम्भ में दे रहा हूँ। कारण कि कहीं आप पुस्तक को रुचिकर न पा कर भरत-वाक्य तक पहुँच ही न पाएँ। तो इसके पढ़े जाने की संभावनाएँ तो दृढ़ कर ही लूँ।]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MoE

अथ भरतवाक्यम्

इस पुस्तक के लेखक को चाहे अर्थ न मिले, यश भी न मिले। प्रकाशक का पहला संस्करण भी न बिके, आलोचक प्रतिकूल रहें और पाठक पढ़ने में धीरज खो बैठे, पर इस ग्रन्थ के मुनि का वचन है कि इसमें आप वही पायँगे, जो आप हैं और अपने जिस रूप को प्रायः अस्वीकार करते रहे हैं।

इति भरतवाक्यम् !

:o: :o: :o-

पुनश्च

अब 'दो शब्द' नवीन परम्परा के अनुसार भी। इन २२ कहानियों में मेरे कृतित्व के शैशव के १५ वर्ष हैं। सन् १९४० से '५५ तक जो बहुत-सी कहानियाँ लिखीं और यत्र-तत्र छपीं, उन्हीं का यह मधुकरी चयन है। यह संयोग ही है कि 'मृत्यु की मीनार' नाम के अनुरूप ही इस संग्रह की अधिकांश कहानियों में मृत्यु की चर्चा है या जहाँ मृत्यु नहीं वहाँ विषाद है, जहाँ विषाद नहीं वहाँ विफलता है या कोई न्यूनता।

पुनःपुनश्च

श्री कृष्णचन्द्र बेरी को संग्रह के प्रकाशन के लिए धन्यवाद !

—'भिक्खु'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

अनुक्रम

	पृ. सं.
१. मन की सलवटें	११
२. काल-अकाल	१६
३. हाँ, मेहरबानसिंह !	२५
४. अन्धेरे की दुनिया	५४
५. जागते रहो	८०
६ सप्तैषा:	८८
७. सब अपने लिए रोते हैं	१०३
८. ज़रा-सी बात	१०६
९. असत्य का सत्य	११७
१०. आत्महन्ता	१२३
११. पारस-पत्थरी	१३७
१२. गूजरी	१४८
१३. सुख की कब्र	१६१
१४. सोने का छत्तर	१७२
१५. पंथी को छाया नहीं	१८२
१६. आखिरी चिट्ठी	१९०
१७. साठ रुपये	२०६
१८. दस, रात के दस	२१६

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kath

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

पृ. सं,

१६. अमरता २८६

२०. एक खरा, एक खोटा २३७

२१. श्वेतिमा २४५

२२. मृत्यु की मीनार २६७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kath

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मृत्यु की मीनार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मन की सलवटें

असामान्य या असाधारण यदि पूज्य होता है, तो हास्यास्पद भी वही। लोकोत्तर की भावना में शब्दगत भले ही कोई भारीपन हो, जिसका अर्थ हम मनुष्य योनि से आगे बढ़कर देव-योनि में लगाते हों, पर स्वयं लोक की औसत दृष्टि का प्रयोग किया जायं, तो इसके लिए लोकोत्तर उतना ही व्यर्थ सिद्ध होगा, जितना कि लोक-निम्न अवांछनीय। ज्ञानू को मैंने जब से जाना, वह मेरी लोकगत दृष्टि को व्यर्थ और अवांछनीय ही जँचा।

किन्तु अर्थ और इच्छा की कसौटी सभी के साथ न्याय नहीं कर पाई। और मैं सोचता हूँ कि ज्ञानू के साथ भी नहीं। पहली ही भेंट में उसके प्रति अच्छी यानी ऊँची धारणा बना लेना भी आसान नहीं रहा। वह मुझे अपने एक परिचित चित्रकार के साथ मिला था। सड़क पर खड़े-खड़े बातें हो रही थीं। सिर्फ हो ही नहीं रही थीं, देर से हो रही थीं, जल्दी बन्द होनेवाली भी न थीं।

चित्रकार ने शायद इसी से कहा था—"जाइए, आप होटल में अपना भोजन कर आइए।"

उत्तर मिला—"भोजन मेरे लिए हैं, मैं भोजन के लिए नहीं। आज भोजन न होगा।"

मैंने शक्ल देखी, मुद्रा देखी और बात सुनी। मुझे कुछ न जँचा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

भारी मूँछों के नीचे चौड़ा जबड़ा। मैले और हठात् पहन लिए गये से वस्त्र। मैंने मन में सोचा, वह गम्भीर नहीं है।

और मैंने अपने कुछ ही दिनों के अनुभव से मान लिया कि वस्तुतः वह अगम्भीर है। ज्यादातर लोगों की उसके प्रति यही धारणा है। मेरी भी शुरू-शुरू में रही। पर मैं कहूँगा कि गलत धारणा रही।

ज्ञानू जितना देख-सुनकर समझ लिया जाता है, अवश्य ही उससे बहुत अधिक है।

चित्रकार महोदय ने परिचय कराया—"आप सम्पादक हैं, अमुक पत्र के।" पत्र खासा प्रतिष्ठित था। मतलब कि ज्ञानू की भी प्रतिष्ठा कम नहीं आँकी जा सकती है।

मेरा परिचय दिया गया—'कुछ लिखने-पढ़ने का शौकीन हूँ।' भारी भयङ्कर विशेषणों के बचाव के लिए मैं ही कह उठा था।

उधर से फरमाईश हुई—"हमारे पत्र में आप क्यों नहीं लिखते ?"

मैंने कहा—"देखिए यदि लिख सका।"

ये बातें ऐसी नहीं कि इनका लिखकर प्रचार किया जाये। पर इसके बाद घनिष्ठ होते-न-होते जो मैंने जाना, वह अवश्य ही प्रचारणीय ठहरेगा। उसी की यह भूमिका है।

उस दिन के बाद से परिचय बढ़ता रहा। कहीं भी मिल जाते। सड़क पर, दफ्तर में, इधर या उधर! तब भी सड़क पर ही मिले थे। मैंने अभिवादन के पश्चात् तुरन्त ही मूँगफली की एक गिरी उनके हाथ में रखते हुए कहा कि "खाइए!"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उधर से उत्तर आया—"मैं गिरी ही नहीं, छीलक भी खा सकता हूँ।

मैंने न दी, और बात टल गई।

अगले ही दिन उसका बुलावा आ पहुँचा। दफ्तर में मिलने को कहा था। समय से पहुँचा। वहाँ वे मूँगफली लिए मेरा मानो इन्तजार ही कर रहे थे। कहा भी—"खूब आए! मैं चाह ही रहा था। कल मैं मूँगफली के छीलक न खा सका। क्यों न खा सका, शायद मेरी कमजोरी थी। इस पर मैंने खूब सोचा। कल भी, रात भी, आज सुबह भी और अब भी सोच ही रहा हूँ। रात सोया नहीं था, सो नहीं सका और आज भोजन भी नहीं किया। आप ये मूँगफलियाँ तो देख ही रहे हैं। मैं इनके छीलक ही खाऊँगा। आप आ गए, अच्छा किया। मैं छील कर गिरियाँ आप को खिलाता चलूँगा और छीलक खुद खाऊँगा।"

और वैसा ही हुआ। मैंने भी बड़ी तत्परता से गिरियाँ खाईं और उसके छीलक खाने पर कोई एतराज पेश नहीं किया।

तो ज्ञानू को जानने की, गहरे तक जानने की इच्छा बढ़ चली। इसी इच्छा के उदय से उस का लम्बा-चौड़ा नाम मुझे विस्मृत-सा हो गया और इन दो अक्षरों में उसके प्रति मेरा सारा ममत्व उमड़ उठा। तब से मैंने उसके पास कभी भी जा पहुँचने का अधिकार मान लिया।

उस दिन पहुँचा घर पर। रात थी। अँधेरा था, घर में भी। किवाड़ खुले थे और इससे यह साफ था कि कोई भीतर अवश्य है, मतलब कि ज्ञानू।

मैं अन्दर घुसा और रास्ते में ही बैठी बिल्ली पर पैर पड़ते ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

भारी मूँछों के नीचे चौड़ा जबड़ा। मैले और हठात् पहन लिए गये से वस्त्र। मैंने मन में सोचा, वह गम्भीर नहीं है।

और मैंने अपने कुछ ही दिनों के अनुभव से मान लिया कि वस्तुतः वह अगम्भीर है। ज्यादातर लोगों की उसके प्रति यही धारणा है। मेरी भी शुरू-शुरू में रही। पर मैं कहूँगा कि गलत धारणा रही।

ज्ञानू जितना देख-सुनकर समझ लिया जाता है, अवश्य ही उससे बहुत अधिक है।

चित्रकार महोदय ने परिचय कराया—"आप सम्पादक हैं, अमुक पत्र के।" पत्र खासा प्रतिष्ठित था। मतलब कि ज्ञानू की भी प्रतिष्ठा कम नहीं आँकी जा सकती है।

मेरा परिचय दिया गया—'कुछ लिखने-पढ़ने का शौकीन हूँ।' भारी भयङ्कर विशेषणों के बचाव के लिए मैं ही कह उठा था।

उधर से फरमाईश हुई—"हमारे पत्र में आप क्यों नहीं लिखते?"

मैंने कहा—"देखिए यदि लिख सका।"

ये बातें ऐसी नहीं कि इनका लिखकर प्रचार किया जाये। पर इसके बाद घनिष्ठ होते-न-होते जो मैंने जाना, वह अवश्य ही प्रचारणीय ठहरेगा। उसी की यह भूमिका है।

उस दिन के बाद से परिचय बढ़ता रहा। कहीं भी मिल जाते। सड़क पर, दफ्तर में, इधर या उधर! तब भी सड़क पर ही मिले थे। मैंने अभिवादन के पश्चात् तुरन्त ही मूँगफली की एक गिरी उनके हाथ में रखते हुए कहा कि "खाइए!"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उधर से उत्तर आया—"मैं गिरी ही नहीं, छीलक भी खा सकता हूँ।

मैंने न दी, और बात टल गई।

अगले ही दिन उसका बुलावा आ पहुँचा। दफ्तर में मिलने को कहा था। समय से पहुँचा। वहाँ वे मूँगफली लिए मेरा मानो इन्तजार ही कर रहे थे। कहा भी—"खूब आए! मैं चाह ही रहा था। कल मैं मूँगफली के छीलक न खा सका। क्यों न खा सका, शायद मेरी कमजोरी थी। इस पर मैंने खूब सोचा। कल भी, रात भी, आज सुबह भी और अब भी सोच ही रहा हूँ। रात सोया नहीं था, सो नहीं सका और आज भोजन भी नहीं किया। आप ये मूँगफलियाँ तो देख ही रहे हैं। मैं इनके छीलक ही खाऊँगा। आप आ गए, अच्छा किया। मैं छील कर गिरियाँ आप को खिलाता चलूँगा और छीलक खुद खाऊँगा।"

और वैसा ही हुआ। मैंने भी बड़ी तत्परता से गिरियाँ खाईं और उसके छीलक खाने पर कोई एतराज पेश नहीं किया।

तो ज्ञानू को जानने की, गहरे तक जानने की इच्छा बढ़ चली। इसी इच्छा के उदय से उस का लम्बा-चौड़ा नाम मुझे विस्मृत-सा हो गया और इन दो अक्षरों में उसके प्रति मेरा सारा ममत्व उमड़ उठा। तब से मैंने उसके पास कभी भी जा पहुँचने का अधिकार मान लिया।

उस दिन पहुँचा घर पर। रात थी। अँधेरा था, घर में भी। किवाड़ खुले थे और इससे यह साफ था कि कोई भीतर अवश्य है, मतलब कि ज्ञानू।

मैं अन्दर घुसा और रास्ते में ही बैठी बिल्ली पर पैर पड़ते ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MH

उछल पड़ा। अन्दर से किसी ने पूछा, ज्ञानू ही पूछ रहा था—"कौन है ?"

"मैं.........!"

"ओः तुम...!"

वह आगे बढ़ा और अँधेरे में ही मेरा हाथ पकड़ कर मुझे एक कुर्सी पर ले जा पटका—"बैठो, कैसे भूले ?"

मैंने कहा—"भले आदमी पहले रोशनी तो करो! और तुम भी कितने बड़े आलसी हो कि घरवाली नहीं, तो उजाला भी नहीं।"

उत्तर आया—"मैं प्रकाश के लिए नहीं, प्रकाश मेरे लिए है।"

मैंने बात काटी—"वही तुक! हर जगह एक ही तुक ठीक नहीं होती। जिन्दगी के लिए कुछ समझ की जरूरत होती है। तुममें उसकी साफ कमी मालूम पड़ती है।"

मैं नहीं चाहता। मैं पूर्ण हूँ, मुझमें कुछ कमी नहीं। भले ही मुझमें मोटे रूप में कुछ कमियाँ हों, पर मैंने अपने को पूर्ण मानना शुरू कर दिया है। इस बात में मैं हठयोगियों का कायल हूँ। रहा कौन किसके लिए जरूरी का विचार। सो साफ ही है, मैं न रहूँ, तो इस कमरे में सूरज ही आ कर क्यों न उजाला करे, सब व्यर्थ होगा। अतएव मैं मान लेता हूँ कि इस कमरे का सच्चा उजाला मैं हूँ। अपनी दुनिया का मैं सूरज हूँ। बताओ न, जब मैं नहीं रहूँगा, तो इस सब दृश्य का, इस सारी दुनिया का क्या प्रयोजन ? व्यर्थ ! व्यर्थ ! व्यर्थ !"

वह हँस पड़ा। बालकों की तरह हँस पड़ा। उस का काना दाँत मुझे अँधेरे के कारण दिखाई न दे रहा था। फिर भी मैंने अन्दाज

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

से देख ही लिया। मैंने मानना भी शुरू कर लिया कि ज्ञानू की तरह वह जरूर ही ठीक है।

और इसी तरह वह जी रहा था। अस्वाभाविकताओं की ओर लपक-लपक कर जी रहा था। वह अपने-आपको सिर्फ इच्छा, जो दूसरों के लिए बेतुकी इच्छा होगी, समझ कर जी रहा था! भोजन में, रहन-सहन में, आचार-विचार में उसकी वही इच्छा सर्वोपरि थी। आलू उबालता, स्वयं उसका बेस्वाद पानी पीकर रह जाता और कुत्ते या बिल्ली को खिला देता वे उबले हुए बढ़िया आलू। उसका अतिरिक्त अहम् इसी से सन्तुष्ट रहता। सामान्यता उसे पसन्द न थी। धरती पर तो सभी चलते हैं, पर वह धरती से कुछ ऊँचा उठकर चलना चाहता था।

दूसरे शब्दों में उसे किसी पर निर्भर रहना पसन्द न था। पानी और भोजन पर दिन और रात में बँधा रहना, उसे अपना विवश अपमान-सा लगता और धीरे-धीरे ये सब बातें उसके बर्दाश्त के बाहर होना चाहतीं। मुझे डर लगता कि कहीं वह पानी पीना न छोड़ दे; दम घोंट कर न बैठ जाए। भूखों मरने की न ठान ले। पर घातक परिमाण में यह नौबत कभी न आई। उसने आजमाया सभी कुछ और आजमाते-आजमाते अपनी तन्दुरुस्ती भी चौपट कर डाली, पर जीवन बचाये रहा।

किन्तु कदाचित् उसका जीवन विडम्बनाओं के लिए बच रहा था। उसके तीन बच्चे थे। एक-एक करके तीनों चल बसे—एक मास में। पर उसे कोई गम नहीं, कोई दुःख नहीं। गंगाजी में बच्चे को बहाकर लौटता, तो रास्ते में ढेर-सी मिठाई और पूड़ियाँ खरीद लेता, फिर घर आकर प्रसन्न चित्त होकर खाता। पड़ोसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

ताज्जुब करते, और वह कुछ भी नहीं। पत्नी रोती, पर उसके सामने रोना मना था। वह कहता, वही बात—"बच्चों के हम जनक हैं। बच्चे हमारे जनक नहीं। रोती क्यों हो, हम तो जीते हैं। आओ, खाओ मिठाई!"

और उसका मिठाई खाना सच ही मुझे बुरा लगा था। बुरा इस मानी में कि मेरे मन में उसने एक भय जगा दिया था। मैं देख रहा था कि यह व्यक्ति निरन्तर प्रकृति, स्वभाव और सामान्यता का तिरस्कार करता आ रहा है। कहीं इसका मस्तिष्क इसी प्रकार किसी घातक असामान्यता की ओर झुक पड़ा, तो क्या होगा? मैं मन-ही-मन इस घातक स्वरूप की कल्पना कर काँप उठा! मेरी आत्मा कह रही थी कि अवश्य ही वह दुर्दिन होगा—उसके लिए दुर्दिन, समाज के लिए दुर्दिन!

मैंने उसे समझाने की चेष्टा की। पर वह उस बात को मानने को तैयार न था, जिस पर कि उसका सूत्र न घटता हो, फार्मूला न बैठता हो। उसके पास एक बहुत ही मजबूत नकार था।

एक दिन सहसा समाचार मिला कि उसने नौकरी छोड़ दी है। तत्काल उससे मिलने घर पहुँचा। वहाँ का रंग-ढंग कुछ और ही था। खासी भीड़ जमा थी और पुलिस भीतर-बाहर सर्वत्र तैनात थी। पता चला कि सम्पादक जी की पत्नी की किसी ने हत्या कर डाली है और वे स्वयं घर से लापता हैं।

मैं बिना और दिलचस्पी दिखाए घर लौट आया। जिसे मित्र समझता था, उसकी पत्नी की मिट्टी ठिकाने तक लगाने की न सोची! मुझे डर था कि मैं उस निरीह औरत की मृत देह देखकर कहीं घातक का नाम न बता बैठूँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मैं सोचता हुआ लौटा : तो क्या ज्ञानू उसी घातक अस्वाभाविकता की ओर झुक पड़ा ? उसे प्रकृति और इन्सान के बनाये, जरूरतों को समझकर बनाये कायदे-कानून इतने नागवार हो उठे कि उसने उनके खिलाफ लोहा उठा लिया। सभी कुछ से अपने को ऊपर समझने की, सभी जरूरतों को अपनी गुलाम या अनुवर्त्तिनी समझने की यह कैसी पराकाष्ठा ? उस धारणा की पराकाष्ठा या प्रकृति की प्रतिक्रिया ? यह क्या ? यह क्यों ? ज्ञानू खूनी कैसे हो गया ? वह निरीह आदमी कातिल कैसे बन गया ? निरीह, बिलकुल गलत विशेषण ! वह इच्छा-रूप होकर ही तो जी रहा था ! फिर निरीह कैसे ? अवश्य ही प्रबल इच्छाओंवाला ?

प्रबल इच्छा, दुर्निवार इच्छा, अपने को ही एकमात्र केन्द्र मानकर उगनेवाली अप्रतिहत इच्छा ! मुझे लगा कि ज्ञानू की यही परिभाषा है।

ज्ञानू की मृत पत्नी की ओर ध्यान गया, उसकी वह अकल्पित दुर्दशा देखी और सोचा—कुतर्क की, असामान्य कुतर्क की यही प्रतिक्रिया है।

मूँगफली की गिरी छोड़ छीलक खानेवाले, आलू फेंक उसके पानी पर गुजर करनेवाले, ज्ञानू का ध्यान आया और मैंने मान लिया कि प्रकृति को हठ स्वीकार नहीं, उसे अनोखापन गँवारा नहीं और यह उसी का प्रतिशोध है।

तो ज्ञानू हुआ एक उत्कट इच्छा का दुष्परिणाम ! कर्त्ता होते हुए भी कार्य; किसी कुतर्क की प्रतिक्रिया, बुद्धि रखते हुए भी अहङ्कार, प्रकृति का प्रतिशोध, पंचतत्वों से बँधकर भी उनका विरोधी !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MH

ज्ञानू को समझने के लिए, आज भी समझने के लिए, मैं क्या-क्या सोचा करता हूँ, वह लिखकर सीमित कर रखने की चीज नहीं। पर यहाँ मैं अपने जिस कल्पित भय को प्रकट कर देना चाहता हूँ वह अवश्य ही इन अक्षरों का आश्रित है।

ज्ञानू गायब है—पूरी तरह से और अच्छी तरह से गायब है। दुनिया भर के लिए गायब वह व्यक्ति मेरे लिए आज भी प्रकट है। अपने भीषण कार्यों के कारण प्रकट है। अखबारों में प्रायः रोज ही अथवा थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर पर कभी कहीं से तो कभी कहीं से आकस्मिक, विचित्र और रहस्यमयी हत्याओं के वृत्तान्त छपते रहते हैं। मैं ऐसे संवादों को खोजकर पढ़ता हूँ। उन संवादों के प्रत्येक अक्षर में मुझे अपना एक परिचित चेहरा दिखाई देता है और मैं मान लेता हूँ कि यह हत्यारों के समान न होकर भी हत्यारे का है उन अक्षरों में होता है ज्ञानू का अर्थहीन आँखों से युक्त चेहरा, भारी मूँछों के नीचे के काने दाँतवाले जबड़े से कुछ अधिक फटा हुआ मुख। मोटे होंठों पर खेलती हुई, वहीं स्थिर होकर बैठी हुई भयोत्पादक मुस्कराहट! ठीक अहङ्कार की कठोर लिपि-सी स्मित रेखाएँ और उनसे कठिन पड़ी मुखाकृति! मेरी आँखें झप जाती हैं।

मैं जानता हूँ कि ज्ञानू सम्पादक से भी पहले कैमिस्ट था, फिर लेखक या सम्पादक हुआ और आज इन दोनों व्यक्तियों की विलक्षण प्रतिभा से रुक्त अदयनीय हत्यारा है।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

काल-अकाल

बच्चा मचल रहा था—"आँ, आँ, हमसे यें रोटियाँ नहीं खाई जातीं।"

माँ मना रही थी—"खा भी ले, मेरे लाल !" स्वर में दुलार और विषाद की तुल्य पुट थी।

आवाज मचलती गई, "नहीं, हम तो सफेद रोटियाँ लेंगे ! काली रोटियाँ अच्छी नहीं लगतीं।"

माँ ने शिशु को बहलाना चाहा, पर स्वयं स्वर बहक रहा था—"भला जल्दी से खा तो ले, राजा बेटा। तेरे बाबू जी तेरे लिए एँ अ, रे ऽ ऽ ल, मो ऽ ऽ टर और जो भी तू कहेगा लाएँगे।"

बालक प्रलोभन में आ गया। माँ ने छलछलाती आँखों को पोंछकर बाजरे की रोटी का एक टुकड़ा तोड़कर उसके मुँह में रख दिया। टुकड़ा लेते-लेते बालक ने कहा—"हाँ माँ, रेल अञ्जन-वाली लूँगा और मोटर में भोंपा भी होगा, हैं !'

माँ की भींगी आँखों को देखकर बालक ने आश्वासन दिया—"रो मत माँ, तुझे भी रेल में ले चलूँगा।"

माँ बलात् मुस्कुरा दी। बालक ग्रास चबाने लगा, पर रोटी मुँह में जाते ही बिखर गई। बालक के लिए गले से नीचे उतारना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

असम्भव हो गया। उसने थू-थू करके जो कुछ भी मुख में था, उगल दिया। माँ ने क्षुब्ध हो तमाचा जड़ दिया। बच्चा बिल-बिलाने लगा। माँ भी रो पड़ी।

पिता आए तो बालक उन्हें देखकर और जोरे-जोर से रोने लगा। उन्होंने पूछा—"क्यों रो रहे हो, केशो!"

बालक टाँगों से लिपटता हुआ बोला—"माँ ने मारा है।"

पिता ने कहा—"अच्छा हम उसे मारेंगे!"

बालक को तभी रेल-मोटर की बात याद आ गई। रोना भूलकर बोला—"हमारे लिए रेल-मोटर लाओगे न? माँ कहती थी। है न, माँ?"

पति पत्नी से बोले—"अब गेहूँ के बिना कैसे काम चलेगा! कहीं कोई दाना भी देने को तैयार नहीं। तुम्हें दिन चढ़ रहे हैं। तब के लिए तो गेहूँ आवश्यक ही है।"

पत्नी ने कहा—"मेरी तुम चिन्ता न करो। हाँ, केशो का प्रश्न टेढ़ा है। यह तो दूसरे अन्न का ग्रास लेता ही नहीं। अच्छा, पहले खा लो। राम सब का मालिक है।"

पति कटु होकर बोले—"जान पड़ता है, राम के घर में भी आग लगी है। अब सुध लेने का कौन-सा अवसर आयेगा, दुनिया का तो संहार हुआ जा रहा है।"

वे खाने बैठ गए। खाते-खाते बोले—"अच्छा, अब तुम भी बैठ जाओ। देर क्यों कर रही हो?"

वह बोली—"मुझे भूख नहीं। आज नहीं खाऊँगी कुछ!"

पति अनुशासन के स्वर में बोले—"देखो, इस समय तुम्हें अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

स्वास्थ्य की रक्षा करनी चाहिए। उपवासों से काम नहीं चलने का !"

पर जब पत्नी के छिपाने का प्रयास करने पर भी वे जान ही गए कि घर में अन्न शेष न रहने के कारण पर्याप्त भोजन न बन सका, तो क्षोभपूर्वक बोले—"ये बातें भी छिपाने की होती हैं क्या ? भला कब तक चल सकेगा ऐसे काम !"

पत्नी ने अपराधी के स्वर में कहा—"अभी वेतन मिलने में तो देर थी, सोचा..."

पर पति ने कुछ न सुना। थाली से उठकर बाजार चल दिए। पत्नी रोकती ही रही।

:o: :o: :o:

शाम तक तो बालक ने रेल-मोटर के लिए सब्र किया, पर जब पिता को बाहर जाते देखा, तो मचल पड़ा—"हमें भी ले चलो, बाबूजी। रेल लेंगे, मोटर..."

पिता अनियन्त्रित आवेश में कह गए—"अब, भूखे के लिए चारा ही क्या रह गया कि जो रेल-मोटर के नीचे ही न दब मरे ! आज हजारों-लाखों आदमियों के पेटों पर बीत रही है। यह कलकत्ता है। मैं दाना खोज मरा, पर न मिला।"

केशो सहमकर चुप रह गया। पिता की आकृति भयानक होती जा रही थी। वह माँ की गोद में आ बैठा और आँखें फाड़-फाड़कर पिता की ओर देखता रहा।

माँ ने आश्वासन देते हुए पूछा—"बाजार जाओगे बाबू जी के साथ। पर देखो किसी चीज के लिए जिद तो न करोगे ?"

बालक बोला—"तुम्हीं तो कहती थीं कि..."

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

माँ ने कहा—"सो तो ठीक है, बेटा ! पर अभी पैसे नहीं हैं। फिर लिवा देंगे।"

पर बालक की समझ में न आ रहा था कि बावू जी के पास भी पैसे न होंगे तो कहाँ होंगे? चाट के लिए वे ही तो दो पैसे रोज देते थे। माँ ने चुप देखकर कह दिया—"अच्छा जा, जिद न करना।"

बालक असमंजस में ही रहा।

:o: :o: :o:

बालक पिता की अँगुली पकड़े बड़ी सड़क की चौड़ी पटरी से जा रहा था। सड़क के दोनों किनारों पर श्रीमानों की अट्टालिकाओं के नीचे ही कङ्कालों और भुखमरों का प्रदर्शन हो रहा था। बालक ने उनकी दुर्दशा देख समवेदना जताते हुए कहा—"बावू जी, क्या इनकी माँ भी इन्हें सफेद रोटी नहीं देती, जो ये यहाँ रूठे पड़े हैं!"

पिता विकृत स्वर में बोले—"केशो, इन्हें काली रोटी भी मयस्सर नहीं। दाने-दाने को मोहताज पेटों की हड़ताल किये पड़े हैं। महाशक्तियों के संघर्ष में बेकस यों ही पिसा करते हैं। इनकी ही शक्ति से बड़े बड़े बनते हैं। पर अर्थ की दुनिया में कृतघ्नता सबसे बड़ा आदर्श है।"

बालक की समझ में कुछ न आ रहा था। पिता की कठोर मुद्रा देख-देखकर वह घबरा रहा था। पिता अपने अनवूझ श्रोता को सुनाते ही जा रहे थे। बालक ने घबराकर कहा—"अब घर चलो बावू जी!"

तभी बीच सड़क पर दङ्गा-सा मच गया। किसी ने सड़क पर कुछ जूठा अन्न छोड़ दिया था। एक भूखा कुत्ता और क्षुधित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

बालक एक साथ ही उस पर टूटे। कुत्ते ने अपने अंश पर आक्रमण होते देख बालक पर हमला कर दिया। बालक बुरी तरह क्षत हुआ। हल्ला मचा और मारे भीड़ के सड़क रुक गई।

केशो के पिता ने भी यह दृश्य देखा और हँस पड़े—"देखते हो केशो, वह भी तुम्हारे जैसा ही बालक है। पर पेट का मारा! जूठन के लिए कुत्ते से लड़ मरा। इस जीवन से तो मरना भी अच्छा है।"

पर बालक अशान्त था। भीत स्वर में बोला—"हमें माँ के पास ले चलो, बाबू जी!"

पिता ने सकोप कहा—"क्यों घबरा गये? रेल नहीं लोगे। चलो मोटर देखें!"

बालक ने उसी स्वर में कहा—"नहीं, माँ के पास चलेंगे, बाबूजी!"

भीड़ हटा दी गई थी। ट्राम और बसें पूर्ववत् वेग से दौड़ने लगी थीं। वे बोले—"अन्न तो मिला नहीं बेटा, घर ही जाकर क्या करोगे? खाली जेब को कुछ भी नहीं मिलता। जहर भी नहीं।"

बालक विश्वास के साथ बोला—"घर चलो तो, बाबू जी! माँ हम सब को खिलायेगी।"

"पगला!" पिता तीव्र स्वर में बोले, "तेरी माँ के पास कुछ हो भी खाने को। आज वह खुद भूखी-प्यासी है। जो कुछ था, वह तो उसने स्वयं भूखी रह-रहकर हमें खिला ही दिया। अब उसे खाने के लिए मैं वापस नहीं जाऊँगा!"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

वालक रो पड़ा—"माँ के पास नहीं जाएँगे तो कहाँ चलेंगे ? मुझे घर छोड़ आओ । मुझे कुछ नहीं चाहिए ।"

"कुछ नहीं चाहिए, फिर भी रोता है । बेवकूफ !" पिता क्रुद्ध थे ।

वालक हठ करता ही गया—"लौट भी चलो बावू जी अव ! कभी कहीं जाने की जिद न करूँगा ।"

'जिद का बच्चा !" और जोर का तमाचा मुँह पर पड़ गया । आकस्मिक दुर्व्यवहार से वह रो तक न सका । आस-पास के आदमी घूरते हुऐ वढ़ रहे थे । पिता की आँखें सबसे टकरा-टकराकर रक्तवर्ण होती जा रही थीं । इसी घमाघमी में केशो को घसीटते हुए वे सड़क के वीच की ओर वढ़ चले । वसें वेग से आ-जा रही थीं । वालक देख कर घबराया—"वावू जी मोटर !"

उन्होंने कहा—"हाँ, हां !" और उनके पैर नहीं थमे । वालक ने भय से आँखें मूँद लीं ।

:o: :o: :o:

ट्रेजेडी जीवन का यथार्थ है और कामेडी आदर्श । पर क्षुधानल इतना प्रवल होता है कि समस्त आशाएँ और आदर्श भी भस्मसात् हो जाते हैं । कभी तो अज्ञात के निर्देश से यवनिका का ऐसा आकस्मिक पतन होता है कि आदि-अन्त का कुछ पता भी नहीं चलता । केशो की प्रसव-पीड़ाकुल माँ अभी पटों के उठने-गिरने की प्रतीक्षा ही में थी । वह प्रतीक्षा करती रही, पर जो पट गिर चुका था, वह उठ ही न सका ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हाँ, मेहरबान सिंह; नहीं, रघुवीर सिंह!

गर्मी के दिन थे। छः-सात मास से भी अधिक घर से दूर रहकर जब लौटा तो आते ही वनों और पर्वतों से आह्वान मिलने लगे, जिनकी मैं उपेक्षा न कर सका। काकभुशुण्डी के आश्रम की असफल योजना मेरे सामने थी ही, अतएव किसी इतर लक्ष्य का आश्रय नहीं लेना था। हमारा छः व्यक्तियों का एक छोटा-सा दल तैयार हुआ। इस दल के संगठन में भाई जयदेव का हाथ सबसे अधिक था। कुछ ही दिनों के परिचय में अपने हृदय की अकृत्रिमता से वे मुझे इतना अधिक वशीभूत कर चुके थे कि हम युग-युग से परस्पर परिचित जान पड़ते थे। हमारी योजना के अनुसार मेरे छोटे भाई शेखर ने भी अपना एक दल धर्मकुण्ड की यात्रा के लिए प्रस्तुत कर लिया था। यह छोटा दल संख्या में हमसे कोई दुगने के लगभग था। बस, खाद्य इत्यादि का समुचित प्रबन्ध कर दोनों दलों ने अलग-अलग प्रस्थान कर दिया था। वह एक बड़ी ही उत्साह भरी सन्ध्या थी, जब कि हमारी छोटी-सी बस्ती के नवयुवकों के दो दल संगठित होकर वन-भ्रमण कर रहे थे! छोटा दल अग्रसर-रहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

हमने गंगा को सबसे ऊपर की धारा पर से पार करने का निश्चय किया। यह धारा कदाचित् नील पर्वत से कहीं सटकर और कहीं पास-ही-पास कुछ हटकर बहने के कारण ही नीलधारा कहलाती है। अतएव हमारा दल चण्डी घाट पहुँचा। नाव के परले पार से आने में कुछ विलम्ब था, अतएव हम वहीं तट पर पत्थरों पर बैठकर क्रीड़ा करने लगे।

पास ही में नाव के मुंशी की झोंपड़ी के पास चीनी के बोरों का ढेर लग रहा था। स्पष्ट था कि यह सब चीनी चोर बाजार में खपेगी। स्यात् इसी से मुंशी ने हमारा खूब स्वागत किया और गङ्गा के शुद्ध शीतल जल में चीनी घोल-घोलकर शर्बत पिलाया। रघुवीर भाई और किशन भाई ने इसमें विशेष उत्सुाह दिखाया।

मुंशी ने हमारे लिए दूसरी नाव का प्रबन्ध कर दिया था।

सन्ध्या का झुटपुटा था। हमारा अल्पसंख्यक दल नवोदित शुक्र की छाया में नीलधारा की सूखी सिकता पर पत्थरों के बीच खड़ा था। चारों ओर पर्वत, जङ्गल और जल—बड़ा भला लग रहा था! महेन्द्रनाथ झा चञ्चल हो उठा। उसने विद्यापति की सरस पदावली छेड़ी। किशनचन्द्र गामा भालों के फलकों को ठीक से जमा रहा था। विद्यापति की मधुर पदावली के बीच में ही उसकी ओज वाणी सुनाई दी—अपने-अपने लाठी-भाले से सब दुरुस्त !

रघुवीर भाई मेहनत में बैल के समान थे। वे अलग ही अधिक-से-अधिक सम्मान उठाने में व्यस्त थे। गामा ने जवाहरलाल का बोझा कम किया और जयदेव ने मेरा; पर उनका वह काला कम्बल मुझे काला पहाड़ लग रहा था। झा के पास स्वतः कम सामान रह गया था।

गामा ने मुझे भी एक भाला थमा दिया था। उस एकान्त वनभूमि में भाले का स्पर्श पाते ही हृदय साहस और उमङ्ग से भर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उठा। बस; मैंने कम्बल को उतार कर कमर में लपेट लिया और अट्टहास करते हुए अपने भल्ल-फलक को ऊपर उठाया। मुझे लगा कि शुक्र नीचे उतर आया है! उस समय मुझे अपने तईं किसी डाकू या क्रान्तिकारी की कल्पना बड़ी भली लग रही थी। भाई जयदेव ने तो कहा भी था कि तुम्हारी यह उगी हुई घास-सी दाढ़ी अब सार्थक लग रही है। दाढ़ी से घना काला मुँह, काला कम्बल और चमकता हुआ भाला! दिन का अवसान और विजन प्रान्त! इच्छा हुई कि पर्वतों की छाती पर लात मारकर ठठाता-सा हँस पड़ूँ। डाकू या क्रान्तिकारी ?

गङ्गा के सूखे मझाड़े को पारकर हम वन में घुसे। सघन वन का सङ्कीर्ण मार्ग, और ऊपर से बढ़ता हुआ अन्धकार! कन्धे से कन्धा मिलाकर दो जन भी बराबरी से नहीं बढ़ सकते थे। बस, हम छः ही जने दूर तक फैल कर बढ़ने लगे। सब से आगे रघुवीरसिंह थे और सबके पीछे मैं। सबसे अधिक बोझ लादे रहने पर भी रघुवीर भाई की गति में कोई अन्तर न था। हम सभी हाँफ-हाँफ-कर उनकी उठाई धूलि में बढ़ रहे थे। झा का नाजुक शरीर सबसे अधिक कष्ट पा रहा था। वह विद्यापति के पद भूल चुका था! किसी तरह टार्च के प्रकाश में ठोकर खा-खाकर बढ़ रहा था।

उस डवल मार्च में भी मज़ाकें धड़ल्ले से चल रही थीं। भाई जयदेव ने मेरा नाम प्रहरी और रघुवीरसिंह का नायक रख दिया था। बीच-बीच में वे पुकार उठते—'नायक, गति मन्द न पड़े! प्रहरी सावधान, कोई पीछे न छूट जाये!' और स्पष्ट ही कोई का लक्ष्य झा की ओर होता। वह ठीक मेरे आगे चल रहा था। फिर भी अगल-बगल की झाड़ियों के हिलने पर चौंककर इधर-उधर देखने लगता, कहीं...... ! गामा शान्त और स्थिर भाव से बढ़ रहा था जवाहर बाबू कुछ सुना रहे थे।

१२६९३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

रजनी ने बढ़ते अन्धकार का उपहास-सा करते हुए तारों की चमचमाती मूँठ छोड़ी। नभ-प्रान्त मधुर आलोक से प्रकाशित हो गया। सप्तर्षि और ध्रुव परस्पर बद्ध-से घूम रहे थे। पर ध्रुव की स्थिति अपरिवर्त्तनीय थी। शुक्र का प्रकाश और तीव्र हो उठा था। मङ्गल और शनि ग्रहों से रक्त और नील प्रकाश विकीर्ण हो रहा था। वृहस्पति पीत कान्ति में अतीव भव्य जान पड़ते थे। कृष्ण-पक्ष होने के कारण सोम निशीथ के शयन-कक्ष में बन्दी थे। फिर भी तम सघन रहा, आलोक-रश्मियाँ उसके कठोर वक्ष से टकरा-टकराकर लौट-सी जाती थीं।

हम दो मझाड़े पार कर कुछ खुले स्थान में आ पहुँचे थे। यह गङ्गा की बरसाती धारा का सूखा पेटा था। यहाँ मोटी सिकता और बड़े-बड़े ढोके भर थे। रघुवीरसिंह बढ़ते-बढ़ते सहसा रुक गये। रुकते-रुकते उन्होंने कहा—देखो, हरिणों की डार है!

हमने स्तम्भित होकर देखा। हरिणों का एक बड़ा झुण्ड कुछ ही अन्तर से दौड़ा जा रहा था। झा ने टार्च का चट तीव्र प्रकाश उन पर फेंका। हमने स्तम्भित नयनों से उस अपूर्व दृश्य को देखा। यूथवद्ध हरिणों के आयत नेत्ररत्न-से चमक रहे थे। प्रकाश की चका-चौंध में उनकी गति रुक गई थी। वे सब जहाँ-के-तहाँ रुके फटी आँखों से हमारी ओर देख रहे थे। जैसे-जैसे झा टार्च के प्रकाश को आगे बढ़ाता, वैसे-वैसे वे भी एक-एक पग आगे को बढ़ते। सगर्व श्रृङ्गभार का वहन करनेवाले वे मृग, मृगियों और शावकों को भूल, प्रकाश से सम्मोहित, अतीव दीन जान पड़ रहे थे। मैं सोच रहा था—कितना भोला और निरीह पशु है! इनके शिकार में भला क्या गौरव हो सकता है!

टार्च बुझा, प्रकाश रुका और वह मृगयूथ क्षणभर किङ्कर्त्तव्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

विमूढ़-सा रहकर पास के गढ़े में रुके पानी को पिये बिना ही कुलाँचे भरने लगा। झाड़ियाँ व्यर्थ का विरोध करके सरसर करती रह गईं। हम भी आगे बढ़े और जङ्गल के नये टुकड़े में प्रवेश किया। जयदेव कह रहे थे—हरिणों की इन आँखों को मैं भूल न सकूँगा। जब हम जङ्गल का यह नया टुकड़ा पार कर चुके, तो हमारे सामने आगे बढ़ने के दो मार्ग थे। एक तो था, सीधे गहन वन में से होकर पहाड़ी-पहाड़ी बढ़ने का मार्ग और दूसरा वहाँ से गङ्गा के कछार के ग्रामों में पहुँचकर फिर से जङ्गलों में से होकर। प्रथम मार्ग दुर्गम अवश्य था, किन्तु था बहुत ही छोटा। सभी प्रकार की बुरी सम्भावनाओं के होते हुए भी हमारी इच्छा इसी से अग्रसर होने की थी। किन्तु इसमें दो और बाधाएँ थीं, जिनसे विवश होकर हमें यह मार्ग लौटने के लिए छोड़ देना पड़ा। एक तो छोटा दल आगे श्यामपुर गाँव के पास कहीं हमारी प्रतीक्षा कर रहा होगा और दूसरे गाँव से कुछ घी-दूध और भोजन बनाने के लिए बर्तनों का प्रबन्ध भी करना था; अतएव हम इसी दूसरे रास्ते से बढ़े। यहाँ आकर झा को पुनः मस्ती आई। उसने एकाध मीरा का पद उठाया। मैंने सुनने के लोभ से उसका सामान स्वयं ले लिया और उससे मुक्त होकर गाने का अनुरोध किया। बस श्यामपुर तक हम झा की स्वर-लहरी में बँधे और तानों में खिंचे बढ़ते गये। झा वस्तुतः बहुत सुन्दर गाता था।

रात्रि का प्रथम प्रहर बीतते-न-बीतते हम श्यामपुर पहुँच गये थे। छोटा दल हमसे काफी पूर्व आ पहुँचा था, और खा-पीकर विश्राम कर रहा था। हमने भी उन्हीं के समीप कुछ हटकर अपने कन्धों का बोझ उतारा। सामने ही श्यामपुर गाँव था।

हमारा निश्चय सुबह ही तारों की छाया में आगे के लिए प्रस्थान कर देने का था। अतएव यह आवश्यक था कि तभी गाँव से जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

कुछ भी मिलता ले लिया जाय। मैं, जयदेव और रघुवीरसिंह तीन जने शेष साथियों को वहीं छोड़कर गाँव में आए। छोटी जातिवालों के घर इस गाँव में अधिक हैं। सन्नाटा छाया हुआ था, गाय-बैल जुगाली करते-करते सो गये थे, कुत्ते ऊँघने लगे थे, फिर भी कहीं-कहीं हुक्के की गुड़गुड़ाहट और आदमियों की फुसफुस हो रही थी। हम ऐसे समय में पहुँचे थे कि किसी तरह कुछ अति आवश्यक बर्तन ही मिल सके। किन्तु जब उन विपन्न ग्रामीणों के हृदय का सद्भाव-पूर्ण ऐश्वर्य हमारे सामने खुला, तो हम नागरिक जीवन पर लज्जा से भर उठे। दयाल कहता—रामजी, तू गंगा मेले पर से नया लोटा लाया था न, वही ले आना! और रामजी कहता—दादा एक बटलोही भी लाया था, उसे भी लेता आऊँ न!

और हमने देखा कि वे फूटे बर्तनों में खानेवाले हमारे लिए सोने-चाँदी के-से बर्तन जुटाने की व्यग्रता में थे। थोड़े-बहुत दूध का भी प्रबन्ध कर दिया गया और बताया कि अल्लादिया के यहाँ चले जाओ, घी भी मिल जायेगा। जब अल्लादिये के यहाँ पहुँचे, तो उसके द्वारे चार भाई भी जमा देखे। उन सबने मिलकर हमारी बड़ी आव-भगत की और चारपाइयाँ छोड़-छोड़कर उठ खड़े हुए। हमारी फरमाइश सुनकर अल्लादिया ससङ्कोच बोला—हुजूर, क्या सुबह तक इन्तजार नहीं कर सकते? यहीं कुछ दूरी पर जंगल में मेरी भट्टी है। वहाँ आपको घी खूब फरागत से मिल सकेगा। अब हुक्म हो तो वक्त-जरूरत के लिए जो कुछ भी घर में है, हाजिर है!

इतना कहकर वह झोपड़े में घुस गया और एक बड़े लोटे में आधे से भी अधिक घी भरकर ले आया। हमें उस थोड़े-से घी को देखकर ताज्जुब हो रहा था, क्योंकि हमें उससे अधिक की आवश्यकता भी न थी। हमने कहा—सुबह तो हम जल्दी ही चल देंगे। फिर यह घी भी तो कम नहीं। अच्छा इसके दाम।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

और दाम के नाम वह मुसलमान तोबा कर उठा।

यह था गाँव और शहर का अन्तर, जो हमें अपनी आँखों में आप छोटा साबित कर रहा था।

स्थान पर लौटे तो गामा भूमि को परिष्कृत कर हम सब के विस्तर जमा चुके थे। झा मुँह बाए पड़ा था। जवाहर साहब अभी कपड़े ही बदलने में लगे थे। भोजन बनाने का समय तो था नहीं, और गाँव से आशानुकूल दूध भी न मिल सका था; अतएव थोड़ा-सा भोजन, जो भाई जयदेव के चलते-चलते, माँ ने बाँध ही दिया था सबने जलपान की तरह बाँटकर खा लिया। फिर भी हम सब इतने मगन और तृप्त थे कि उतना ही खाकर डकारें लेने लगे।

हमने प्रकाश के लिए घी का ही दिया जलाया और नींद को दूर रखने के लिए ताश खेलने लगे। किन्तु थोड़ी देर में ही घी ने जवाब दे दिया और फिर से दिया जलाने का मतलब कल के भोजन को खुश्क रखना था। अतएव सोचा कि अब कुछ देर के लिए सो ही लिया जाय। किन्तु कुछ समाँ इतना सुहावना था और परस्पर की बातें इतनी मजेदार कि नींद पास ही न फटकती थी। झा के गानों ने मस्ती भर रक्खी थी। जब वह सुस्ताने लगता तो मेरा कवित्व जोर मारने लगता और मैं किसी-किसी की पढ़ी-पढ़ाई, सुनी-सुनाई कविताओं का पाठ करने लगता। मेरी मस्ती देखकर भाई जयदेव ने कहा था—वाकई तुम बुखार को शर्बत के साथ घोल-कर पी ही गए।

यह सुनकर मैं कुछ तन गया था।

इतने में श्यामपुर के थाने का सिपाही आया और बता गया कि इस जंगल में रात में आगे बढ़ने की मुमानियत है। इस-लिए सूरज निकलने तक के लिए हमें मजबूरी में वहीं रुकना था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

सिपाही को गये हुए दो मिनट भी न हुए होंगे कि रेञ्जर साहब के बँगले से डाक आई। वह एक जङ्गल का रखवाला था। उसने सुनाया कि रेञ्जर साहब फरमाते हैं कि रात में इधर आज-कल गुलदार लगता है। कई वारदातें हो चुकी हैं। अच्छा हो, आप लोग साहब के बँगले के अहाते में मुकाम करें। दूसरे इधर धर्म-कुण्ड, पीली और लाल ढ़ाँग के जङ्गल में हाथी उतरे हुए हैं। खुद साहब लोग उधर मुआयने तक को नहीं जाते। आप लोगों को भी सोच-समझकर ही उधर बढ़ना चाहिए। बेहतर तो यही है कि आप लोग उधर बढ़ें ही नहीं।

यह काफी सनसनीदार समाचार था, फिर भी हमने न तो पीछे लौटने का निश्चय किया और न बँगले के अहाते में जाने का। बस वापिसी में साहब को धन्यवाद कहला भेजा।

थोड़ी ही देर में हम अपनी बातों में इतने मशगूल हो गये थे कि शेर-हाथी में से किसी की भी चिन्ता न रही। छोटे दलवालों की भी शैतानियाँ यहाँ तक बढ़ चली थीं कि पास के थानेवालों का सोना भी हराम हो रहा था। पर उस समय वे सब जङ्गली बने हुए थे और जङ्गलियों के लिए सब छूट थी। इतने में धीमी-सी चीख के साथ झा उछल पड़ा। उछलते ही उसका हाथ टार्च पर गया। गामा फरसा सम्हाल चुका था। मैंने पूछा—क्या है झा ?

जयदेव ने मजाक किया—गुलदार होगा विस्तर में !

हम सब हँस पड़े। जयदेव कह रहा था—क्यों गामा, विस्तर के गुलदार (खटमल) पर फरसा ताना !

पर झा को मजाक पसन्द नहीं आया। उसने कहा—बिच्छू ! और सभी न देखा—बिच्छू !

फिर तो सभी अपने-अपने बिछौने टटोलने लगे। बस, बिच्छुओं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पर बिच्छू मिलने लगे। आदमी और बिच्छू का संग्राम छिड़ गया! खूब कत्ले-आम हुआ, जिसमें जीत हमारी ही हुई।

हम पर्वती जीवन के अभ्यस्त होने के कारण बिच्छू-साँप से खूब घनिष्ठ थे। पर झा के निकट तो छोटे-से-छोटा बिच्छू भी अजेय था। अब तो उसकी नींद अच्छी तरह से हराम हो गई। टार्च और उसके बटन पर से उसका हाथ ही न हटता। जरा कुछ होता और उसे लगता बिच्छू!

आधी रात जाने को थी। सप्तर्षि घूमते हुए नीचे की ओर उतर रहे थे। उनकी गति देखकर ढलती रात का अच्छी तरह से अनुमान किया जा सकता था। ठीक उसी तरह झा के बार-बार के चौंकने से बिच्छुओं की गिनती लगाई जा रही थी। इतने में छोटे दल की ओर से गिरीश आया। उसका स्वर सहमा हुआ था। बोला—'भाई जी, गुलदार!'

मैंने सोचा, मजाक कर रहा है। डपट दिया—चुपचाप जाकर सो जाओ। खुराफात बहुत हुई।

पर वह सच कह रहा था। उसके प्रमाण देने के पूर्व ही कुत्तों के आतुर-नाद और गाँव के बैलों की डडकारों ने किसी-न-किसी हिंसक पशु के निकट होने का विश्वास दृढ़ कर दिया था। मैंने पूछा—कहाँ है?

बोला—आओ चलो, उधर सामने ही।

हम सब-के-सब अपने आयुधों से सन्नद्ध होकर उठ खड़े हुए। झा ने टार्च को मजबूती से पकड़ा। मैंने उससे टार्च ले ली और अपना भाला देकर कमर का बड़ा चाकू निकाल लिया। गामा फरसा लेकर बढ़े और इसी तरह और सब भी। छोटा दल हमसे पहले ही लाठी-भालों से सन्नद्ध था। वे सामने कुछ ही दूरी पर किसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

चीज की ओर एकटक देख रहे थे। कुत्तों का आर्त्तनाद बढ़ रहा था। बैलों का चीत्कार साक्षात् मृत्यु की कल्पना सजग कर रहा था। हमने सामने देखा––दो चमकती हुई आँखें! टार्च डाला, गुलदार था। कितनी ही देर तक हम गुलदार को देखते रहे और वह हमें देखता रहा। कदाचित् हम दोनों ही अपनी-अपनी शक्तियों को तौल रहे थे। अन्त में हमने टार्च बुझाकर इधर-उधर हो जाने का निश्चय किया। देखें, गुलदार क्या करता है। कुछ ही देर हुई होगी कि पता चला, शेखर अकेला गुलदार की ओर बढ़ रहा है। सुनते ही हम भी उधर ही को झपटे। सबने मिलकर हल्ला किया। गुलदार ने मैदान छोड़ दिया।

वाद में खूब मजाक चला। दो दल हुए, जिसमें हमारे दल की यह पूरी-पूरी कोशिश थी कि गुलदार को हवा सावित किया जाये। अन्त में गामा ने फैसला कर दिया—गुलदार कहाँ था, साला गीदड़ था, भाग जो गया।

हमने भी मान लिया—गीदड़ था, भाग जो गया।

सचमुच ही गुलदार केहरी की तुलना में गीदड़ होता है, कभी सामना न करनेवाला, सदा घात में रहनेवाला, कुत्तों का दुश्मन!

अब झा भी बिच्छुओं का भय भूल गया था। बड़े भय ने छोटे भय को मार डाला था। बस, अब कुछ देर सोने का दृढ़ निश्चय किया। पर उस एक कम्वल के जाड़े में भी मेरे शरीर से इतनी आग निकल रही थी कि सो न सका। शेष रात सप्तर्षि का पतन और अस्त देखते-देखते आँखों में ही काट दी। ध्रुव अटल था। शुक्र स्थान वदलकर फीका पड़ चुका था। हलवाहों ने अपने साथी बैलों को जगाया। हम सव उठे और प्रातःक्रियाओं से निवृत्त हुए। छोटे दल ते यहाँ भी हमसे पहले कूच कर दिया था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उन दिनों खरबूजों की फसल थी। गामा को सत्तू तैयार करने के लिए कह कर मैं और जयदेव पुनः गाँव में खरबूजों के लिए घुसे। वहाँ से गङ्गा-ओर की पहलेजों पर गये और धड़ी भर खरबूजे लेकर लौटे। आकर सभी ने मिलकर डट कर सत्तू खाया तथा मैंने और गामा ने तो रात की भी कसर निकाल ली। मैं दौड़-धूप के कामों में गेहूँ का मीठा सत्तू खाने का पक्षपाती रहा हूँ। नहीं तो हमें सत्तू के दर्शन केवल सतवा तीज को होते हैं, और वह भी वतौर प्रसाद ही ग्रहण किया जाता है। मेरे पक्षपात का कारण यह रहा है कि सत्तू एक तो पेट में अधिक समय तक जमता है, दूसरे इसके खाने से प्यास भी कम ही लगती है। अस्तु, हमने फिर से कमर कसी और पूर्ववत् सामान सम्हाल कर चल दिये !

रघुवीर सिंह बैल की तरह बोझ उठाये सबसे आगे।
मैं हाँक लगाता हुआ सबके पीछे !
झा के हाथ में अब भी टार्च था !
गामा मस्त था, जवाहर चुप और जयदेव स्मितमुख !

:o: :o: :o: :o:

प्रतिक्षण जंगली हाथी के मिलने की सम्भावना का स्वागत करते हुए हम उस बियावान जङ्गल में से तेजी से बढ़ रहे थे। अपने लक्ष्य के शीघ्रातिशीघ्र निकट पहुँचने की उतावली के कारण हमारी इन्द्रियों को इतना प्रकाश न था कि क्षणेक सुस्थिर होकर वनश्री को ही प्रत्यक्ष कर सकें। बल-प्रेरित से हम गहनातिगहन वन में घुसे जा रहे थे। मार्ग में हमें एक जगह हाथी की ताजी लीद मिली। उससे हाथी के वहीं कहीं निकट होने का विश्वास बद्धमूल हो गया। किन्तु फिर भी हम निर्भीक बढ़ रहे थे। झा बीच-बीच में गा उठता था और इसे हम शुभ लक्षण ही मानते थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

कोई नौ बजते-न-बजते हम एक सोते के पास जा पहुँचे। जैसा कि हमें बताया गया था, यह धर्मकुण्ड से ही आने वाला सोता था। सोते को एकदम सूखा देख एक बार हम दुष्कल्पना से मूढ़ हो गये—कहीं कुण्ड की भी यही गति हुई तो? इस 'तो' पर अधिक विचार करना हमें अपने साहस का अपमान लगता था। फिर भी बढ़ती धूप, थकित देह और लगती प्यास को देखकर उस बियाबान जङ्गल में पानी का अभाव हाथी और सिंह के साक्षात्कार से कहीं भयानक लगता था। किन्तु सिर्फ बढ़ना और बढ़ते ही रहना हमारा लक्ष्य था; अतएव अधिक विचार निरर्थक ही जान पड़ा। हमने नाले के प्रवेश-मुख को देखा। ठीक वहीं एक आमले का काफी बड़ा पेड़ था, उसी को अपना मार्ग-चिह्न मानकर हम आगे बढ़े। हम नाले से ही आगे बढ़ रहे थे और नाला बराबर सूखा ही मिलता जा रहा था। बीच-बीच में मार्ग-लाघव की दृष्टि से नाला छोड़कर हम जङ्गल से होकर आगे बढ़ते। सिर से भी ऊँची मूँज की अति सघन झाड़ियों को चिर-चिर कर बढ़ने में अति सुखकर अनुभव हो रहा था। सूखी झाड़ियों के क्षुर तिनकों से हाथ-पैरों को चिरते और लहू बहते देख हम हँस भर पड़ते। आगे का मार्ग अधिक दुर्गम मिल रहा था। भूमि उबड़-खाबड़ और जटिल होती जा रही थी। अब चलने में अधिक सतर्कता और साहस की आवश्यकता थी। नील पर्वत की जिस शाखा को हम वाम ओर छोड़कर कहीं आगे बढ़ आये थे, अब वह पुनः कुछ दूरी पर ही सामने मार्ग-अवरोध किये खड़ी थी। सूखे सोते में चलते-चलते हमें दो घण्टे के लगभग हो गया था। पुनः सामने पर्वत-पार्श्व को देखकर धर्मकुण्ड निकट आ जाने की कल्पना बहुत ही मधुर लगने लगी थी। अब नाले में यत्र-तत्र गढ़ों में जमा पानी भी दिखाई दे जाता था। किन्तु सड़े कोचड़ और गन्दे चौड़े जैसे उस पानी के प्रयोग की कल्पना की ही नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जा सकती। पहाड़ी और जंगली सोतों का बहुत वार भला-बुरा जल पिया है। कड़वा, कसैला, बदजायका और गर्म भी। किन्तु इस सोते में हमें जो जल मिल रहा था, सड़ाँध के मारे उसके पास तक खड़े होने का साहस न होता था। फिर भी हम आशा किये रहे कि आगे चलकर अवश्य ही अच्छा जल मिलेगा। किन्तु जब आध घण्टे के ही भीतर हम उस छोटी-सी पर्वती घाटी में पिञ्जर-बद्ध मूषिकवत् घिरकर रह गये तो हमें सामने के रुद्ध जलाशय को ही धर्मकुण्ड मान लेना पड़ा। छोटा दल हमसे पूर्व ही वहाँ पहुँच-चुका खा। पहाड़ी के इधर-उधर को बढ़े हुए हिस्सों पर मुँह लट-काये बैठे-बैठे वे हमारी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। हमें दूर से आता देखा तो वे एक साथ चिल्ला उठे। हमने भी—ओ.हो हो हो ओ ओ ओ—करके आगमन की सूचना दी उन्हें। क्षण भर के लिए हम परिस्थितियों की सारी विषमता विस्मृत कर उठे थे।

बड़ी आतुरता से हम लोगों ने अपनी-अपनी लाद को उतारा और उस कुण्ड पर पूर्वश्रुत लक्षणों को घटाने में लगे। आँखों में तो कल्पित था पर्वत-शिखर पर वट-चतुष्टयी की शीतल छाया में प्रति-ष्ठित और प्राकृतिक शिवलिङ्गों से आवेष्टित स्फटिक के समान स्वच्छ और शीतल तथा अमृतोपम मधुर जलवाला चतुष्कोण जलाशय, और चर्मचक्षु प्रत्यक्ष देख रहे थे—पर्वत-कुक्षि में रुद्ध रहने के कारण सड़े, बदबूदार, गर्म, जले पेट्रोल की तरह काले, सूखी घास और पत्तों से आच्छादित जलकुण्ड को। पर्वत की विदीर्ण शिराओं से जो एक-एक बूँद करके स्वच्छ शीतल जल टपक आता वह भी उस सड़े पत्तोंवाले काले-काले जल से मिलकर वैसा ही हो जाता था। हम गलित पग से वहीं गोड़ों पर हाथ टेककर उभड़े पत्थरों पर बैठ गये। तभी भाई जयदेव अपनी अभयमुद्रा में शान्तिपूर्वक कह उठे—अरे यह क्या, शिवलिङ्गों को ही आसन बना लिया ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

और सचमुच ही वे शिवलिङ्ग थे। चलो एक लक्षण तो घटित हुआ। इस पर हम खूब हँसे, और हँसे उन प्राकृतिक शिवलिङ्गों के बौड़मपने पर जिन्होंने भाँग और धतूरे की पिनक में इस वाहियात स्थान को चुनकर धर्मकुण्ड की इतनी ख्याति दी थी। वस, फिर तो शिवजी के बौड़मपने और बम भोलेनाथ नाम से सम्बद्ध दर्जनों झूठ-सच कहानियों का आदान-प्रदान हो गया। भस्मासुर के आख्यान को सुनकर तो हमारे पेटों में हँसते-हँसते वल पड़ गये थे। जो इतना वड़ा बुद्धू है, वह किसी ऐसे स्थान को अपनी पीठिका वना भी ले तो क्या आश्चर्य ?

इस परिहास ने हमें कुछ काल के लिए मुक्तचित्त कर दिया था। धर्मकुण्ड के काले जल के बारे में एक-से-एक वड़ी कल्पना से काम लिया जा रहा था। अन्त में सर्व-सम्मति से यही निश्चित हुआ था कि काकभुशुण्डी स्वयं काले थे। फलत: उनकी तपस्या से ही इस कुण्ड का जल भी तद्वर्ण हो उठा।

इधर प्यास ने झा को बेचैन कर रखा था। सूखे होंठों पर जीभ फेरते हुए बोले—अरे जल का कुछ प्रबन्ध भी करोगे या गप्पें ही चलती रहेंगी।

झा के इस यथार्थ कथन का उत्तर हमारी सम्मिलित हँसी ने दिया। थैलों में जो फल भरकर रखे गये थे वे निकाले गये। मजा यह कि उस समय फलों ने भी धोखा दिया। लीचियाँ खट्टी थीं, सन्तरे सूखे और खरबूजे फीके। फिर भी किसी-न-किसी तरह उन्हें यथाशक्ति उदरस्थ किया और जल के अनुसन्धान के लिए तत्पर हुए। सोते का काफी दूर-दूर तक चप्पा-चप्पा छान डाला, किन्तु पीने योग्य पानी कहीं भी तो नहीं दिखाई दिया। नाले की रेतीली और मटमैली जमीन पर जानवरों के पैरों के निशान खूब देखने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

में आये। हाथी और शेर के पैरों के निशान काफी बड़े-बड़े और खूब उभड़े हुए थे। इससे इतना अवश्य स्पष्ट हो गया था कि इस स्थान पर वन्य पशुओं का सञ्चार खूब है, अतएव यहाँ अधिक देर तक ठहरना किसी भी तरह निरापद नहीं समझा जा सकता।

अब तक सूरज आसमान में पूरी ऊँचाई तक चढ़ चुका था। अतएव समय-सङ्कोच का विचार करते हुए उसी कुण्ड के जल पर आश्रित रहने का विचार किया गया। इसके अतिरिक्त और कोई चारा भी न था, और इतनी सामर्थ्य भी न थी कि उल्टे पैरों लौट ही पड़ते। जब हम अपने स्थान पर वापिस आये तो छोटा दल अपने साथ लाये हुए पके-पकाये भोजन से तृप्ति कर चुका था। उसका जल-प्राप्ति का उद्योग हमसे अधिक सफल रहा। उन्होंने सोते में सीली जगह पर एक गढ़ा किया। शनैः-शनैः वह जल से आपूर्ण हो गया और जब कोई आधे घण्टे में उसकी मिट्टी अच्छी तरह जम गई और पानी निथर आया तो उसे पीने के उपयोग में लिया। हमने भी इसी प्रकार कई उद्योग किए, किन्तु हमें उनसे केवल इतना ही जल प्राप्त हो सका कि वह सब का सब भोजन बनाने में समाप्त हो गया। इसके अतिरिक्त और जितने भी गढ़े खोदे गए वे सभी मेहनत भर करा के रह गये। अन्त में हमें अपना उद्योग छोड़ देना पड़ा।

पाक-विभाग भाई जयदेव, रघुवीरसिंह और किशनचन्द के हाथों में था। झा बेहाल-सा पड़ा था। कवाहर कुण्ड के जल में केकड़ों को क्रीड़ा देख रहा था। जुलाहे जल से ऊपर ताना-बाना बुन रहे थे। सहसा कुछ चिड़ियों की चहचहाहट ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया। मैंने ऊपर की ओर दृष्टि घुमाई। देखा, छोटी-छोटी नीली चिड़ियाँ इधर-उधर फुर-फुर करके उड़ती हुई चहचहा रही थीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जीवन में मैंने कभी इतनी सुन्दर और इतनी छोटी चिड़ियों को न देखा था। उनसे परिचय की इच्छा प्रबल हो उठी। पर अस्पष्ट मधुर ध्वनि के अतिरिक्त उनके पास मेरा कोई समाधान न था। किन्तु मेरा मन मान ही न रहा था। बस, मैंने स्वतः उनका नामकरण कर दिया—'नीलम !' जवाहर ने सुना था।

नीलमों को निहारते-निहारते मेरा ध्यान पुनः उस एक-एक बूँद टपकते हुए जल की ओर आकृष्ट हुआ जो दुर्लभत्व के कारण हीरक से भी बहुमूल्य हो रहा था। सहसा मुझे एक उपाय सूझा और मैं खाली लोटा लेकर चूते हुए पहाड़ की दरारों में जा खड़ा हुआ। बड़े प्रयत्न से मैं एक-एक बूँद को घेर पाता। भोजन तैयार होते-न-होते मेरा पात्र पूर्ण हो उठा। उस पूर्ण पात्र को देखकर मैं अलौकिक हर्ष से नाच उठा और उसे पीने की इच्छा का निरोध किए छाती से लगाए फिरता रहा, मानों समुद्र-मन्थन करके थोड़ा-सा अमृत प्राप्त कर सका हूँ।

किन्तु उतना ही जल पर्याप्त न था। अतः कुण्ड से एक बड़ा पात्र भरा और उसे अच्छी तरह निथारकर चीनी मिलाकर पीने के योग्य बनाया। भोजन बहुत ही स्वादिष्ट बना था। हम सब तारीफ कर-करके एक'एक ग्रास खा रहे थे। भोजन से तृप्त होकर चीनी-मिले जल को ही पीने की चेष्टा की, किन्तु घ्राण की तीव्रता के कारण एक-एक दो-दो घूँट से अधिक न पी सके। लोटे के जल में से किसी प्रकार आचमन करके प्यास को बहकाया, और फिर रिक्त पात्र लेकर एक-एक बूँद को घेरने में लग गये। हम जानते थे कि हमसे कुछ ही मिलों के अन्तर पर पुष्कल शीतल जल से भरी गङ्गा बह रही हैं, किन्तु वहाँ तक पहुँच न होने के कारण एक-एक बूँद जल से प्यास बुझाने का चन्दा को छूने का-सा वामन-प्रयत्न कर रहे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

थे। बहुत अधिक प्रयत्नों से थोड़ा-सा शुद्ध पीने योग्य जल किञ्चित् कर पाया था कि मेरा पैर फिसल गया। कुण्ड में गिरते-गिरते भी मैंने पात्र को हाथों से गिरने न दिया। फिर भी मेरा अमृत छलक कर जहाँ-का-तहाँ जा पहुँचा। मैंने सरोष देखा—केकड़ा तट पर आकर विश्राम कर रहा था, जुलाहा अपने ताने-बाने में मस्त था, नीलमें चहचहा रही थीं और मैं, मेरे साथी, एक-एक बूँद जल के लिये तरस रहे थे। ओह, अपनी श्रेष्ठता के अहंकार में आदमी कितना विपन्न !

और उस विपन्नता की पराकाष्ठा का दृश्य, अन्तिम दृश्य, अभी शेष था।

रघुवीर सिंह दर्द से छटपटा रहा था। दस्तों और कैं ने पस्त कर डाला था। मुझे लगा, प्यासा ऊँट वलबलाया। दम तोड़ता बैल डकारा। कुण्ड के जल का रघुवीर पर मारक प्रभाव हुआ था।

भाई जयदेव ने धीरे से कहा—कालरा, हैजा !

मेरे हाथों से जल-पात्र छूट गया; रहा-सहा अमृत भी जाता रहा।

कैं, दस्त, छटपटाहट, दर्द, वेदना, रोना, चिल्ला-चिल्ला कर आँसुओं के बिना रोना। ओह रघुवीर !

जयदेव उपचार में व्यस्त थे। जल को गरम करके साथ में लाई अमृत-धारा बूँद-बूँद करके पिलाते। पीते ही कैं होती और उन कुछ बूँदों का पता भी न चलता।

ठीक दुपहरी; बियाबान जंगल, नगर और गाँव से कहीं दूर, मार्ग दुर्गम, साधनों का सर्वथा अभाव, बूँद जल भी नहीं पीने को।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

रघुवीर ! कै, दस्त, हैजा, ! दर्द, हाय ! रघुवीर छटपटाया, बैल डडकारा ! हाय ! रघुवीर निढाल था।

छोटे दल को हमने अपना सब सामान सौंपा और रघुवीर को हाथोंहाथ उठाकर जितना भी शीघ्र बन सके श्यामपुर पहुँचने का निश्चय किया। लाठियों और दरी की सहायता से स्ट्रेचर भी तैयार किया, किन्तु मार्ग इतना ऊबड़-खाबड़ और संकीर्ण था कि स्ट्रैचर के लिए कोई सुविधा ही नहीं दीख पड़ती थी। हम सोच ही रहे थे, क्या करें ?

मैंने रघुवीर की ओर देखा। हममें से प्रत्येक ने रघुवीर की ओर देखा, रघुवीर ने मेरी ओर देखा। हममें से प्रत्येक की ओर देखा। उसने हमारी आँखों में जाने क्या देखा कि चमककर खड़ा हो गया। उसके कुछ शब्द ये थे—चलो, जल्दी चलो, मैं प्रस्तुत हूँ।

और वह सचमुच ही प्रस्तुत था। जाने कौन-सी शक्ति उसमें जाग उठी थी कि उसने समय देखा न अपनी अवस्था। बस चल पड़ा। स्ट्रैचर के लिए उसने मना कर दिया। किसी के सहारे की उसने जरूरत न समझी। बस जैसे आँधी उठती है, वैसे ही वह भी उठा, अव्याहत गति ! पेट से उसके गर्म पानी की फौजी थरमस बँधी थी, और वह उसी को थामे बढ़ रहा था, झपट रहा था, दौड़ रहा था। वह सब के आगे-आगे और हम सब उसके पीछे-पीछे। जयदेव ने उसे नायक कहा था। इस समय सचमुच ही वह नायक था।

आँधी उड़ी जा रही थी, तिनके से लेकर पेड़ तक उसके साथ लगे जा रहे थे। नदियाँ प्रतिकूल-प्रवाह हो उठी थीं, पर्वत डोल गए थे।

यह कल्पना है, किन्तु रघुवीर के उस प्रस्थान-वेग को देख कर यह सत्य जान पड़ता था। मैंने सोचा था कि जो सिर के विच्छिन्न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हो जाने पर भी धड़ों को सङ्गर में सन्नद्ध देखा जाता है, क्या उनके मूल में भी ऐसा ही पौरुष नहीं होता, जैसा इस समय हमारे नायक में जाग रहा है।

ओः! फिर दर्द, फिर दस्त, फिर कै, रघुवीर गिर रहा है, रघुवीर पड़ रहा है। पुनः पौरुष जागा और हमने देखा, रघुवीर दौड़ रहा है, रघुवीर उड़ रहा है!

अन्धड़ चला, बवण्डर उठा, रघुवीर उड़ा। हमारे देखते पौरुष जगा। रघुवीर और पौरुष, कोई अन्तर नहीं।

मैं रघुवीर का यह अमानुषी साहस देख देखकर चकित था। सोचता कि जब दुनिया को यह आँखों-देखी कहानी सुनाऊँगा तो क्या वह विश्वास कर लेगी। रघुवीर ने जो साक्षात् कर दिखाया, उसका यथातथ्य चित्रण मेरी लेखनी नहीं कर पा रही है, उसकी शक्ति को उसके पौरुष की, उसके सिंहविक्रम की यथोचित वर्णना करने में मैं चूक रहा हूँ, पिछड़ रहा हूँ। मैंने तो जीवित पौरुष के, दुर्दमनीय विक्रम के, अप्रतिहत साहस के साक्षात् दर्शन किये, पर कैसे व्यक्त कर डालूँ वह सभी कुछ अपने पाठक के समक्ष। बस इतना ही उससे अनुरोध करूँगा कि जो कमी रह गई हो उसकी पूर्ति कल्पना से कर लीजिए! भूल में आकर कहीं अपने विश्वास का सीमा-सङ्कोच न कर डालना!

हम नाले में ही थे कि कुछ ही दूरी पर भालू दिखाई दिया। मैंने रघुवीर की ओर देखा, रुक जाने को कहा, पर उनके पास शायद विलम्ब करने को भी समय न था। उसने कहा, मौन भाषा में कहा—बढ़ता चल मेरे भैया, बढ़ता चल।

और मैंने देखा, रीछ हट गया, रीछ रुक गया। किन्तु रघुवीर न रुक सकता था, न हट सकता था। वह बढ़ता गया, उड़ता गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरी शैली कुछ नाटकीय हो रही है। मैं विवश हूँ, सीधे से सब कुछ कहना चाहता हूँ, किन्तु जो कुछ कहा वह इतना असामान्य था कि शैली को याथार्थ्य लाने के लिए वक्र होना पड़ रहा है।

मैं करूँ भी क्या? मैंने देखा हैं, रघुवीर के छोटे-बड़े पन्द्रह साथियों ने देखा है और उन सबकी तीस आँखें साक्षी हैं कि गधे के बराबर ऊँचा सूअर मार्ग रोके बीचोबीच खड़ा था और तब भी रघुवीर रुक न रहा था, हट न रहा था, रुक न सकता था, हट न सकता था।

यह जितनी कल्पना है, उससे कहीं अधिक सत्य है।

सोता समाप्त हुआ। मूँज का जङ्गल पीछे रह गया। आमले का वही पेड़ आया और वह भी पीछे रह गया था।

जाते समय जल्दी में जो जङ्गल ध्यान आकृष्ट न कर सका था, जिसे हमने समझ भर लिया था कि गहन है, विजन है, बियाबान है, उसे अब उससे भी अधिक जल्दी में लौटते हुए देख रहे थे—नङ्गा है, नङ्गा जंगल!

चिलचिलाती धूप, झुलसाती गरम हवा, पेड़ों से भरा और घना जङ्गल। फिर भी नङ्गा! वे गगनचुम्बी ऊँचे-ऊँचे पेड़ एकदम नङ्गे सर्वाङ्ग नङ्गे। एक भी तो पत्ता नहीं, सूखा ही सही जिसे हवा हिलाये, हवा गिराये, हवा उड़ाये। एक भी तो पत्ती नहीं, जो छाया करे, जो हरियाली दिखाये, जो सुस्ताने के लिए जी अटकाये।

बस नङ्गा जङ्गल, दरिद्र जङ्गल, सूखा और सुनसान जंगल! धूप और धूल, लू और खुश्की—यह थी वन-श्री। आदमी और व्याधि, आवश्यकता और विवशता, यह थी परिस्थिति।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मैं सोच रहा था—ओ रे झङ्खाड़ जंगल, तू इतना अभाव देव क्यों ? कहीं मेरा रघुवीर तुझसे एक बूँद भी जल माँग बैठा तो ?

वता रे तो ?

आः सचमुच ही रघुवीर माँग बैठा, 'जल'! बोला—भैया, जल ! एक घूँट जल !

मेरी आत्मा रो पड़ी । आँसू उमड़ पड़े ।

और मैंने अपनी विवशता पर हँसते देखा, कि रघुवीर पेट से बँधी थरमस को खोलकर पी रहा है जल ! एक घूँट, दो घूँट !

मैंने थरमस ले ली !

फिर वही दौड़ ! रघुवीर उड़ चला। वह हाँफ रहा था, वह थक रहा था, फिर भी हार न रहा था। कदम-कदम पर प्यास ! कहता—भैया, जल !

एक घूँट, दो घूँट और बस !

मैं थरमस ले लेता ।

और रघुवीर ने जब फिर पानी माँगा तो थरमस ने एक घूँट दिया, दो घूँट दिया, और बस !

मेरे हाथ में खाली थरमस थी।

और जब रघुवीर फिर गिरा तो श्यामपुर आ गया था। रघु-रघुवीर गिरा रहा, जयदेव उपचार कर रहे थे।

मैं सोच रहा था—क्या पौरुष चुक गया ?

किन्तु पौरुष शेष था ।

रघुवीर का विक्रम अदमनीय था ।

उसका साहस धन्य था ।

हमारी प्रार्थनाएँ अनन्त थीं ।

और फिर—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

अन्धड़ चला, बवण्डर उठा, रघुवीर उड़ा।

पौरुष जगा। रघुवीर और पौरुष, कोई अन्तर नहीं।

और हमारे देखते-देखते श्यामपुर, काँगड़ी सब छूट गये, पीछे रह गये। पहला मझाड़ा आया, वह भी पिछड़ गया; दूसरा मझाड़ा; वह भी रह गया। तीसरा मझाड़ा आया, वह भी छुट गया।

मझाड़ा आया, मझाड़े आये। मझाड़ा छूटा, मझाड़े छूटे। मझाड़े साथ न दे सके। उसे रोक न सके।

सब कुछ पिछड़ रहा था, छूट रहा था उस वन्य धरित्री का, उसके ऊपर के आवरण का। छूट गया वह स्थल भी जहाँ मृग-दल मिला था, रह गया वह स्थान भी जहाँ से नक्षत्रों और ग्रहों की गति-विधि देखी थी। बस, अग्रसर था एकमात्र रघुवीर !

रघुवीर वेग से प्रत्यावर्त्तन कर रहा था। अपने पद-चिह्नों पर से, मिट चुके पद-चिह्नों पर से गुजर रहा था वापिस ! किन्तु श्लाघ्य था यह प्रत्यावर्त्तन ! दर्द उठा, पर उसने उफ न की। प्यास लगी, पर उसने जल न माँगा। शक्ति ने जवाब दिया, किन्तु वह न हारा।

और फिर नक्षत्रों के मधुरालोक में गहन तिमिर से आवृत चण्डीघाट के इस पार नोलधारा के पथरीले विजन तट पर अपने साथियों से परिवृत्त नायक खड़ा था चुपचाप, शून्य दृष्टि से पार की ओर देखता हुआ। अब हमारे भाल-फलक नमित थे, उत्साह अस्त हो चुका था, कल्पना मर चुकी थी। हमने भी शून्य दृष्टि से पार देखा, उस पार !

नौका उसी पार बँधी थी और मुंशी की झोपड़ी का टिमटिमाता आलोक हमें उस तट से आकर्षण-सूत्र में बाँधे था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उस तट को तत्काल छूने की जाने कितनी आकुलता हमारे प्राणों में भरी थी। हमने मुक्तकण्ठ से उसी करुणा और दीनता से मल्लाह को पुकारा, जिस करुण और दीनता से भक्त भव-सागर का सन्तरण करने के लिए भगवान् को पुकारता है। पर हमारी पुकारें पर्वतों का उपहास और अरण्य-रोदन मात्र बनकर रह गईं। घर के इतने निकट आकर भी हम कितने असहाय सिद्ध हो रहे थें।

एक-एक क्षण एक-एक युग हो रहा था, और वहाँ बिताने पड़ रहे थे घण्टे। उस पार झोपड़ी का टिमटिमाता प्रकाश हमें विवश और बेचैन कर डालता और सारी शक्ति से पुकार उठते हम सब! पर व्यर्थ।

अन्धकार बढ़ा, तारों की जगमगाहट बढ़ी। हमारी विवशता बढ़ी, रघुवीर की विषमता बढ़ी।

मझाड़े के तीखे ठण्ढे नैश पवन ने जोर पकड़ा।

मैं नील-धारा के घुटने-घुटने ठण्ढे जल में खड़ा, मल्लाहों को पुकार रहा था। खड़े-खड़े मेरे पैर सुन्न हो गए, आवाजें थक गईं! पर सुनता कोई नहीं, किनारा भी नहीं, जल भी नहीं, पत्थर भी नहीं, रेती भी नहीं। सब गूँगे, सब बहरे। सारी प्रकृति गूँगी बहरी!

मैं बाहर चला आया।

रघुवीर के नेत्रों में निराशा थी, जो पूछ रही थी—अब क्या होगा?

मैं अपने आपसे पूछ रहा—हाँ, अब क्या होगा?

सब-सब से पूछ रहे थे—अब क्या होगा?

पर उत्तर किसी के पास कुछ न था।

ठण्ढ बढ़ी, ठण्ढी हवा बढ़ी, हमारी घबराहट बढ़ी, रघुवीर की बीमारी बढ़ी!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MH

रघुवीर के स्नायु बन्धन-मुक्त हो रहे थे, वह उन्हें जकड़ता-सा बोला—भैया, मैं यहाँ नहीं रुक सकता, मुझे पार जाना ही होगा।

और मैंने सोचा—तो क्या अब यह सचमुच ही अन्धड़ बनकर उड़ेगा, तूफान बनकर उठेगा। क्या करेगा अब यह? क्या रह गई है उसमें शेष शक्ति?

शक्ति ही तो नहीं रह गई थी शेष उसमें। इसी से तो कह रहा था—"भैया, मैं यहाँ रुक नहीं सकता, मुझे पार जाना ही होगा।"

ठीक जीवन-मरण का प्रश्न!

पार जाना जीवन था, इधर रहना मृत्यु! और कुछ भी हो, हमें उसे मृत्यु से सुरक्षित रखना ही था। उस किनारे पर अपने पैरों खड़े देखना था। मैंने हृदय में साहस का सञ्चय किया। आत्मा ने कहा—हाँ रघुवीर, तुम अवश्य पार चलोगे। यहाँ नहीं रहोगे। मैंने रघुवीर को सुनाकर कहा—घबराओ नहीं भैया! तुम पार चलोगे, मैं तुम्हें ले चलूँगा।

रघुवीर ने विश्वास किया!

तब लोगों का निश्चय था कि इधर ही कहीं उसे हवा से सुरक्षित स्थान में अच्छी तरह ढाँप-पोसकर रक्खा जाये। नाव इधर आ नहीं सकती थी, और उसके बिना पार जाया नहीं जा सकता।

किन्तु मैं कह चुका था—घबराओ नहीं भैया, तुम पार चलोगे, मैं तुम्हें ले चलूँगा। और उसने विश्वास किया था।

तैरना हममें से प्रायः सभी जानते थे। किन्तु बीस मील की दौड़-धूप के बाद अब किसी में इतना साहस न रह गया था कि गंगा की उस खर धार को ठण्ढी हवा से ठिठुर इस समय रात्रि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

में पार करने की कल्पना करता। मैंने गामा की ओर देखा। वह मेरी दृष्टि का अर्थ समझता था। वह लंगर कसकर तैयार हो गया। किन्तु नाव वह अकेला ला नहीं सकता था। इसके लिए गिरीश प्रस्तुत था।

दूसरे ही क्षण गामा और गिरीश धारा में वहे जा रहे थे। झा के टार्च का प्रकाश उनके मार्ग को आलोकित कर रहा था। मैं साँस रोके उनके पार लगने की प्रतीक्षा कर रहा था। एक-एक साँस, ओः कितनी लम्बी थी वह! दीर्घ-से-दीर्घ जीवन की समस्त साँसों से भी लम्बी एक-एक साँस।

और गामा और गिरीश किनारे पर खड़े थे। मेरी आँखों में आह्लादाश्रु छलक उठे।

उस पार न मल्लाह था और न मुंशी! सूनी झोपड़ी में दीपक की जोत किसी के आगमन की प्रतीक्षा का संकेत भर थी। किन्तु गामा और गिरीश के पास इतना आवकाश न था कि दीपक की जोत के साथ जल-जल कर प्रतीक्षा करते। उन्होंने नाव में बैठकर डाँड़े सम्हाले और नाव खोल दी। मुझे लगा, रघुवीर बच गया।

किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने देखा कि नाव बेकाबू होकर बढ़ी जा रही हैं। गिरीश चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था—अब नहीं बचेंगे भाई साहब! डाँड़ की रस्सी टूट चुकी है और नाव बही जा रही है।

गामा अब भी सुस्थिर था और गिरीश को घबराने देना न चाहता था। किन्तु गिरीश की घबराहट बढ़ती जा रही थी और उसके निराशा-सूचक उद्‌गार सीधे हम तक पहुँचकर इस पार के सभी लोगों को घबरा रहे थे। नाव काफी नीचे जा चुकी थी और अब हमारी टार्च का प्रकाश भी उसे देखने में असमर्थ था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MH

मैंने चिल्लाकर कहा—गिरीश घबराओ नहीं, नाव बहती है तो बहने दो। तुम प्रवाह की उल्टी तरफ कूदकर किनारे लग जाओ। नाव की चिन्ता मत करना। सुनते हो ?

और उससे भी पहले रघुवीर सुन चुका था। उसने बैठते स्वर से पूछा—क्यों भैया, क्या नाव बह गई ? अब नहीं आयेगी इस पार ?

मैंने फिर भी कहा—क्यों नहीं आयेगी ? आ तो रही है।

पर वह मेरी दो बातों में से किस एक को सच मानता। वह खड़ा होने की कोशिश करता-करता पत्थरों पर ही गिर पड़ा।

मैंने देखा—निशा के कबरी-पाश से एक तारक-पुष्प टूटा और आकाश में प्रकाश की रेखा खींचता हुआ बुझ गया।

हम सब आर्त्तनाद कर उठे।

रघुवीर को फिर से एक दस्त हुआ और साथ ही एक कै। बस, शरीर ठण्ढा पड़ने लगा और नाड़ी-ज्ञान असम्भव-सा हो गया। हृदय मन्द गति से अब भी धड़क रहा था। जीवन का यही एक कोमल चिह्न शेष था।

भाई जयदेव ने तत्काल रघुवीर को सम्हाला। हमारे पास जितने भी गरम-ठण्ढे ओढ़ने-बिछाने के वस्त्र थे, सभी रघुवीर पर डाल दिये गये। अधिक-से-अधिक गर्मी पहुँचाने की चेष्टा की जाने लगी। सभी लड़के हवा से सुरक्षित रखने के लिए घेरकर खड़े हो गये। और अब अथक परिश्रम से भी हारकर जयदेव ने मुझसे कहा कि नाड़ी-ज्ञान होने लगा है, तो मैंने अनुभव किया कि मैं सचमुच ही जी उठा हूँ। मेरा रोम-रोम रघुवीर की स्वास्थ्य-कामना करता हुआ खिल उठा और मस्तक अज्ञात शक्ति के समक्ष कृतज्ञता के भाव से सहज ही नमित हो गया। मेरा विश्वास मुझे जिला रहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

था, मेरा विश्वास रघुवीर को जिला रहा था। हम दोनों का जीवन विश्वास ही बनकर रह गया था।

मल्लाह सौदा लेने बाजार गया हुआ था। लौटकर उसने गिरीश की 'वहे-वहे, डूबे-डूबे' चिल्लाहट सुनी। उसने नाव को भी वहते देखा और वह चिल्लाता हुआ उसी ओर दौड़ पड़ा। हमने जब रघुवीर की ओर से निश्चिन्तता की साँस लेकर उधर देखा तो डाँड़ों की क्रमबद्ध छप्-छप् स्पष्ट सुनाई पड़ने लगी। झा ने टार्च का प्रकाश फेंका और तत्क्षण ही हम सब-के-सब एक साथ चिल्ला उठे, नाव आ रही है, नाव आ रही है !

किन्तु इतने से भी मुझे सन्तोष न था ! चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था—नाववाले, जल्दी से ले आओ नाव। मुँहमाँगा इनाम मिलेगा। दस, बीस, पचास, सौ। जो कुछ भी एक जान बचाने का पुरस्कार हो सकता है वह सब !

और इधर रघुवीर बेहोशी में प्रलाप कर रहा था—लो, मैं मर गया। अब नहीं बचने का। भैया, देखो मुझे ये यमदूत लेने आ ही गए। अच्छा विदा, भैया विदा !

उसका प्रलाप असह्य हो रहा था। मैंने उसके शरीर को जोरों से झिझोड़ा। उसने किंचित् नेत्र खोले—कौन, भैया !

मैंने कहा—हाँ !

वही प्रलाप—अब मैं चला।

पागल !—मैंने उसे हिलाया—रघुवीर मेरा विश्वास रख; मैं तुझे मरने नहीं दे सकता। ध्यान रख, हमारी जान इतनी सस्ती नहीं कि प्रकृति का एक साधारण-सा मजाक भर बनकर रह जाएँ। हमें बहुत कुछ करना है। और इसीलिए जीना है। फिर तू घबराता किससे है ? क्या आदमी से भी बड़ा कुछ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MH

और उसने भी कदाचित् विश्वास कर लिया।

रघुवीर को फिर बेहोशी आ गई और वह फिर से एकदम गुम हो गया। हमारे उठते-गिरते उत्साह और आशा के साथ-साथ नाव के डाँड़े भी उठ गिर रहे थे। और जब मैंने गामा को नाव से कूदकर पुनः अपने समीप खड़ा देखा तो पुलकित हो उठा। उसके पास ही ठण्ढ से ठिठुरता गिरीश खड़ा था। हमने सस्पृह उन दोनों वीरों को देखा। वे थे अपनी जान पर खेलकर रघुवीर के प्राणों को बचानेवाले, हम सबके प्राणों के रक्षक, साक्षात् देवदूत ! उनके कार्य का कोई पुरस्कार नहीं।

नाव डाँड़े डाले तट से सटी खड़ी थी। साक्षात् वरुणदेव के वरदान-सी वह तरी ! मैंने अतुलित श्रद्धा से उस तरी और वरुण-रूप केवट का अभिवादन किया। आः रघुवीर के प्राण ! भला प्राणों का भी कोई मूल्य ?

उसी बेहोशी की अवस्था में रघुवीर के निःसंज्ञ शरीर को हाथों-हाथ उठाकर नाव पर रखा गया। हम सब भी नाव में बैठे। नाव का एक डाँड़ा मैंने सम्हाला। दूसरे पर स्वयं मल्लाह था। अनन्त आशा और उत्साह से भरकर मैंने डाँड़ा डाला—छप् मल्लाह का डाँड़ा अभी चुप था। मैंने पुनः हाथ घुमाया—छप् !

नरी तट से हटी !

सर्वत्र निविड़ अन्धकार। गगन में उसका भेदन करने का व्यर्थ प्रयास करता हुआ सीमित-ज्योति तारालोक, नीचे पृथ्वी पर जंगल और पहाड़ों के बीच गंगा के उत्तुंग वक्ष पर फिसलती हुई हमारी तरी। तरी पर मौत का-सा सन्नाटा, वैसा ही जैसा कि उसके चारों ओर के वातावरण में। डाँड़ों की छप्-छप् और बस विजन, नितान्त निभृत।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मैंने रघुवीर के मूर्छित शरीर पर दृष्टि डाली और साथ ही मस्तिष्क में उससे बहुत पूर्व की प्रतिकूल स्मृति जागी।

पटारों की थपकियों से डोल-डोलकर उठती-सी और मचल-मचलकर रह जाने वाली नाव, उस पर श्याम केशविहीन एक वृद्ध शराबी, आयुधधारियों से सुरक्षित हमारे आश्चर्य का पात्र, अपनी मस्ती का पुतला; बोतल का काग उड़ता, हवा चोख-सी उठती; वह जहर पीता-सा तपाक से रह-रहकर पुकारता—मेहरबान सिंह!—अजीब समाँ!

चाँदनी हँसी, लाल ढाँग का ठेकेदार हँसा, उसके आयुधधारी रक्षक हँसे, मल्लाह हँसे, हम सब हँसे और हँसे निरञ्जनदेव भी—हाँ, मेहरबानसिंह!

पर आज—खामोशी, उदासी, मौत का-सा सन्नाटा! अँधेरा, थकान और सुस्ती! बेहोश रघुवीर, बेहोश दिलों से घिरा हुआ। सब गूँगे, सब बहरे। सब पत्थर! केवल डाँड़ों की ध्वनि हो रही थी—छप्-छप्! नाव बह रही थी—थिरक-थिरक!

हाँ, मेहरबानसिंह.........नहीं रघुवीरसिंह!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

अंधेरे की दुनिया

शिवालक पर्वत के पादवनों के पश्चिमी खण्डों में कदाचित् विहगों के नाम पर केवल चमगादड़ ही हैं। जब सूर्य के अस्तगामी हो चुकने पर विरल तारों की-सी छाया में वे अपने झाड़-खण्ड से युगपद रात्रि भ्रमण और आहार-अन्वेषण के लिये उड़ती हैं, तो आकाश में मेघ छा जाते हैं। इस पादवनी में आज ही की तरह कई दशक पूर्व भी चमगादड़ें परिवार-बद्ध होकर रहती थीं। खास-खास द्रोण और खण्ड उन पृथक्-पृथक् परिवारों के अधिवास के लिये निश्चित रहते आये हैं। प्रत्येक परिवार या कुल का प्रायः एक ही गोत्र होता था। गोत्र वृद्धि के लिये वे अपने कुलों में ही विवाह इत्यादि किया करते थे। इस पश्चिमी पादवनी के कुलों में 'तम योनी' नामक कुल नवीन वनियों के शोध, आक्रमण, प्रत्याक्रमण तथा सभी विचक्षण कार्यों में विशेष रूप से ख्यात था। इस कुल में नवजात को विशेष रूप से कुलोचित शिक्षा दी जाती थी। कुल में गण प्रणाली प्रचलित होने पर भी तथा समानता का अधिकार रहते हुए भी विशेष-विशेष जन अपने असामान्य कार्यों और कुलवृद्धि के निमित्त किये गये पराक्रम के लिये विशेषतः पुरस्कृत होते थे। इसी तमयोनी कुल के एक युग्म को अन्य आततायी कुल से आक्रान्त होने पर विशेष कौशल और विक्रम का निदर्शन प्रस्तुत करने के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कारण विशेष सम्मान दिया गया था। यदि वह युग्म आततायी कुल को नष्ट करने के लिए किसी प्रकार उसकी वंश-भूमि को ज्वाला क्रान्त न कर डालता तो स्वयं उनके कुल का विनाश अवश्यम्भावी था। आततायी कुल हिमवान की प्रायः सभी पादवनियों के कुलों में अपनी नृशंसता और शक्तिमत्ता के लिए विश्रुत था। यहाँ तक कि उस कुल को हिमाच्छादित प्रदेशों को श्वेत जातियाँ भी जो कि अपनी वीरता के लिए अद्वितीय समझी जाती हैं विनष्ट कर डाली थीं। उस युग के उस अवधारणीय वीरत्व से मुग्ध होकर कुल ने उन्हें अपने नाम में स्वतन्त्र गोत्र के संस्थापन की ही अनुमति दे डाली थी, साथ ही आततायी कुल के नवीन शोध में प्राप्त विहार भूमि के सुविस्तृत एवं विविध वृक्षों के सम्पन्न खण्ड को अधिवास के लिए प्रदान कर दिया था! उस युग्म के नर का नाम 'तम' और मादा का नाम 'तमी' था। नर ने अपनी प्रिया के प्रसाद के लिए तमीचर नाम से अपने गोत्र को निर्दिष्ट किया। तम-तमी नव परिणीत थे और अभी तक उनके गोत्र में किसी नवीन का आविर्भाव नहीं हुआ था।

तमयोनी कुल ने आतत्रायीं कुल के एक भीषण पराक्रम वाले युग्म को तमीचर युग्म की देख़-भाल में बन्दी करके छोड़ दिया था। तमीचर युग्म ने उनका नाम विजित युग्म रखवा दिया था; वह विजित युग्म तमीचर युग्म की भूमि के शाल्मली नामक उपखण्ड में बन्दी बनाकर रखा गया था। साथ ही ऐसी व्यवस्था भी कर डाली गई थी कि वह विजित युग्म शाल्मली उपखण्ड को सीमा को अतिक्रान्त कर ही नहीं सकता था। उनके पारस्परिक संग की इच्छा पर भी पुनः कुल-वृद्धि के भय से प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। मृत्युदण्ड के भय से वह विजित युग्म अवसर रहने भर भी संगेच्छा पूर्ण कर ही नहीं पाता था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MI

एक दिन विरल नक्षत्रों की छाया में, दो कलाओं के चन्द्र के उदय काल में वह विजित युग्म संगेच्छा से इतना प्रपीड़ित हुआ कि इन्होंने इच्छापूर्ति के लिए जीवन को दाँव पर लगाने का निश्चय कर ही लिया। नर ने कहा—कज्जली, कितने खेद की वात है कि पूर्व युगों में हमसे पराजित तमयोनी कुल वंश वृद्धि के लिए एकाधिक गोत्रों की सृष्टि कर डाले, और हम एक ही वार की पराजय से इतने विवश हो जायँ कि अपने सनातन गोत्र की भी रक्षा न कर सकें।

कज्जली ने सखेद उत्तर दिया—यह तो मैं भी सोचती हूँ कज्जल ! देखो इन दो कलाओं के चन्द्र को देख कर जब सभी कामशमन एवं सन्तति वर्द्धन की इच्छा से चन्द्रास्त काल तक अनवरत संग करेंगे तव मैं तुम्हारे बाहुप्रसाद की सीमा में होती हुई भी तुम्हारे संग से वंचित रहूँगी ! कज्जल, ऐसे पराधीन जीवन से तो मैं मृत्यु को ही श्रेष्ठ समझती हूँ।

कज्जली की नारी भावना मानो कज्जल के अदम्य पौरुष को धिक्कार रही थी। आततायी कुल का सर्व पूजित कज्जल, अपने पराक्रम से श्वेत वाग्गुदाओं को परास्त कर सकने वाला कज्जल आज इतना विवश कि अपनी बाहु-प्रसार-सीमा में स्थित काम पीड़ित भार्या की संग के द्वारा तृप्ति भी नहीं कर सकता था। उसकी शक्ति मानो शरीर की सीमा में बँधी न रहकर फड़फड़ाते पंखों से सूर्यलोक की विजय के लिये व्याकुल थी। उसने एक बार कज्जली की ओर देखा और देखा शाल्मली के उस उपखण्ड को ! उसने उग्र भाव से सोचा कि मैं अपने हाथों की शक्ति से हिमवान के हिममण्डित प्रदेशों तक को आक्रान्त कर सकता था, तो क्या आज वे इतने निर्बल हो गये हैं कि शाल्मली उपखण्ड की क्षुद्र सीमाओं तक को अतिक्रान्त नहीं कर सकते !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

वह प्रकट भाव से कज्जली से बोला—कज्जली, आज मैं तुम्हारी संगेच्छा अवश्य पूर्ण करूँगा। विश्वास रखो, मेघयोनि कज्जल के पक्ष इतने निर्वीर्य नहीं हो गये हैं कि शाल्मली उपखण्ड की सीमाओं में बँधा रह सके। जानती तो हो मेरे उस पराक्रम को, जिससे सभी कुल परास्त होकर हम सभी मेघयोनियों को आततायी कुल का कहकर भय और घृणा प्रकट किया करते थे। हमें उनकी उस भय मिश्रित घृणा में भी कम आनन्दन हीं आता था। तो आज जान लो कि ये चन्द्र रश्मियाँ, ये तारालोक हमारी ही प्रतीक्षा कर रहे हैं। आज मैं अवश्य ही उनके आह्वान और तुम्हारी इच्छा की पूर्ति करूँगा। द्विकल चन्द्र के कलाहीन श्याम अंश में स्थित होकर यदि मैंने तुम्हारी संगेच्छा पूर्ण न की तो प्रतिज्ञा भंग के पाप से अनन्त जन्मों में निर्वीर्य ही रहूँ तथा सदा विजित कुल में ही जन्म लूँ।

कज्जली ने अपने वीर पति की शूरवाणी सुनी, और आज सच ही उसने वीरभार्या होने के सच्चे सुख और आनन्द को उपलब्ध किया। उसने तीव्र काम भाव से केवल अपने पक्षों का विस्फालन कर सहमति जना दी। बस, दूसरे क्षण कज्जल वाधाजित शूर की नाईं अपनी काम-पीड़ित पत्नी के सहित शाल्मली उपखण्ड को अतिक्रान्त कर चुका था।

ठीक उसी मुहूर्त्त में द्विकल चन्द्र को देख तमी ने भी संगेच्छा प्रकट करते हुए तम से कहा—प्रिय, हमारे कुल में प्रतिपदिक चन्द्र का आयु-रक्षा के लिए तथा द्विकल चन्द्र का संग के लिए सनातन काल से महत्त्व प्रतिपादित होता आया है। हमारे नवीन गोत्र में अभी तक किसी नवीन का आगम भी नहीं हुआ है। अतएव गोत्रवृद्धि से संकल्प से तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि मुझे संगदान करो।

तम ने कोमल स्वर में उत्तर दिया—तुम ठीक कहती हो तमी! द्वितीया के उपरान्त ज्यों-ज्यों चन्द्र की कलाओं में वृद्धि होती जाती

१२६२४

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

है, त्यों-ही-त्यों हमारे अंधकार सुख में बाधा पड़ने लगती है। द्विकल चन्द्र हमारे लिए बाधक न होकर संगेच्छा के लिए साधक ही सिद्ध होता रहा है। मेरी भी इच्छा है कि द्विकल चन्द्र की कोमल रश्मियों पर संतरण करते हुए संगेच्छा चरितार्थ करूँ। किन्तु प्रिये, मैंने शाल्मली उपखण्ड के विजित युग्म पर संग तक के लिए प्रतिबन्ध लगा रखा है। मेरी इच्छा है कि आज मैं उस पर से भी यह बन्धन हटा लूँ।

तमी ने तम के इस उदार कार्य का मन से अनुमोदन ही किया; किन्तु वह बोलने जा ही रही थी कि उसने तम को कहते सुना—वह देखो तमी! विजित युग्म ने आज कारागार की सीमाओं का उल्लंघन कर मुझे अपमानित किया है। देखो, चन्द्रलोक की ओर किस द्रुतवेग से उड़ा जा रहा है। सङ्ग का यह अवसर भले ही निकल जाय, किन्तु हम उन्हें पुनः बन्दी बनायेंगे ही।

और वे तत्काल अनुधावन करते हुए उड़ चले। उड़ते-उड़ते शिवालक पादवनी पीछे छूट चली थी। वे शाल्मली, आम्र, बबूल इत्यादि के विस्तीर्ण वन-खण्डों को पार करते हुए गंगा के भयङ्कर आवर्त्तों वाले उस प्रदेश तक आ पहुँचे थे—जहाँ सुरेन्द्र और कमलनी ने सीमाओं के बन्धन तोड़ डालने के लिए आत्मविसर्जन कर डाला था। मेघयोनि कुलोत्पन्न युग्म ने देखा, किन्तु तम-तमी को अनुधावन करते देख इच्छा रखते हुए भी उस विचित्र व्यापार का परिणाम देखने के लिए रुक न सका। किन्तु संगेच्छा से विगलित तमी ने सर्वान्त की ओर अग्रसर होते हुए उस मानव युग्म को देख विशेष करुणा प्रकट की।

उसने तम को अग्रसर होने में बाधा देते हुए पूछा—प्रिय, मानव युग्म का यह कौन-सा संकल्प है। चेष्टा तो इसकी बड़ी ही विनाशकारी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

तम को रुक जाना पड़ा, बोला—चलती चलो तमी, ये अपनी सीमाओं के बन्धन तोड़ रहे हैं।

तमी न मानी—आह प्रिय, तब तो इस विजित युग्म को भी अपनी सीमा के बन्धन तोड़ने दो। हमने उनकी इच्छाओं पर भी प्रतिबन्ध लगा रखे थे। मैं नहीं जानती थी कि इस मानव युग्म को देखकर इस अभूतपूर्व भाव का उदय मेरे मन में क्यों कर हुआ। कोई रहस्य अवश्य है प्रिय !

तम ने जब तमी की ओर देखा तो वह उसकी उस दृष्टि की उपेक्षा न कर सका, मेघयोनि युग्म भी तब तक अन्धवनी में प्रविष्ट हो चुका था। अनन्तर दोनों ही युग्मों ने द्विकल चन्द्रमा की मधुर छाया में सङ्ग किया, किन्तु उस सङ्ग-काल में भी वे मानव युग्म की चिन्ता ही करते रहे।

:o: :o: :o: :o:

अगले दिन प्रातःकाल से पूर्व ही तम-तमी अपनी भूमि में लौट आये। तमी में विशेष प्रकार का उत्साह था, साथ ही उसको स्त्री-सौन्दर्य-सुधाकारी अलस भाव भी बढ़ता जा रहा था। ज्यों-ज्यों चन्द्र सकल होता गया, उसके अलस सौन्दर्य में भी रुचिर भव्यता आती गई। तम उसके इस आह्लादकारी परिवर्तन को प्रफुल्ल भाव से देखता हुआ गोत्रवृद्धि के ताने-बाने में मग्न रहने लगा। और जब प्रसवकाल निकट आता जान पड़ा तो उस युग्म को एक सुन्दर से कोटर की चिन्ता लगी। अन्त में उन्होंने फाल्गुन का आधा जाते-न-जाते एक बौराए आम्र वृक्ष में धूप, जल और हवा सभी से रक्षा करने में समर्थ सुन्दर-सा कोटर ढूँढ़ ही लिया। उत्तम क्षण में तमी ने उस कोटर में प्रवेश किया। बौर की गन्ध से तृप्त होते-न-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

होते उसने एक नर शिशु को जन्म दिया। फाल्गुन की पूर्णिमा, चराचर के लिए वह मनोहारी रात्रि थी। किन्तु तमीचरों के प्रवादानुसार यह तिथि और मुहुर्त दुर्लभ एवं शुभ होते हुए भी वंश-वृद्धि के लिए विघातक ही था। तम और तमी हर्ष-विषाद के झोंकों में पड़े अस्थिर भाव से भविष्य की चिन्ता करने लगे। वह शिशु भी चैत्र मास के कृष्ण पक्ष के बढ़ते हुए अन्धकार के समान असामान्य रीति से वृद्धि प्राप्त करने लगा। ज्येष्ठ का अन्त होते-न-होते उसके लिए अपनी भूमि में ही रहना कष्टकर हो गया। अतएव वह सतत अदृष्ट पूर्व वनों को देखने के लिऐ आकुल रहता। माता-पिता उसकी इस वृद्धि से हर्ष में भी शंकित रहते।

माता-पिता ने एक मति होकर उसका नाम तमस्कर रखा था। डेढ़ मास की आयु से ही वह शिक्षा के योग्य जान पड़ने लगा। अतएव उसकी माता उसके इस शिक्षा कार्य में प्रवृत्त हुई।

उसकी आरम्भिक शिक्षा थी—पुत्र, पहले तुम्हें अपने गोत्र, कुल एवं अपने आदि-पुरुष के उद्भव का कारण जान लेना चाहिए। पुत्र, तुम अपने पूर्वजों के समान ही तमयोनी कुल में उत्पन्न हुए हो। किन्तु तुम्हारा गोत्र उनसे पृथक् है। तुम्हारे गोत्र का नाम तमीचर है तथा उसके आदि-पुरुष और प्रवर्तक होने का सौभाग्य तुम्हारे जनक और जननी को ही प्राप्त है। इस नवीन गोत्र की कथा लम्बी है, उसे तुम समय आने पर स्वतः जान जाओगे। अब तुम्हें अपना जातीय धर्म भी जान लेना चाहिए। तुम तमीचर हो अतएव तुम्हारा कार्य-काल भाग्यवशात् सूर्य के अस्त और उदय काल के मध्य में निश्चित हो चुका है। अतएव तुम भूल कर भी सूर्यालोकित दिवस में बाहर निकलने की चेष्टा नहीं करना। इसके साथ ही तुम अपने एक और कर्तव्य से भी परिचित हो जाओ। हमारी जाति में नीड़ों का सेवन मूलतः वर्जित है। हाँ, आवश्यकता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

काल में कोटर और खोखल ही हमारा अधिवास बन सकती है। अतएव पुत्र, तुम इस धरा एवं आकाश के अन्तर को ही प्रधानतः अपना नीड़ समझना। कोटरों का सेवन करते-न-करते जब तुम अपने को सामर्थ्यवान् समझने लगो, तो तुम्हारा तात्कालिक कर्तव्य कोटर त्याग कर शाखा-चारी होने का हो जाता है। हमारे पूर्वपुरुषों ने ऋषियों को ही इसमें अपना आदर्श बनाया है। अतएव हे वत्स! जब तुम्हारे पक्ष इस योग्य हो जायँ, तो तुम अवश्य ही इस कर्तव्य का धर्म-बुद्धि से पालन करना।

तमस्कर को अभी तक आहार-विहार सम्बन्धी शिक्षा नहीं दी गई थी। उसकी ममतामयी माँ अभी इस बात की चिन्ता उसे करने दिया ही नहीं चाहती थी। किन्तु उसका जन्मजात बुद्धि-वैभव देख वह अपनी योनि के सभी कर्तव्यों से परिचित करा देना चाहती थी।

तमस्कर ने अपनी इस प्रारम्भिक शिक्षा को संबोध ग्रहण कर तो लिया, किन्तु उसकी सभी जिज्ञासाएँ इससे शान्त न हो सकीं। प्रायः वह कोटर से बाहर शाखा पर स्वाभाविक आचरण करता हुआ उन्हीं की चिन्ता करता रहता। एक दिन माता ने उसकी बढ़ती हुई चिन्ता को देखकर पूछा—पुत्र, तुम इस अल्पायु में ही कुछ चिन्तित रहते से जान पड़ते हो। तुम्हारे मन में जो भी शंकाएँ हों, उन्हें कहो।

तमस्कर ने कुछ झिझकते हुए से पूछा—अच्छा माँ, यदि अनुचित न हो तो तुम हमारे भिन्न गोत्र तथा तमीचर होने का रहस्य बताओ। मैं उस दिन से निरन्तर इन्हीं बातों की चिन्ता में व्यस्त हूँ।

माँ ने हँसकर उत्तर दिया—पुत्र तुम स्वल्पायु होने पर भी बुद्धि में परमायु प्रतीत होते हो। मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगी। पहले प्रश्न का उत्तर तो स्वयं तुम्हारे माता-पिता ही हैं। अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कुल की रक्षा में विशेष पराक्रम और बुद्धि का प्रदर्शन करने के कारण ही हमें यह विशेषाधिकार प्राप्त हुआ, जिससे तुम्हारे माता-पिता आगे की पीढ़ियों में इस गोत्र के आदि-पुरुष माने जाने जाकर ससम्मान देखे जायँ।

तमस्कर ने कहा—माँ मेरी एक चिन्ता तो दूर हुई, अब आगे कहो।

तमी बोली—अवश्य ही पुत्र, वह भी सुनाती हूँ। यह वस्तुतः हमारा जातीय पुराण है। एक बार हमारे पूर्वजों ने देवमाया के भ्रम में पड़कर सूर्य-लोक की विजय का निश्चय कर लिया था। अतएव उन्होंने एक विशाल सैनिक-संगठन कर सूर्य-मण्डल को आक्रान्त करने के लिए आकाश-मार्ग से प्रयाण कर दिया। यहाँ वे जिस सूर्य को अकेला समझते थे, निकट पहुँचकर पता चला कि वे सहस्रशः हैं और उनकी सम्मिलित शक्ति हमारी सम्मिलित शक्ति से अधिक है। फिर भी उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा और अग्रसर होते रहे। सूर्यताप असह्य होने पर भी, बारम्बार जल और झुलस उठने पर भी वे सूर्य की निकटतम राशि पर पहुँच गये। आज तक इससे पूर्व उत्तरराशि तक पहुँचने का साहस देव भी नहीं कर सके थे। सूर्यदेव को क्षुद्र खगों का यह शक्ति-परिचय असह्य लगा। अतएव उन्होंने अपनी प्रखर किरणों से प्रलयाग्नि की वर्षा कर सभी को भस्म कर दिया। किन्तु इस अनर्थ पर लोगों में हाहाकार मच गया। विधाता तो विशेष रूप से उद्विग्न थे। उनका विधान मिथ्या हो चला था। अतएव त्रिदेवों की महती अनुनय-विनय पर जब सूर्यदेव का क्रोध शान्त हुआ, तो उन्हीं के प्रीत्यर्थ चन्द्रमा ने सुधा-दान कर उन सब को जीवित तो कर दिया, किन्तु पहले जैसी दृष्टि-दान न कर सके। तब से हमारी दृष्टि दिनकर के प्रकाश में कुछ देख ही नहीं पाती। रात्रि को हम अपना दिन समझते है और तभी से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हमने चन्द्रदेव के प्रसाद के लिए अपनी उत्पत्ति चन्द्रमा से घोषित कर दी है।

अपने पूर्वजों का पराक्रम श्रवण कर तमस्कर भाव-बिभोर हो उठा। उसने कहा—माँ, मैं चन्द्रलोक की यात्रा अवश्य करूँगा। तुम मुझे शीघ्र ही ऐसे उपाय बताओ जिससे मैं अपने संकल्प में सफल हो सकूँ।

तमी ने भीत स्वर में कहा—वत्स, ऐसा कभी न कहना। नहीं तो देवों का प्रकोप होगा। तुमने कोई मिथ्याचरण नहीं किया, इसी से इस प्रकोप से बचे रहे। बच्चे ! अभी तुम्हें इस धरा के विषय में ही बहुत कुछ जानना है। हमारे जीवन के साधन इसी से सुलभ हैं।

इसके उपरान्त तमस्कर को वनस्पति-विज्ञान की शिक्षा दी जाने लगी। माता तमी ने बताया कि हमारे लिए कन्द, मूल और फल को छोड़कर शेष वर्जित हैं। इनमें भी बनजातों का जितना महत्व है अन्य का नहीं। अतएव हे पुत्र ! आज मैं तुम्हें साथ लेकर विचरण करूँगी और कुछ आवश्यक वृक्षों और उनके फलों से परिचित करा दूँगी।

इतना कह कर उस संध्या के प्रथम मुहूर्त में ही तमस्कर को लेकर चल पड़ी। अपनी भूमि से निकलते ही उसकी दृष्टि शाल्मली पर पड़ी। आरम्भ शून्य से ही हुआ।

तमी ने परिचय कराया—वत्स ! यह शाल्मली का वन है। देखो, कितने विशाल और सुविस्तीर्ण वृक्ष हैं। इन पर लगनेवाला फूल आरम्भ में देखने में कितना सुन्दर लगता है। किन्तु पुत्र कभी भ्रम में भी पड़कर उसके सेवन की आकांक्षा नहीं करना। यह शीघ्र ही स्वतः अखाद्य प्रमाणित हो जाता है। इस वन-खण्ड का उपयोग तुम्हारे कुल में आततायी बन्दियों को रखने के लिए होता आया है। वे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

इसके कच्चे फल खा कर किसी प्रकार जीवन धारण करने योग्य रहते हैं।

वहीं से ऊपर की ओर संकेत करती हुई तमी बोली—वत्स, तुम्हें यह जो आगे विस्तीर्ण शैलमाला देख पड़ती है और जो शिव के अलकों के समान जटिल है, इसे शिवालक कहते हैं। इस पर बहुत ही उत्तम खाद्य प्राप्त होता है। आओ, आज उधर हो उड़ चलें। मैं तुम्हें कुछ आवश्यक खाद्यों से परिचित कराऊँगी। मार्ग में पड़नेवाले कुछ विशेष वृक्षों की ओर भी ध्यान देते चलना।

इतना कह कर वे दोनों साथ ही शिवालक शैलमाला की ओर उड़ चले। धरा से कुछ ही ऊपर उठकर वे उड़ते जा रहे थे। तमी ने मार्ग में बतलाया—वत्स, देखो यह वट वृक्ष है। यह पवित्र होने के कारण तपस्वी सेवित होता है, तुम देख ही रहे होगे कि कितने विस्तार से इसकी शाखा-प्रशाखाएँ फैली हुई हैं। यह देखो, ये इसकी जटाएँ हैं। धरा की ओर बराबर झुक रही हैं। कुछ ही काल में ये धरा में प्रवेश कर मूल के ही समान बसुधा के रस से इस वट वृक्ष का पोषण करेंगी। इस प्रकार की तुम और भी बहुत-सी छोटी-मोटी जड़ें देख रहे होगे। वे एक-न-एक दिन इसी प्रकार जटाएँ थी।

इतना विवरण दे तमी बढ़ चली। उसने उसी के पास के अश्वत्थ वृक्ष का परिचय दिया और उसी प्रकार पूज्य बताया। इसी प्रकार चलते-चलते उसे मार्ग में साल, शीशम, खैर, तूत इत्यादि के बड़े-बड़े पेड़ मिले। उनके सेवन का निषेध करती हुई वह एक हरित नीम के वृक्ष के निकट जाकर कुछ धीमी गति से चलने लगी। उसने उसके फल (निबौलियाँ) और वायु-सेवन को आरोग्य-प्रद बताया। साथ ही उसकी एक शाखा पर बैठकर कुछ निबौलियाँ स्वयं खायीं और तमस्कर को खिलाकर कुछ विश्राम भी किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

इसके अनन्तर वह पुनः उड़ी। नीचे पहाड़ी झरने गुनगुनाते हुए वह रहे थे और उन्हीं के पास सिंह, चीते और हिरन जैसे सरल जीव भी शयन कर रहे थे। तभी उन्हें देखती, दिखाती और समझाती बढ़ते-बढ़ते इमली के पेड़ तक पहुँची। उसके फल को भी उसने खाद्य बताया, किन्तु यदा-कदा ही।

धीरे-धीरे वनप्रदेश पीछे छूट रहा था। और उसके साथ ही उसके झाड़-झङ्खाड़ों की शोभा और सम्पदा जिसके प्रहरी थे वे हिंस्र पशु ही। शैलपाद के निकट पहुँचकर उसने अनुभव किया कि तमस्कर कुछ थक चला है। अतएव वह एक पेड़ की आगे बढ़ी हुई डाल पर तमस्कर सहित लटक गई। वहीं उसने उन पेड़ों का परिचय देते हुए बताया कि वे लाल गोंद के पेड़ हैं। यदि इनका सेवन सुलभ हो तो बड़े ही लाभकारी सिद्ध होते हैं।

कुछ क्षण के विश्राम के अनन्तर नवस्फूर्ति प्राप्त कर वे पहाड़ियों के साथ-साथ अधिकाधिक ऊँचाई पर उड़ने लगे। तभी ने एक हरी-भरी डाली पर पहुँच कर कहा—वत्स, कहने को तो इन्हीं पहाड़ियों पर पचासों प्रकार के सघन वृक्ष होंगे। किन्तु मैं तुम्हें यहाँ केवल दो ही प्रकार के फलों से परिचय कराने लाई हूँ। आजकल इनकी ऋतु भी है। अतः पुत्र, तुम इनका यथेष्ट सेवन करो। देखो यह प्याल का वृक्ष है। इसका फल बड़ा ही मधुर, पौष्टिक और अमृत होता है। ये जो काले-काले दाने हैं, ये पक चुके हैं। और ये दो अभी कच्चे हैं। इस दूसरे वृक्ष के फल से तुम्हें इनका अन्तर स्पष्टतः हृदयङ्गम कर लेना चाहिये। इसे फालसा कहते हैं। यह उतना पौष्टिक तो नहीं किन्तु फिर भी गुणकारी फल होता है। यह क्या पुत्र तुम तो केवल प्याल ही खा रहे हो। जान पड़ता है कि तुम्हें यह फल रुचिकर लगा है। अच्छा अब इन फालसों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

भी सेवन करो। और यहाँ रुकने की आवश्यकता नहीं। हमें उत्तर की ओर बढ़ते चलना है। रास्ते भर इसी के वृक्ष मिलेंगे। हाँ, देखो, हम बढ़ रहे हैं और साथ-ही-साथ हमारे ये वृक्ष भी, पर नये-नये। अच्छा लो हम, बहुत बढ़ आये। यह कोई सूखी बरसाती नदी है जो बरसात में बढ़कर गङ्गा में मिला करती है। अच्छा अब हमें इसी के सहारे गङ्गा तक बढ़ जाना चाहिए, फिर वहाँ से अपनी भूमि की ओर लौटने में सुविधा होगी। विलम्ब न कर वत्स। सूर्योदय अचिर ही होनेवाला है। तुम थके तो नहीं? नहीं, बड़ा अच्छा। हाँ वेग अधिक करो मेरे बच्चे, और अधिक, और अधिक! बस-बस, देखो हम गंगा के ठीक ऊपर ही पहुँच गये हैं। अब प्रवाह के विपरीत उड़ चलो पुत्र! देखो, हम बहुत शीघ्रता से बढ़ रहे हैं। बड़ा अच्छा, अब हम अकेले नहीं है वत्स! इन सहस्रशः सजातियों को भी देखो। ये सब अपना-अपना आहार कर पृथक्-पृथक् कोनों में इस एक ही मार्ग से लौटे आ रहे हैं। जान पड़ता है कि सूर्योदय निकट है। कोई चिन्ता नहीं वत्स। हमारा आवास भी निकट है। देखते नहीं गंगा की यहाँ कई धाराएँ हैं। सभी प्राकृतिक और इससे भी आगे। हाँ, यह बड़ा वेगवती धारा यहाँ प्राकृतिक है। और देखो, इस जैसी ही छोटी-मोटी कितनी ही अप्राकृतिक धाराएँ निकाली गई हैं। इधर देखो, यहाँ तो इनका जाल-सा बिछ रहा है। बस जान लो, अब तो हम अपने आवास के द्वार पर ही पहुँच गये। हाँ बढ़ो। ठीक, देखा तुमने यह वृक्ष! इसी पर तो तुमने जन्म लिया है पुत्र। यही तुम्हारा घर है—और यह रहा आम। इसका फल बड़ा ही मधुर और अमृतमय होता है। कुछ ही क्षणों का विलम्ब है, फिर यथाशक्ति इनका भी स्वाद लेना। ऐसा देव-प्रीति उत्पादक फल जम्बूद्वीप को छोड़ कर अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगा। लो हम आ गये! और वे? हाँ, वे तुम्हारे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पिता हैं। वे ठीक विपरीत दिशा से आ रहे हैं। कल हम उधर ही चलेंगे। लो हम सभी आ गये।

हमारा यह दिन पूरा हुआ।

फिर दूसरा दिन—अर्थात् अगली रात।

संझा काली पड़ रही थी और उस शिवालक पादवनी से चमगादड़ों के झुण्ड-के-झुण्ड आहार-विहार के लिए उत्तर की ओर चल पड़े थे। तमी ने तमस्कर से कहा—पुत्र, आज हम वन-पर्वत का मार्ग छोड़ उपवनों की ओर चलेंगे। आज तुम्हें दूसरे प्रकार के फलों का परिचय देंगे। तुम्हारे पिता भी साथ ही रहेंगे।

और वे उड़ चले। पहले आई गंगा की वे ही अप्राकृतिक धाराएँ, अर्थात् नहरें और नाले। और फिर आये उनके दोनों ओर लगे बागीचे। वे शीघ्र ही एक बागीचे में जा पहुँचे। तमी ने कहा—ध्यान से देखो वत्स। यह लीचियों का वृक्ष है। इस उपवन की यही विशेषता है कि इसमें केवल एक ही प्रकार के वृक्ष हैं। आओ, इन फलों को चखें। ये बड़े ही आस्वाद, मधुर और बलवर्द्धक होते हैं। पर नहीं, लौट चलो पुत्र। सुनते हो प्रिय! कैसी भयानक आवाजें होने लगीं। यहाँ के रखवालों ने हमें देख लिया है। जल्दी करो, कही ऐसा न हो कि आखेट बन जाएँ।

और वे फिर उड़ चले। उसके बाद आया उससे भी बड़ा उपवन। उसमें विविध प्रकार के फल थे। तम ने कहा—मैं इसी उपवन में आया था पुत्र! यह देखो तो यहाँ लीची का पेड़ है पर उसी के पासवाले दूसरे ये। इनमें बाईं ओर के सभी वृक्ष सफल हैं। इन पर आलूबुखारे लगे हैं। मुझे यह फल विशेष रूप से प्यारा है। नहीं, उधर नहीं बढ़ो। वे सब तो अमरूद, नाशपाती और लोकाट के पेड़ हैं। तुम नहीं जानते मेरे बच्चे! ये अभी फले नहीं हैं। फलेंगे, पर समय आने पर। हाँ, उधर जा सकते हो। जानते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हो कि क्या कहते हैं उस फल को। आड़ू ! हाँ आड़ू ! देखो, इस की गुठली कठोर होती है। और उधर, अरे वहाँ-कहाँ बढ़े। बेकार हो गया वह तो अनार है। कच्चा अनार। यहाँ के अनार देर से पकते हैं। और इन्हीं के पास के वृक्षों से आलिङ्गन कर करके बढ़ती हुई लताएँ; ये फल नहीं देतीं केवल फूल ही फूल। हाँ, वह ठीक है। उधर फल लगते हैं, वे हैं अंगूर। पर आजकल कहाँ। बच्चे, उधर बढ़ोगे तो कुछ फलवाली बेलें अवश्य हैं। यह है लौकी, यह कद्दू। देखो, सीताफल, कटहल और बड़हल के बहुत-से पेड़ इन्हें घेरे हैं। ओः फिर ! तमी, सुनती हो, फिर वैसी ही आवाज ! जान पड़ता है कि आज इधर के भी रखवाले सतर्क हैं। अरे, इनसे तो अच्छे निरापद स्थान वन ही हैं। शीघ्रता करो, तमस्कर शीघ्र ता ! आज हम यहाँ नहीं रुक सकेंगे। अच्छा बढ़ो !

और वे बढ़ चले। बढ़ते गये। तमी बोली—यह क्या, नीचे तो पानी की चक्की है, हम गलत आ गये। आगे बढ़ेंगे तो सिर्फ खेत मिलेंगे। अच्छा चलो, पास ही गंगा-पार से उड़ें। ठीक है, आ गये। अब इस से भी पार करो। बढ़ते चलो। आगे है यह हवा का पंखा। हाँ, उसी की ओर। बिलम्ब होगा ही लेकिन ठीक मार्ग पर आ जायँगे।

और वे उधर ही बढ़ चले। बढ़ते ही गये। फिर काफी देर बाद वही पंखा हवा का, वही गंगा की अप्राकृतिक धारा, वहाँ से दिखाई देनेवाला हिमालय, शिवालक और नील। तमस्कर थक गया था। बोला—माँ, मैं थक गया। पिता, कुछ विश्राम तो करो।

वे साथ ही बोल उठे—अवश्य, मेरे बच्चे अवश्य ! पर थोड़ा-सा, बहुत ही थोड़ा-सा आगे बढ़ चलो तो आँवले का पेड़ मिलेगा। उस पर अभी तक बहुत से आँवले हैं। वहाँ विश्राम करने एवं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उस फल के सेवन से तुम शीघ्र ही नव-स्फूर्ति प्राप्त कर लोगे। पर हम तत्काल वहाँ से न बढ़ेंगे। अब हमें केवल अपने आवास की ओर लौटना है, और समय पर्याप्त है। अपने बहुत से साथियों की प्रतीक्षा करेंगे। बस फिर साथ ही।

और हुआ भी ऐसा ही।

इसके कई दिन बाद तक तमस्कर किसी नवीन स्थान के लिए नहीं निकला। वह प्रायः अपने घूमे हुए स्थानों के आस-पास ही घूमकर लौट आता। एक दिन उसके अधिवास में जहाँ अब तक केवल तीन ही प्राणी रहते थे, किसी चौथे का आगमन हुआ। आगन्तुका तमस्कर की समवयस्क थी, तो भी उसे देखकर उसके मन में कोई उत्साह न आया। किन्तु तमी उसे देखकर प्रसन्न भाव से चिल्ला उठी—स्वागत, कुलकन्या का स्वागत, तमसा आ ही गईं तुम ! मैं अनेक दिवसों से प्रतीक्षा कर रही थी। तमसा यह है हमारा पुत्र तमस्कर ! तुम इसे अपना सखा बना कर प्रसन्न होओगी। और तमस्कर हमारे तमयोनि कुल के एक प्रतिष्ठित परिवार की यह कन्या है। नाम है इसका तमसा, स्मरण रहेगा तुम्हें। आज से तुम दोनों ही साथी हुए। अब तुम दोनों साथ ही साथ आहार-विहार के लिए निकला करोगे। हाँ, तमसा अब तक तुम किन वनखंडों को देख चुकी हो ?

तमसा ने उत्तर दिया—नील के पूर्वाञ्चल के।

तमी ने कहा—बहुत उत्तम। तमस्कर शिवालक के लगभग सभी दर्शनीय प्रदेशों से परिचित हो चुका है, अच्छा होगा कि तुम अपने देखे हुए स्थानों को एक-दूसरे को भी दिखा दो ! हाँ तो तमस्कर, तुम नवीन प्रदेश को नहीं देखना चाहते ?

तमस्कर चुप ही था कि तमसा बोल उठी—हाँ ठीक तो है। आज

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

ये मुझ पर ही निर्भर करेंगे। मैं इनकी पथ-प्रदर्शिका बनूँगी। आज चन्द्रमा भी निकला है। सच ही यह रात्रि भ्रमण योग्य है।

और तमस्कर को न चाहते हुए भी जाना पड़ा। उसके पच्च शिथिलतापूर्वक गतिमय हो रहे थे। तमसा ने नीलाञ्चल की ओर बढ़ते हुए कहा—तमस्कर अभी से तुम थक गये सखा! यह तो गङ्गा की पहली ही धारा है। अभी तो हमें कई धाराएँ और बहुत-सा वनान्तर इन्हीं पच्चों से पार करना है।

तमस्कर चुपचाप बढ़ता ही गया। तमसा चुप न रह सकी। बोली—क्यों प्रिय सखा, मौन क्यों हो? देखते नहीं अब हम दूसरी धारा भी पार किया ही चाहते हैं। आह, अब तक तो केवल हमें मूँज की झाड़ियाँ ही मिली हैं। यह देखो, इन टुकड़ों में खैर और झड़बेरियाँ बहुत हैं। यदि तुम काँटों से अपने पच्चों को विद्ध न होने दो, तो इसी बेरी पर कुछ विश्राम कर लें। आहार भी मिल जायगा।

नहीं, बढ़ती चलो तमसा!

इतना उदासीन स्वर! तमसा कुछ समझ न सकी। फिर भी एक मुस्कान फेंक अग्रसर हो चली। बोली—तो तमस्कर तुम थके नहीं। अच्छा तो अब जब तुम्हीं अपनी थकान स्वीकार करोगे तो मैं विश्राम के लिए कहूँगी।

और दोनों बढ़ते ही गये। तमस्कर उसी उदासीन भाव से। तमसा आकुल भाव से और थकित—तमस्कर बस अब तो तुम थक ही गये होगे। देखो, धाराएँ पीछे छूट गई हैं। वन-खण्ड भी बीत चले! अब पर्वत-प्रदेश प्रारम्भ होगा। केवल पर्वत! जाने वहाँ कहीं विश्राम के लिए कोई स्थल भी मिलेगा, अथवा नहीं। रुक भी जाओ तमस्कर! देखो यह आँवले का पेड़ है। यह दुर्लभ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सौभाग्य से मिल गया तो अवसर न चूको। हमें लौटना भी है। तुम विश्राम न लोगे तो लौटोगे कैसे ?

कैसे ? तमस्कर हँसना चाहता था। पर हँसा नहीं। उसी उदासीनता से कहा—नहीं तमसा ! और बढ़ चलो।

तमसा ने देखा—सच, बढ़ा जा रहा है तमस्कर। वह अब चुप रह न सकी। रह नहीं सकती थी। आतुर भाव से बोल उठी—ओह तमस्कर, कठोर, पाषाण, वज्र तमस्कर ! तुम बढ़ ही रहे हो। मैं थक गयी, और तुम बढ़ ही रहे हो। क्या अब भी न रुकोगे, असहृदय !

असहृदय रुक गया। किन्तु उसी उदासीन भाव से। तमसा ने विश्राम किया। फलों को खाया। तमस्कर ने भी, पर न भंग हुई उसकी उदासीनता। और तमसा, उसे आ रहा था उसकी उदासीनता पर क्रोध ! हाँ क्रोध, क्योंकि वह हठात् उस वज्र को प्यार करने लगी थी। किन्तु वज्र ऐसा कि विदीर्ण न हुआ।

वे लौट चले।

तमस्कर के लौटने पर तमी ने पूछा—यात्रा कैसी रही पुत्र ! तमसा एक अच्छी लड़की है।

तमस्कर ने कहा—हो सकता है माँ !

तमी को आश्चर्य हुआ। यह उदासीनता क्यों ? पूछा—मैं समझी नहीं तुम्हारा अभिप्राय पुत्र ! क्या तमसा ने तुम्हें प्यार नहीं किया ?

तमस्कर ने कहा—किया तो माँ, पर मुझे वह अरुचिकर ही लगा। अब मैं अकेला ही नवीन प्रदेशों की ओर जाया करूँगा माँ ! तमसा से भी कह देना !

तमी पुत्र की गम्भीरता, उदासीनता का प्रतिवाद न कर सकी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

फिर अगले दिन, अर्थात् रात को—

तमस्कर तमी से कह रहा था—माँ, मैं आज किसी नवीन स्थल की सैर करूँगा। और जाऊँगा भी अकेला ! समझी न माँ !

तमी ने साग्रह पूछा—ऐसा क्यों पुत्र !

क्यी ? ठीक-ठीक तो कुछ नहीं जानता। फिर भी समझता हूँ माँ कि मैं सामर्थ्यवान् हो चुका हूँ।

'सामर्थ्यवान्' इसका अर्थ उसकी भाषा में, उनके कुल में कुछ विशेष होता था। सामर्थ्यवान् सन्तति माता-पिता के तुल्य अधिकार रखती थी और स्वेच्छाचार के लिए स्वतन्त्र। बस सामर्थ्यवान् घोषित होने से पूर्व माता-पिता को केवल अन्तिम वार एक अवसर आदेश का अवश्य मिलता था। उसी अधिकार से तमी बोली—अच्छा पुत्र, तो अपने कुल की मर्यादा के विषय में तुम मेरे अन्तिम वचन सुन लो। तुम परिणय के अतिरिक्त सभी धर्मों में स्वतन्त्र हो। हाँ, परिणय विशेष रूप से अपने कुल या परिवार की ही मरज़ी से कर सकते हो। वत्स, यह हमारे कुल का शासन है। वंश की वृद्धि और उसके हितों की रक्षा के लिए तुम अवश्य ही इस मर्यादा का पालन करोगे। किन्तु तुम्हें एक और अवसर है। हमारा गोत्र पृथक् हो चला है। हमें नवीन वंश का उद्भव और वृद्धि करनी है। अतएव तुम किसी अन्य समान कुल की कन्या से भी परिणय कर सकते हो। किन्तु इसके लिए हमारी स्वीकृति की आवश्यकता हो जाती है। और एक बात वत्स ! आततायी कुल यद्यपि मेघ-योनि होने के कारण उच्च है और हमारे समकक्ष भी, तथापि उनका आततायी विरुद उनके लिए कलङ्क है। फिर हमारे कुलों में अर्द्ध शती से शत्रु-भाव है। अतएव हे वत्स ! यदि इस कुल की कन्या वरेण्य भी हो तो भी अपने कुल की मर्यादा के लिए त्याग देना। बस अब तुम विचरण के लिए स्वतन्त्र हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

तमस्कर माता को प्रणिपात कर नवीन कुल की शोध के लिए उड़ चला।

उसने देखा, सामने नील-पर्वत अवरोध किये खड़ा था। वह चिन्ता और स्मृतियों के भार से थका-सा, दबा-सा सामने के एक वृक्ष पर लटक गया। कितने ही दण्ड उपरान्त उसने पहचाना वही आम्र वृक्ष, वही भूमि, वही प्रदेश जहाँ कल उसने तमसा का तिरस्कार किया था। न चाहते हुए भी तिरस्कार कर ही बैठा था।

और आज जब वह वहाँ अनायास ही विश्रान्ति के लिए रुक चुका था, तो उसका भारी-भारी-सा मन किसी अभाव का अनुभव कर रहा था। किसका ?

किसका ?—उसने अपने मन से आप ही पूछा।

और फिर पूछा—किसका ?

कदाचित् उसी के उत्तर में उसी जैसा एक और खग जाने कहाँ से उड़ता-उड़ता आ कर उसी वृक्ष की उसके पासवाली शाखा पर लटक गया था। तमस्कर को स्मरण था कि कल उसी शाखा पर तमसा भूल रही थी; किन्तु तब उसे देख-देख कर उसकी विरक्ति कितनी अधिक बढ़ रही थी। कुछ भी तो दोष नहीं था, बेचारी तमसा! ओह उसने अपने हृदय के प्यार का सम्पूर्ण कोष रिक्त ही तो कर डाला, पर मैं कि पाषाण, वज्र !

किन्तु आज हृदय में ये कैसे भाव आ रहे हैं। धूमिल परिचय, अथवा जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों की याद ! यह क्या है जो मुझे अकुला रही है। यह क्या पाषाण पिघल तो नहीं गया ! वज्र विदीर्ण तो नहीं हो गया ?

और यह आगन्तुक ? यह भी तो तमसा की ही जाति का है। वही योनि, वही पक्ष ! किन्तु इसके मौन रहने पर भी मेरे मन में ये अचिन्त्य पूर्व संकल्प क्यों उठ रहे हैं ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

तब मानों उसने अपनी शंकाओं के समाधान के लिए गगन के आँगन में क्रीड़ा करते द्विकल चन्द्र को देखा था। शायद वही उत्तर दे उसके प्रश्नों का। साथ ही उसने देखा कि वह ही नहीं आगन्तुका भी कुछ-कुछ वैसे ही कुतूहल, जिज्ञासा, समाधानेच्छा से उसी ओर देख रही है।

उन दोनों ने चाँद को देखा, अन्धकार देखा। अघाए नहीं, अतएव परस्पर देखा! परस्पर, जाने नेत्रों से अग्निज्वाला, कैसी विद्युत् लेखाएँ छूटीं कि नेत्रों के मार्ग से ही उनके शरीर में घुस कर कुछ का कुछ कर गयीं।

तभी वे एक साथ पूछ बैठे—मित्र मनोहर तुम्हारा परिचय ?

परिचय, मानों उसके लिए उनके पास कुछ था ही नहीं, अथवा वे इतने सुपरिचित थे कि परिचय में क्या कहें!

आगन्तुक ने परिचय दिया—सखा, मैं तमिस्रा नाम की मेघयोनि कुलोत्पन्ना बाला हूँ।

तमस्कर के मुख से निकल पड़ा—मेघयोनि! इस उच्चारण में कुतूहल से अधिक वेदना थी!

वेदना, निषिद्ध के प्रति आकर्षण, यही वेदना! किन्तु तमिस्रा अभी तक उसकी वेदना को समझ न सकी थी। वह कह तो गयी—हाँ, मेघ-योनि ही। वैसे इन सभी पर्वत-पाद वनियों में मेरा वंश आततायी कुल के नाम से प्रसिद्ध है। हो सकता है कि तुमने भी सुना हो। मेरा वंश शूरता और पराक्रम में अद्वितीय रहा है। इसी से विजितों ने अपने हृदय के विवश क्रोध और घृणा को प्रकट करते हुए यह नामकरण किया। पर सखा, हमारे पूर्वजों ने इस विरुद को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया था।

तमस्कर को स्मरण आ रहा था माँ का अन्तिम प्रवचन। यही न कि मैं अन्य कुल की कन्या से परिणय नहीं कर सकता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

किन्तु नहीं, मुझे एक स्वतंत्रता थी, भिन्न गोत्री होने के कारण कुछ विशेष स्वतंत्रता थी। यही न कि मैं समकक्ष कुल की कन्या से परिणय कर सकता हूँ। किन्तु इस विधान के साथ-साथ यह कैसा निषेध—मेघयोनि कन्या वरेण्य होने पर भी वर्जित !

वह चिन्ता-दग्ध था कि तमिस्रा सरलता से कहती गई—सखा, आज मैं सामर्थ्यवती घोषित कर दी गई हूँ। इसी से अकेली भ्रमण करने निकली हूँ। तुम्हें देख कर जाने मेरे मन में क्या हुआ कि मैं यहाँ से आगे बढ़ ही नहीं सकी। मैंने पुराणों से सुना है कि चन्द्र-देव हमारी जाति के विशेष अनुकूल हैं। तुम्हें देखकर मैंने चन्द्र-को देखा, और मानों इसने भी अपनी सीमित किरणों के मद्धिम आलोक से कुछ ऐसा ही कहा जैसा कि मेरा हृदय चाहता रहा ? तमस्कर ने स्वचिन्ता से खिचकर सुना, सोचा—क्या चाहता रहा इसका हृदय ?...क्या ? क्या ? वही तो नहीं, जो मैं ! ...किन्तु असंभव ! वह चाह ही असंभव ! फिर भी उसने पूछा—तुमने क्या चाहा था तमिस्रा !

बोली—बता दूँगी। बताना पड़ेगा, पर ठहरो अभी नहीं। अभी मैंने तुम्हारा परिचय भी तो प्राप्त नहीं किया ! फिर भी मित्र मनोहर इतना अवश्य कहूँगी कि मैंने यहाँ की सभी वनियों की अपनी माता सहित यात्रा कर ली है। मैंने नील, शिवालक और उनके उत्तरवर्त्ती सभी पर्वतों, उनके आश्रित वन-उपवनों का संचरण कर यथेष्ट आभोग किया है, किन्तु अभी तक मुझे कोई आकर्षण जिसे जीवन का स्थायी आकर्षण कहा जा सके, नहीं मिला। किन्तु ...किन्तु सखा तुमसे बातें करके तो तृप्ति ही नहीं होती। ऐसा क्यों है ? जानते हो मैंने शाल्मली का भी भ्रमण किया है। यह मेरा साहस दुस्साहस था। वही शाल्मली, जहाँ मेरे जन्म और उससे भी बहुत पूर्व मेरे माता-पिता बन्दी थे, आः चिर बन्दी, आमरणबन्दी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

बताऊँ कि यह कौन-सा शुभ दिन था जब कि उन्होंने अपने पराक्रम से अपने को स्वतन्त्र किया? बिल्कुल आज-सा ही। ऐसा ही द्विकल चन्द्र था। उसी मुक्ति दिवस से द्विकल चन्द्र हमारे कुल और गोत्र में इष्ट हो गये हैं। उन्होंने हमारे पूर्वजों की भाँति एक बार पुनः हमारी रक्षा की। अरे मेरे पास तो कुछ भी सुनाने को शेष नहीं रहा। सखे! तुम चुप क्यों हो? दो न अपना परिचय। तुम्हारा कुल-गोत्र?

एक क्षण में ही तमस्कर के मन में सैकड़ों दुश्चिन्ताएँ छा गयीं। उन्हीं के घटाटोप में से कोई प्रकाश की लेखा पकड़कर आगे बढ़ते हुए उसने कहा—परिचय! जान जाओगी तमिस्रा। किन्तु एक प्रश्न...हाँ एक ही प्रश्न! तुम भला उस शाल्मली उपखण्ड को देखने क्यों गईं थीं? क्या जानती नहीं कि वह आज भी उसी कुल और विशेषकर एक सन्ततिवान उसी युग्म से रक्षित है, जिसने तुम्हारे कुल के विश्वविश्रुत पराक्रम से न केवल स्पर्द्धा की अपितु अपने बल और विक्रल की श्रेष्ठता भी सिद्ध की!

तमिस्रा के नेत्रों में रोष की ज्वाला अरुण की आभा-सी बन चमक उठी थी। मानो रोष ही रागमय हो गया हो। बोली—हाँ ठीक, बहुत कुछ ठीक ही कहते हो तुम। हमारे कुल में यह एक कलङ्क लग ही गया। फिर भी तुमने पूछा कि मैं वहाँ क्यों गयी? बताऊँ, अपने हृदय की घृणा प्रकट करने। वह शाल्मली का उपखण्ड जब तक नष्ट न होगा मुझे शान्ति नहीं मिलेगी सखा? मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं उसी कुल में परिणय करूँगी जो इस शाल्मली उपखण्ड के तम-तमी के युग्म को बन्दी कर सके! किन्तु मैंने एकाधिक बार तुम्हारा परिचय पूछा और तुम मौन रहे या टाल गये!

क्या कहे तमस्कर! उसके कुल, गोत्र और प्रदेश से घृणा। उसके माता-पिता को बन्दी बनाने की प्रतिज्ञा। किन्तु फिर भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

रोष नहीं, उसे रोष ही नहीं आया। तमिस्रा में कुछ ऐसा था कि रोष आ ही नहीं सका! भला क्यों? तमस्कर का हृदय जानता था, किन्तु तमस्कर स्वयं जानना नहीं चाहता था। कहीं प्यार तो नहीं, प्यार!

और उसने कहा—मेरा परिचय कोई विशेष नहीं रहा तमिस्रा। फिर उसके श्रवण से तुम्हें कोई हर्ष भी तो नहीं होगा।

तमिस्रा ने कहा—हर्ष! हर्ष और विषाद का प्रश्न ही क्या सखा! किन्तु फिर भी मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूँ कि तुम्हारा सब कुछ मेरा हर्ष, मेरा सुख ही होगा! पर नहीं जानती क्यों?

तमिस्रा का हृदय जानता था। किन्तु वह अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण कर जानना ही नहीं चाहती थी उसे। कहीं वही प्यार तो नहीं।

तमस्कर चुप ही था।

तमिस्रा पुनः बोली—प्रिय सखा! तुम बड़े मूढ़ हो। तुम्हें कैसे समझा दूँ कि क्यों तुम्हारा परिचय मुझे हर्षित करेगा ही! पर क्या ही अच्छा होता यदि तुम समझे होते, समर्थ कुल के होते, शाल्मली उपखण्ड को भस्मसात कर सकते। तम-तमी युग्म को बन्दी कर सकते और तभी मैं तुम्हें बता सकती, दे सकती उस अनबूझे से 'क्यों' का उत्तर!

तमस्कर समझ गया था। किन्तु उसका यह समझना वेदनामय था। वेदना, प्रिय की दी हुई वेदना। सौभाग्य और दुर्भाग्य युगपद! पर कौन अधिक?

तमिस्रा उस मौन के आगे मुखरित हो उठी—प्रिय, क्या त्रियामा के अवसान पर ही परिचय दोगे? क्या सूर्य को ही अपने परिचय का साक्षी बनाओगे? क्या परिचय असम्भव है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

और तमस्कर को बोलना पड़ा—तमिस्रा, प्रिय तमिस्रा! सम्भव पर कठोर, अप्रिय, मैं उसी विजयी कुल का हूँ, जिसने तुम्हारे कुल को पराजय का कलंक दिया। मैं उसी शाल्मली उपखण्ड का प्रहरी हूँ, जिसे तुम भस्म किया चाहती हो। मैं उसी युग्म की एकमात्र सन्तति हूँ, जिसे तुम बन्दी किया चाहती हो।

तमिस्रा न समझ पाती तभी अच्छा था। वह विकल-सी शून्य पटी के उन श्वेत चिन्हों को देखती रही कौन जाने कि देख पा रही थी या नहीं। उसकी आँखों में प्यार आँसू बन चुका था।

तमस्कर कहता गया—तुमने अपने प्रेम का संकेत करके भी उसे मेरे लिए दुष्प्राप्य बनाकर ही छोड़ा। तमिस्रा, मैं भी माता के अन्तिम आदेश के अनुसार मेघ-योनि की कन्या को वरेण्य होने पर भी त्याज्य समझने को बाध्य हूँ। फिर भी प्यार करता हूँ तुम्हें तमिस्रा! त्याज्य को प्यार, अपने कुल की द्वेषी को प्यार!

वरेण्य होने पर भी त्याज्य! तमिस्रा सुनकर चुप हो गयी। उसके शत्रु-कुल का युवक, स्वयं उसके लिए द्विष्ट और त्याज्य! फिर भी वह उससे तो सुनना ही नहीं चाहती थी कि त्याज्य। उसे उसके कुल, भूमि, माता-पिता सभी से घृणा है। फिर भी उस घृणा में प्यार के लिए पागल!

एक ओर था तमस्कर, तमिस्रा के अयाचित स्नेह पर जीनेवाला! स्नेह से भी आगे प्यार, कुछ बहुत ही विस्तृत, बन्धनों से आगे की वस्तु! किन्तु निषेध के नियम से बँधा हुआ, घृणा का विषय! स्वयं के लिए लज्जा। और साथ ही स्वयं त्यक्त! नियम से बँधा, घृणा से पीड़ित! वरेण्य भी त्याज्य।

दूसरी ओर थी तमिस्रा, जाने किस जन्म के संस्कार से विवश स्नेह-सी लगनेवाली। स्नेह से भी आगे प्यार, कुछ बहुत ही विस्तृत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

बन्धनों से आगे की वस्तु ! किन्तु प्रतिज्ञा से बँधी । प्यार का विषय; स्वयं के लिए त्याज्य और साथ ही साथ त्यक्त। प्रतिज्ञा से बँधी, प्यार से पीड़ित। प्रिय की घृणा।

सूर्य पर्वत से झाँक उठा। दोनों की दृष्टि खो गई। पास होते हुए भी उतने ही अन्तर पर जो कि सीमित न कहा जा सके !

वे इधर-उधर उड़े, छटपटाये और उसी प्रकार बारम्बार पुकारा— प्रिय !...प्रिय !!

उनके जीवन में वह सूर्य फिर कभी अस्त न हुआ। अन्धकार में उन्होंने जो पाया था, प्रकाश में उसे खो दिया।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

जागते रहो

रात ठण्ड से ठिठुर रही थी। मकान उस अन्धकार में अपनी छायाओं को अपनी छाती से लगाये पड़े थे, कुछ सो रहे थे, कुछ ऊँघ रहे थे, शायद कुछ जाग भी रहे हों। खुश्क ठंढी हवा का तेज झोंका आया। जग्गू चौकीदार अपने काले कम्बल के चोट में भी ठिठुर गया। उसने एक बार शरीर को झटका देकर सिकोड़ा और चोट के सिरों को वायें हाथ से मजबूती से पकड़ा। दायें हाथ में उसके बल्लम था। जैसे-जैसे उसका हाथ ठंड से अकड़ता जा रहा था, वैसे ही वैसे बल्लम की पकड़ मजबूत होती जा रही थी। जैसे बल्लम के अस्तित्व को जानने के लिए ही वह उस की मूठ किसी पत्थर पर पटक देता और अपने अस्तित्व या कि दुनिया के अस्तित्व के बोध के लिए चिल्ला उठता—'सोनेवाले, जागते रहो!'

पर सोनेवाले सोये ही रहते। जो किसी आशंका से जागते भी होते, वे भी जग्गू की आवाज से निश्चिन्त होकर सो जाते। जग्गू और जोर से चिल्ला उठता—"सोनेवाले, जागते रहो!"—और जागनेवाला सोने की ओर भी जल्दी करता।

रात बढ़ रही थी और ठंढ भी बढ़ती जा रही थी। जग्गू ने चोट की किनारी छोड़ बल्लम बायें हाथ में लिया और दायें से जेब टटोल-टटोल कर टूटी-सी बीड़ी निकाली! बीड़ी निकालते हुए वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

होठों-ही-होठों में बुदबुदाया—'मारे डाल रही है यह सर्दी !' और फिर उसने माचिस भी निकाली। अब उसने बल्लम कन्धे से टेक लिया। बीड़ी होठों में दाबी और दियासलाई की सींक को मसाले पर रगड़ा। भक् से सींक जल उठी, जिसकी रोशनी में खसखसी दाढ़ी से भरा उसका अधेड़ चेहरा ठंड से स्याह होकर भी सुलग-सा उठा और जैसे ही उसने अपनी बीड़ी और जलती हुई दियासलाई का मेल कराया, हवा के ठंठे झोंके आग सेंकने को जैसे उधर ही को दौड़े और जग्गू के कोशिश करने पर भी बीड़ी न जल सकी। दियासलाई बुझ गयी। जग्गू कुछ झल्लाया। एक गन्दी गाली भी उसके मुँह से निकली। माचिस को फिर टटोला ! उसमें अब एक भी सींक बाकी न थी। जग्गू का मुँह गाली से भर फिर खुला—'...को इसी वक्त दगा देना था।' और उसी झल्लाहट में उसने बीड़ी को जेब में रख लिया। फिर पहले को तरह चोट को कसकर पकड़ा ! बल्लम की मूँठ जमीन पर मारी और चिल्लाया, 'सोने-वाले, जागते रहो !'

उसके पैर हिले ! बीड़ी की तलब उसे लगी थी ! जैसे आग तक इस धरती पर सो गई थी और झल्लाहंट में भर कर वह जोरों से चिल्ला रहा था, '...जागते रहो ! '—मगर कोई भी उसके जागने का साथ देने को तैयार न था। इससे वह फिर रुककर चिल्लाया '...जागते रहो !' तभी सड़क का कुत्ता भौंका ! जग्गू को तसल्ली हुई। कोई जाग तो रहा है। घड़ियाल में टन्न से एक बजा ! रात की खामोशी चीख-सी उठी। जग्गू को सन्तोष-सा हुआ— और भी कोई जाग रहा है !

कुत्ता फिर भौंका। जग्गू के मुँह से गाली निकली, '...क्या भौंकता ही रहेगा ?' अकेलेपन की अखर कम करने के लिये जग्गू

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

इसी तरह गाली बका करता और किसी-न-किसी बहाने कुछ कह कर बात करने की हविस मिटा लेता।

चलते-चलते वह उस कुत्ते के पास ही आ गया था। वहीं हलवाई की दुकान थी, जिसकी भट्टी की निमाइस में वह कुत्ता रात काटने का आदी था। पर कई बार उस हलवाई को सुबह आकर जो भट्टी में बदबू मिली, तो उसने उसके मुँह पर पत्थर अड़ाना शुरू कर दिया था। अब वह कुत्ता बाहर ही बाहर भौंका करता। हर बार भौंक कर जैसे वह बेरहम हलवाई को कोसता।

झल्लाया हुआ जग्गू जब उसकी ओर आया तो वह कुत्ता भट्टी के मुँह के पास पड़ी ठंडी राख की गद्दी पर से उठ कर उस दूसरे जीव से सहानुभूति पाने की आशा से भौंका, पर जग्गू ने उस का उल्टा अर्थ लगाया और गाली बकने के साथ-ही-साथ बल्लम की मूँठ उसकी पसली में ठूँस की! कुत्ता बिलबिला उठा। कूँ-कूँ करता हुआ वह भागकर थोड़ी दूर जाकर खड़ा हुआ और अकारण हमला करनेवाले जग्गू को रह-रहकर मिचमिची आँखों से देखता रहा।

जग्गू राख के पास रुक गया! बैठकर उसने बल्लम की मूठ से उसे कुरेदा! शायद कोई आग की चिनगारी बाकी हो। पर राख तक ओस से सीली पड़ी थी। उसके मुँह से निकला, 'साला दिन-भर भट्टी में मनों कोयला फूँकता है! पर यह नहीं होता कि रात के लिए एक चिनगारी छोड़ जाये?'

निराशा से भर कर वह उठ खड़ा हुआ और बेसब्री के साथ चीख कर कहा—"सोनेवाले, जागते रहो!"

अभी तक उस की मार से भीत कुत्ते ने अर्थ लगाया—'सोनेवाले मर जाओ!'

जग्गू के मन ने भी मिलता-जुलता-सा भाष्य किया, पर जबान ठंड से ठंडी हो कर भी कहती गयी—'जागते रहो...!'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हलवाई की दुकान के सामने ही पनवाड़ी की दुकान थी, जो इस समय बन्द थी। जग्गू ने बड़ी कड़ी नजर से उसके बन्द दरवाजों को देखा। उनमें अगर आग लग उठती तो पहले वह अपनी बीड़ी सुलगाता, कश खींचता, आग सेंककर ठंड दूर करता—एक बार शरीर फैलाकर कहता, 'सोनेवाले, जागते रहो!' और फिर पानी लेने दौड़ता—आग, आग!

ठंड, ठंड! हवा के तीखे झोंके उनके कानों को मसल कर उल्टी ही बात कह गये! पास ही की तिमुहानी का पीपल काँप उठा। पत्तों ने मर्मर लिया। उसके नीचे लेटी हुई अनेक छायाएँ सिकुड़-सी गयीं। आसमान के तारे बर्फ हो गये, धरती काली पड़ गई और जग्गू बड़बड़ाया, 'साला बारह बजे ही दुकान बन्द कर देता है! यह भी नहीं कि...'

मार खाया हुआ कुत्ता शायद किसी अपरिचित-सी आहट से भौंक उठा और दौड़कर सामनेवाली गली के घुस गया! जग्गू बड़बड़ाया, 'इस साले पर गाज गिरे! अबे क्यों भौंकता है।' और वह खुद भी ओस से भारी चोट को सम्हालता हुआ उसी गली में घुस गया।

गली में घुसते ही तम्बाकू का एक छोटा-सा कारखाना पड़ता था। उससे बड़ी सड़ी हुई हवा उठा करती थी। जग्गू उस का तीखापन बर्दाश्त नहीं कर पाता था। पर आज बीड़ी के अभाव में उसे वह गन्ध कुछ प्यारी लगी और वह कारखाने के दरवाजे पर रुक गया। कसकर साँसें खींचीं, शायद थोड़ा-बहुत तम्बाकू का अमल हो जाये। तम्बाकू ही की तीखी गन्ध उसके सिर में समा गयी और उसने कारखाने के दरवाजे पर खड़े-खड़े कई बार कहा, 'सोनेवाले, जागते रहो' लेकिन इतने पर भी उसका अमल पूरा न हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उसका मन अपनी बेबसी में वागी-सा हो उठा—'यह कारखाना लुट क्यों नहीं जाता ! मैं इसका पहरा देता हूँ, मगर यह अमल भी नहीं देता ?'

कुत्ता अब गली के दूसरे मोड़ पर भौंक रहा था। मुहल्ला अपनी अमानत को सलामत समझ कर सोया पड़ा था। जग्गू पहरे पर होकर भी इस समय उन सबके लिए बद्दुआएँ कर रहा था। सारी दुनिया लिहाफ की गर्मी में चैन की नींद ले रही थी और वह ठंडे झोंकों की बेरहमी का शिकार होकर जाग रहा था। उसकी तसल्ली के लिए दुनिया में से बीड़ी-तम्बाकू तक उठ गये थे ! और अपनी उस गहरी परेशानी में वह ग्रामोफोन रिकार्ड-सा चीखा, "सोनेवाले, जागते रहो।" इस बार उसका मतलब था—यह दुनिया लुट क्यों नहीं जाती।

इतना कहकर उसने सामनेवाले मकान पर शाप-भरी दृष्टि डाली, जिसमें एक पैसेवाला मूजी रहता था। तभी कोई आदमी उस के पास आया और बड़े इतमिनान से पूछा, "बीड़ो पिओगे ?"

जग्गू ने सख्त होकर उसकी तरफ देखा। कुत्ता उसी आदमी के पीछे लगा था। उसके पीछे-पीछे आता हुआ वह रह-रहकर भौंक उठता। आनेवाले आदमी ने उसकी परवाह किये बिना कहा, "कड़ी सर्दी है ! बीड़ी पिओगे ?"

जग्गू ने पूछना चाहा कि तुम कौन हो और क्यों इस सर्दी में मरने निकल पड़े, पर जब उसने तिबारा कहा, "यह बीड़ी न हो तो रात पहाड़ हो जाय ! पिओगे बीड़ी ?" तो वह सब-कुछ भूलकर अपनी बीड़ीवाली जेब टटोलने लगा।

आगन्तुक ने कहा, "रहने दो ! मेरे पास है।" और उसने दो बीड़ियाँ निकालीं। एक उस के मुँह में रखी और दूसरी अपने। और फिर उसने लाइटर निकाला। भक् से लौ उठी ! जग्गू ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

अचरज के साथ अपनी बीड़ी जलाई। आगन्तुक ने भी जलाई! जग्गू ने उसकी रोशनी में उसके लम्बे शरीर, ओवरकोट के ऊँचे कालर और टोप में छिपे हुए मुँह को देखकर सोचा—बड़ा आदमी हैं। पर बीड़ी पीता है! उसी झोंक में पूछ भी बैठा, 'तुम भी बीड़ी पीते हो?"

कुत्ता फिर भौंका, पर भौंक कर सहम-सा गया! नये आदमी को पहरेदार से बातें करते देख कर उसके मन का डर दूर हो गया था। इधर जग्गू ने बल्लम की मूँठ जोरों से पटकी। कुत्ते को गाली दी, एक कदम उधर को झपटा। कुत्ता भाग गया और सड़क पर जाकर कूँ-कूँ करने लगा। बड़े आदमी ने जग्गू के सवाल का जवाब दिया, "बीड़ी से बढ़कर इस दुनिया में है क्या!"

उस ठंड में बीड़ी का गरम कणुआ धुआँ घूँटते हुए जग्गू को भी ऐसा ही लगा। उसने जमकर कश खींचा और ढेर-सा धुआँ एक-साथ छोड़ दिया। बोला, "बीड़ी बढ़िया है।"

आगन्तुक ने पूरा बण्डल अपनी जेब से निकाला और कहा, "लो, पीना!"

"नहीं", जग्गू ने मुँह से मना कर के भी हाथ बढ़ा दिया।

आगन्तुक ने कहा—"क्या हर्ज है?"

जग्गू ने बण्डल सँभाल कर जेब में रखते हुए कहा, "तुम्हारी मशीन अच्छी है!"

आगन्तुक पहले समझा नहीं! फिर तुरन्त ही उसका मतलब ताड़ कर हँसते हुए बोला, "लो, यह भी लो!"

"नहीं. नहीं,"—जग्गू ने खूब जोर देकर कहा। इतनी ही जोर की उसकी इच्छा उसे ले लेने की थी।

आगन्तुक ने पहले की तरह कहा, "क्या हर्ज है?"

जग्गू सकुचाता-सा बोला—"मुझसे जलगी?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

"क्यों नहीं !" आगन्तुक ने कहा, "देखो, ऐसे।" और कुछ खट से करके दिखाया। मशीन से लौ उठी। जग्गू का चेहरा दमक उठा—"और देखो, यह बुझ गयी"—आगन्तुक ने सब कुछ समझा दिया, जग्गू समझ गया और लाइटर लेकर जेब में रख लिया और मन-ही-मन कहा—"भला आदमी है।"

आगन्तुक ने पूछा, "तुम पहरे पर हो ?"

"हाँ !"

"तुम्हारा नाम ?"

"जग्गू।"

"अच्छा नाम है"—आगन्तुक हँसा।

"मैं जागता जो हूँ।"—जग्गू ने मजाक पकड़ लिया था। और फिर वह बड़े अभिमान के साथ चिल्लाया, 'सोनेवाले जागते रहो !'

आगन्तुक ने दाद दी—"खूब !. . .अच्छा मैं जरा इस मकान में जाऊँगा !"

आगन्तुक ने मूजी के मकान की ओर इशारा किया। जग्गू पहरेदार चौंका—'क्यों ?' फिर जैसे ही उसकी निगाह अपने हाथ की बीड़ी पर पहुँची, उसका शक जलकर धुआँ हो गया।

आगन्तुक ने फिर कहा, "अच्छा मैं जरा घर में जा रहा हूँ।"

जग्गू ने फिर कहना चाहा, 'क्यों ?' पर हाथ की बीड़ी ने उसे इतमीनान दिया। उसने कहा, "अच्छा, जाओ।" वह गली के मोड़ पर घूम पड़ा। बीड़ी के अमल की ताजगी में उसने आवाज लगायी, 'सोनेवाले, जागते रहो !"

सबेरे जब शोर हुआ कि मूजी सेठ के घर रात चोरी हो गयी तब जग्गू अपना काम पूरा करके सो रहा था; पर जागता भी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

होता, तो उसे पूरा विश्वास होता कि उसकी ओर सें कोई गलती नहीं हुई, क्योंकि वह न केवल स्वयं जागता रहा था, वरन् सोनेवालों को भी जगा रहा था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

खण्डौघाः

वे सातों मित्र थे। छुटपन के खेल-कूद और पढ़ने के मित्र ! दसवें दर्जे तक वे साथ ही साथ उस स्थानीय स्कूल से बगल में अपना-अपना बस्ता दाबे जाया करते थे और साथ ही स्कूल से सटकर बहनेवाली बड़ी नहर को तैर कर पार किया करते थे। उनके बचपन में जो साध और सहयोग की भावना थी, वह आगे बढ़ते-बढ़ते रूप बदलते हुए भी बराबर वैसी ही बनी रही थी। साथ ही उन्होंने अपने यहाँ की गंगा को भी तैरकर पार किया था और साथ ही अपने पास की नील और शिवालक पहाड़ियों की चोटियों पर चढ़ाई भी की थी। उन्होंने साथ ही तलहटी के जंगलों में सैर की थी और कभी प्याल खाते-खाते पहाड़ों-पहाड़ों जाने कहाँ पहुँच जाते थे, तो कभी खटमिट्ठी झड़बेरियाँ चखते-चखते गुलदार के जंगल से रीछों के जंगलों में जा पहुंचते थे। जंगल में उन सबों ने बाटियाँ भी बनाईं और शिकार भी खेला। उन्होंने अपने आरम्भिक जीवन में ऐसा बहुत कुछ साथ-साथ किया, जो कामदार जीवन में सिर्फ खेल-कूद में शुमार होने पर भी व्यर्थ समझकर भुलाया नहीं जा सकता। वे बहुत सारे वर्ष हँसते-गाते, चीखते-चिल्लाते बढ़े थे। साथ रोये भी, पर रोना उन्हें आता ही नहीं था। अतएव जब आज भी वे दूर-दूर से अपने घरों को वापस आया करते थे, तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उन्हें छुटपन को अपनी हँसी की; गाने, चीखने और चिल्लाने की गूँज वहाँ के वायु-मण्डल में भरी जान पड़ती। फलतः उसे सुन-सुनकर उनका बचपना लौट आया करता और वे फिर से लगभग बचपन को ही लौट जाया करते। उनके वे सब अन्तर, जो बढ़ती उम्र के साथ बढ़ते गये थे, कम होने लगते।

उनके इस अन्तर के बढ़ने का प्रारम्भ हुआ था उस दिन से, जब कि वे सब दसवाँ दर्जा पास कर अपनी-अपनी सुविधाओं के अनुसार अपना-अपना भविष्य-निर्माण करने में व्यस्त हो गये थे। जो आगे पढ़ सकते थे और उस पढ़ाई का खर्चा बर्दाश्त कर सकते थे, वे किसी डिग्री कॉलेज या विश्वविद्यालय में महामहिमपंडित छात्र बन गये थे और उन्होंने नवीन संस्कारों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया था। किन्तु जो ऐसा न कर सके, उनमें से किसी ने कहीं क्लर्की कर ली, तो उसी जैसे किसी दूसरे ने कोई छोटी-मोटी एजेन्सी लेकर कार-बार बढ़ा दिया। कोई अपने मामा या नाना के यहाँ गद्दी सँभालने पहुँच गया। इस प्रकार जिन्होंने सैकड़ों बार सावन-भादों की चढ़ी हुई गङ्गा को पार करते हुए जीवन के मोह से अभिभूत होकर ही साथ-साथ मरने की-सी कुछ ऊल्टी प्रतिज्ञाएँ की थीं और जिन्होंने जङ्गल में अचानक किसी भालू या चीते से भेंट हो जाने की सम्भावना समझते हुए सदा इसी प्रतिज्ञा को दोहराया था कि घर लौटेंगे तो सातों साथ ही, नहीं तो एक भी नहीं; वे ही अब बड़े मजे से अपना-अपना जीवन बनाने के लिए अपनी-अपनी राह पकड़े हुए थे। बहुत-सी कड़ी झड़ियाँ और बहुत-से जेठों की तपती दुपहरियाँ उन्होंने साथ-ही-साथ हँसने-हँसते झेलीं और बिताई थीं, किन्तु आज उनमें से सबका सुख छोटी-बड़ी थाली के हिसाब से बदल गया था। जब एक शायद खस की टट्टियों के नीचे बिजली के पंखे में बैठा हुआ भी गर्मी महसूस करता था तो दूसरा चिलचिलाती धूप में नङ्गे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

सिर, नङ्गे पाँव अङ्गारा-सी सड़क पर धैर्यपूर्वक सिर झुकाये चल रहा होता। इसी तरह विषमता बढ़ रही थी और जब कि एक का जाड़ा ठण्डे कोट में निकल जाता था, दूसरे को गरम कोटों और बहुत-सी वैसी ही चीजों के रहने पर भी ठण्ड से छुट्टी नहीं मिल रही थी। रही खाने-पीने की, सो तो प्रारम्भ में भी शायद उन सबका एक-सा न था, अभी ही क्या? हाँ, पहले वे साथ मरने की सोचा करते थे, साथ पैदा न होकर भी साथ मरने की; पर अब तो साथ बढ़कर साथ जीने की भी शायद नहीं सोच पाते थे। उनके रास्ते ही इतने अलग-अलग हो गये थे। अब उनके साथ की भावना में केवल उनके संस्कार ही काम किया करते थे।

इस तरह साथियों को अलग-अलग हुए वर्ष-पर-वर्ष बीतते जा रहे थे। यद्यपि समय की रफ्तार सदा, सब जगह सबके लिए एक-सी ही है, फिर भी आदमी उसकी तेजी और मन्दी को अपने सुख-दुःख से आँका करता है। उनमें से हर किसी का समय किस रफ्तार से बीता, यह उसके सुख-दुःख का प्रश्न है और बहुत कुछ व्यक्तिगत भी। अतएव इस बारे में किसी दूसरे का कुछ न कहना ही अच्छा है। हम तो यही बता सकते हैं कि उनमें से शायद सबकी या बहुतों की शादियाँ भी हो गई थीं; अलग-अलग जब कि उनकी बचपने की प्रतिज्ञा भी एक ही मण्डप में शादी करवाने की थी। तब वे अपने को ब्राह्मण, बनिया या ऐसा ही कुछ बनाकर सोचते भी न थे। फिर उनके बच्चे भी हुए। किसी के एक, किसी के एक से ज्यादा और किसी के एक भी नहीं। तब चाहे निस्सन्तान ने भले हो सोच लिया हो कि मैंने अपनी लड़की को अपने मित्र के लड़के से ब्याहने का वचन दिया था, पर किसी दूसरे सन्तानवान् मित्र के दिमाग में वह वचन-निष्ठा आई ही नहीं। कारण, अब ब्याह का मतलब ब्याह से भी आगे जात-पाँत, धर्म और बहुत कुछ अर्थों में सामाजिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हैसियत भी हो गया था। फिर भला वे बचपन की बातें बचपने से भरी ही न समझ ली जातीं, तो क्या? इसी तरह वे अलग होते जा रहे थे।

फिर एक बार कुछ ऐसा संयोग हुआ कि वे एक-दो नहीं, पूरे दस बरस बाद, हाँ तीन सौ पैंसठ दिनवाले दस बरसों के बाद यानी ३६५० दिनों के बाद और २४ से गुना कर दे तो उतने ही गुने घण्टों के बाद फिर से साथ मिले। एक दो दिन के लिए नहीं, कई दिनों के लिए! उन्होंने अनुभव किया कि उनके विविध रास्ते किसी एक चौराहे पर फिर से कुछ काल के लिए मिल गये हैं और तब उन्हें अपने बचपन के वे दिन भी याद आ गये, जब कि उन्होंने अलग होने की, मृत्यु तक अलग न होने की प्रतिज्ञाएँ की थीं।

वे सातों तो जरूर ही आकार-प्रकार में, आचार-विचार में, सामाजिक हैसियत में और जाने किस-किस खास या आम बात में कितना अधिक बदल चुके थे, पर उनके बचपन के वे पहाड़, वे नदी-नहरें और जङ्गल नहीं बदले थे और जब कभी न बदलनेवाले या कहीं न बदलनेवाले चाँद-सूरज उसी तरह उन पर हँसा करते या चमका करते, चाँदनी बिखरती और धूप खिलती, बादल गरजते और बिजली कड़कती, आँधी-पानी का भी तमाशा होने लगता तो वे अनुभव करते कि शायद अभी भी वे वैसे ही एक हैं। जैसे वे जंगल-पहाड़, नदी-नाले, चाँद-सूरज, बादल-धूप, गरज-कड़क, आँधी-पानी! तब अब भी उनकी इच्छा नहीं हुई थी कि उनका बचपना ही लौट आये। फिर से उनके दिन पहले ही जैसे हो जायँ।

और शायद अपने उन दिनों को फिर से पहले जैसा ही बनाने के लिए एक दिन वे सब जंगलों-पहाड़ों की सैर के लिए चल दिये। बहुतों ने उन सातों को साथ जाते देखा होगा, पर साथ की भावना शायद ही किसी में आई थी। पहले जब वे छोटे थे तब आँख-नाक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

के फर्क के बावजूद भी एक-से ही लगते थे। कपड़ों में भी कोई खास फर्क न था। पर आज तो फर्क ही सब कुछ हो गया था। चेहरे-मोहरे में कोई समानता ही नहीं। शरीरों में भी वैसी सदृशता नहीं। राम जो जीवन में खूब फल-फूल रहा था, सम्पन्न था, दरिद्र गोपाल जैसा ही कैसे रह जाता। एक का शरीर थुल-थुल गुलगुल था और दूसरे का हड़ीला। इसी तरह यदि एक को आवश्यकताओं, बेकारी और निर्धनता ने चूसकर अकाल-वृद्ध और जर्जर कर दिया था तो दूसरे को पद, धन और प्रतिष्ठा ने कुछ ऐसा रोब, कुछ ऐसी अकड़ दे दी थी जो उसके चेहरे पर छाया में भी बिना चमके न रहती थी। अतएव लोगों के विश्वास का आधार रह ही नहीं जाता था कि उन्हें साथी समझें। फिर भी सत्य यह था कि वे बेमेल आदमी पुराने मेल को थोपकर साथी बनकर साथ ही नगर से जंगल की ओर जा रहे थे।

उन्होंने एक नाव से नदी पार की—पहली धारा, दूसरी धारा, तीसरी धारा। बीच-बीच में झाड़दार रेतीले पथरीले टुकड़े आते और फिर दूसरी धारा। इसी तरह धाराएँ बीत गयीं और जंगल घना होना प्रारम्भ हो गया। सातों उस विजन में बढ़ते गये। पगडंडियाँ कुछ सँकरी थीं, दोनों ओर झाड़-झङ्खाड़ थे; इसलिए दो व्यक्ति भी साथ-साथ न चल पा रहे थे। सब एक दूसरे के पीछे थे और उस वन-पहाड़ की सम्पदा से कुछ उदासीन-से होकर बढ़ रहे थे। इस समय किसी का भी मन या बुद्धि उसका साथ न दे पा रही थी। अब वे न केवल शरीरों से आगे-पीछे होते गये, प्रत्युत विचारों से भी। राम जो सबसे धनिक था; सोच रहा था कि मैं बेकार आया। घर ही क्या काट रहा था जो जंगल में मंगल ढूंढने निकला। और फिर उसे अपने व्यापार की चिन्ता ने आ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

घेरा। दिल्ली, बम्बई और कलकत्ते के बाजारों के उतार-चढ़ाव उसके मन:पटल-को आच्छादित करने लगे।

किसी ने बीच में कहा, 'बड़ी तेज धूप है?' सबने सुन लिया। फिर भी अपने मन के विचारों के विरुद्ध बढ़ते ही गये। गोपाल, जो सबसे अधिक गरीब था, सोच रहा था—'घर में चूहे डण्ड पेल रहे हैं। बच्चा बीमार है। बीबी अकेली है, साधनहीन; और मैं यहाँ रंगरेलियाँ मनाने आया हूँ।' तभी उसके बाएँ पैर को एड़ी में काँटा चुभ गया। बड़े ठीक समय पर काँटा गड़ा। यह शायद इसका संकेत था कि नंगे पाँववाले के लिए जेठ मास में ऐसे कँटीले और झाड़ीले जंगल में आना सचमुच रंगरेलियाँ मनाना नहीं है। फिर भी गोपाल के मन में यही था कि मैं जिम्मेदारी से भाग रहा हूँ, घर की मुसीबत और तकलीफ से भाग रहा हूँ। आज अपनी उस छोटी-सी बिसातखाने की दुकान पर ही बैठता तो क्या धेली-पावली भी न कमाता? एक दिन की रोटी ही चलती और कुछ नहीं तो बच्चे की दवा-दारू का ही प्रबन्ध होता। बीबी को ही कुछ राहत मिलती। बस, वह इसी तरह सोचता गया।

एक साथी मोहन मनमारे यह सोचता जा रहा था कि अब मेरा निर्वाह इस नौकरी से न होगा। तीन-तीन बच्चे और बीबी। छोटे भाई-बहनें और बूढ़ी माँ। यह ६०) की क्लर्की क्या आजकल के जमाने में कफन के लिए भी काफी है? नहीं, ऐसी नौकरी को मारो लात। नौकरी तो नौकर ही बनाये रखेगी। इसी चन्द्रभान को लो न, दरजे में सदा मुझसे नीचे रहा, कभी अच्छे नम्बर नहीं पाये। आज बाहर जाकर जाने किस चीज की एजेन्सी ले बैठा है कि डिप्टी-कलेक्टर से भी ज्यादा कमाता है। तब स्वयं चन्द्रभान अपनी उस एजेन्सी से इतनी दूर जंगल में आकर भी झींक रहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

के फर्क के बावजूद भी एक-से ही लगते थे। कपड़ों में भी कोई खास फर्क न था। पर आज तो फर्क ही सब कुछ हो गया था। चेहरे-मोहरे में कोई समानता ही नहीं। शरीरों में भी वैसी सदृशता नहीं। राम जो जीवन में खूब फल-फूल रहा था, सम्पन्न था, दरिद्र गोपाल जैसा ही कैसे रह जाता। एक का शरीर थुल-थुल गुलगुल था और दूसरे का हड़ीला। इसी तरह यदि एक को आवश्यकताओं, बेकारी और निर्धनता ने चूसकर अकाल-वृद्ध और जर्जर कर दिया था तो दूसरे को पद, धन और प्रतिष्ठा ने कुछ ऐसा रोब, कुछ ऐसी अकड़ दे दी थी जो उसके चेहरे पर छाया में भी बिना चमके न रहती थी। अतएव लोगों के विश्वास का आधार रह ही नहीं जाता था कि उन्हें साथी समझें। फिर भी सत्य यह था कि वे बेमेल आदमी पुराने मेल को थोपकर साथी बनकर साथ ही नगर से जंगल की ओर जा रहे थे।

उन्होंने एक नाव से नदी पार की—पहली धारा, दूसरी धारा, तीसरी धारा। बीच-बीच में झाड़दार रेतीले पथरीले टुकड़े आते और फिर दूसरी धारा। इसी तरह धाराएँ बीत गयीं और जंगल घना होना प्रारम्भ हो गया। सातों उस विजन में बढ़ते गये। पगडंडियाँ कुछ सँकरी थीं, दोनों ओर झाड़-झङ्खाड़ थे; इसलिए दो व्यक्ति भी साथ-साथ न चल पा रहे थे। सब एक दूसरे के पीछे थे और उस वन-पहाड़ की सम्पदा से कुछ उदासीन-से होकर बढ़ रहे थे। इस समय किसी का भी मन या बुद्धि उसका साथ न दे पा रही थी। अब वे न केवल शरीरों से आगे-पीछे होते गये, प्रत्युत विचारों से भी। राम जो सबसे धनिक था; सोच रहा था कि मैं बेकार आया। घर ही क्या काट रहा था जो जंगल में मंगल ढूँढने निकला। और फिर उसे अपने व्यापार की चिन्ता ने आ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

घेरा। दिल्ली, बम्बई और कलकत्ते के बाजारों के उतार-चढ़ाव उसके मन:पटल-को आच्छादित करने लगे।

किसी ने बीच में कहा, 'बड़ी तेज धूप है?' सबने सुन लिया। फिर भी अपने मन के विचारों के विरुद्ध बढ़ते ही गये। गोपाल, जो सबसे अधिक गरीब था, सोच रहा था—'घर में चूहे डण्ड पेल रहे हैं। बच्चा बीमार है। बीबी अकेली है, साधनहीन; और मैं यहाँ रंगरेलियाँ मनाने आया हूँ।' तभी उसके बाएँ पैर की एड़ी में काँटा चुभ गया। बड़े ठीक समय पर काँटा गड़ा। यह शायद इसका संकेत था कि नंगे पाँववाले के लिए जेठ मास में ऐसे कँटीले और झाड़ीले जंगल में आना सचमुच रंगरेलियाँ मनाना नहीं है। फिर भी गोपाल के मन में यही था कि मैं जिम्मेदारी से भाग रहा हूँ, घर की मुसीबत और तकलीफ से भाग रहा हूँ। आज अपनी उस छोटी-सी बिसातखाने की दुकान पर ही बैठता तो क्या धेली-पावली भी न कमाता? एक दिन की रोटी ही चलती और कुछ नहीं तो बच्चे की दवा-दारू का ही प्रबन्ध होता। बीबी को ही कुछ राहत मिलती। बस, वह इसी तरह सोचता गया।

एक साथी मोहन मनमारे यह सोचता जा रहा था कि अब मेरा निर्वाह इस नौकरी से न होगा। तीन-तीन बच्चे और बीबी। छोटे भाई-बहनें और बूढ़ी माँ। यह ६०) की क्लर्की क्या आजकल के जमाने में कफन के लिए भी काफी है? नहीं, ऐसी नौकरी को मारो लात। नौकरी तो नौकर ही बनाये रखेगी। इसी चन्द्रभान को लो न, दरजे में सदा मुझसे नीचे रहा, कभी अच्छे नम्बर नहीं पाये। आज बाहर जाकर जाने किस चीज की एजेन्सी ले बैठा है कि डिप्टी-कलेक्टर से भी ज्यादा कमाता है। तब स्वयं चन्द्रभान अपनी उस एजेन्सी से इतनी दूर जंगल में आकर भी झींक रहा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

था कि इन ५००) से तो मेरा कुछ बनता नहीं। कोई और एकाध एजेन्सी हाथ लगती तो अच्छा था। भला सिर्फ पाँच सौ के लिए इतनी परेशानी, यह भी कोई बुद्धिमानी है। मुझसे तो अच्छा यह मोहन है, जो साठ रुपये की नौकरी में भी ठाट बनाये है। इतना बड़ा परिवार; फिर भी मजे से गुजर रही है। कल क्या होगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं। उसे तो अपनी तनखाह से मतलब, चाहे किसी दूसरे का कुछ भी हो। एक हम हैं कि रुपये के साथ चिन्ताएँ बढ़ती ही हैं।

द्वारका ने तभी प्रस्ताव किया कि बहुत आगे बढ़ आए हैं, दिन भी काफी चढ़ गया है। कहीं जमने की सोची जाय। इतना कहकर वह अपनी ही सोचने लगा और उसने गौरी के इस उत्तर को भी नहीं सुना कि 'अरे अभी दस ही बजे होंगे। दिन कहाँ से चढ़ गया। फिर कोई झरना या सोता तो आने दो, जम जायँगे। खाने की इतनी चिन्ता क्या ? जंगल में क्या खाने और आराम करने ही आते हैं। सो तो रोज घर हो ही जाता है। यहाँ तो........।'

पर द्वारका सोचने लगा था अपनी घरवाली के बारे में। बड़ी झगड़ालू थी वह। एक वेला भी रोटी बिना लड़े नहीं खिलाती थी, वह भी जली-फुँकी या अधपकी। कभी दाल में नमक ज्यादा, कभी मिर्च ही नहीं या दोनों ही साथ। क्या करूँ; उमर ढल चुकी है, नहीं तो दूसरा ही ब्याह कर लेता। फिर बच्चे, एक-दो नहीं, आधा दर्जन! आज जंगल में आया हूँ तो चैन मिली। रोटी बिना फटकार सुने खाने को मिल जायगी। सचमुच उस घर में बैठने और खाने से तो इस जंगल में बिना सोचे चलते और बढ़ते रहना ही अच्छा।

गौरी ने कहने को तो कुछ कह ही दिया था और द्वारका की बात भी काट दी थी, पर उसका दिमाग था दूसरी ही ओर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उसकी पत्नी के सिर्फ एक ही बहन थी और भाई कोई नहीं, जब कि ससुर के पास धन की कोई कमी नहीं थी। अब वह धन उसका ही होगा। पर सारा नहीं। उसकी कुँवारी साली जो बाधक है। तब कैसे चलेगा? और बस, उसे चिन्ता इस बात की थी कि या तो उसकी वह साली मर जाय, या उसका उसी से विवाह हो जाय; और उसके उस ब्याह में पहली पत्नी बाधक हो तो वह भी मर जाय। मतलब यह है कि कुछ भी हो, पर ससुर का धन उसे पूरा-पूरा मिल ही जाना चाहिए।

वह इसी सोच-विचार में था कि पैर में बड़े जोरों की ठोकर लगी। जूता था, इससे पैर फटने से बच गया। फिर भी गिर ही पड़ा और घुटने छिल गये। हाथों में भी कंकड़-काँटे चुभ गये। माथे पर खरोंच लग गयी। गनीमत यह हुई कि आँख बाल-बाल बच गयी। मानों इस ठोकर ने उसे यह सबक दिया कि जिन्दगी के रास्ते बड़े बीहड़ हैं। अच्छे-अच्छे ठोकर खाकर मुँह के बल जा पड़ते हैं तुम्हारे ऐसे शेखचिल्लियों की बिसात ही क्या!

और गोविन्द, उसकी चिन्ता भी निराली थी। उसका ग्रेड बढ़ने में उसके आफिस का एक क्लर्क बड़ा बाधक था। हर पहला चान्स उसे मिलता था और दूसरा, जो शायद उसके अपने लिए होता था कभी न आता था। वह इसी तरह परेशान होता रहता। आज वह सोच रहा था कि यदि वह कहीं इस जंगल में मिल जाय, तो उसको मार डालूँ। दुनिया को पता ही नहीं चले। वह उससे तीन सौ मील दूर बैठा था, फिर भी उसकी दुश्चिन्ता खुल-खेल रही थी। इतने में किसी काँटे ने उसका दामन थाम लिया। शायद वह कहना चाहता था कि 'ठहरो, विचार करो।'

पर वे सब के सब विचार करते आगे बढ़ते जा रहे थे। ठहरना जैसे वे जानते ही नहीं। इतने में किसी ने घबड़ाकर कहा—'अरे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

रामलाल नहीं दीखता, कहीं छूट गया !' सबने घबड़ाकर इधर-उधर देखा; सच ही वह दिखाई नहीं दे रहा था। कुछ हल्ला-सा मचा। किसी ने बहकाने के लिए यहाँ तक कहा कि 'अरे गया कहाँ होगा, कोई शेर तो नहीं खा गया ? यही कहीं पेशाब-वेशाब करने बैठ गया होगा।' पर थोड़ी देर बाद उसकी यह ततल्ली भी गलत साबित हो गई। अन्त में यही निश्चय किया गया कि लौटकर उसे खोजा जाय। प्रकट रूप में किसी ने इस प्रस्ताव का विरोध नहीं किया, पर मन-ही-मन सब खीझ रहे थे। किसी को भूख ने परेशान कर रखा था, तो किसी को धूप और रास्ते ने। फिर भी लौटना पड़ रहा था। वे कुछ ही कदम लौटे होंगे कि उन्होंने पास ही एक गुलदार को रामलाल की खूब खिला-पिला कर तैयार की गई देह से खिलवाड़ करते देखा, सब-के-सब सन्न रह गये और किसी की हिम्मत अपने उस बचपन के साथी का अन्त तक देखने की नहीं हुई। उसे बचाने की कोशिश करना तो दूर। उनको अपने-अपने प्राणों का मोह प्रबल हो गया और वे अपने प्रिय सखा को यम के हाथों में छोड़ भाग चले। गोपाल जो अपनी गरीबी से तंग था; मोहन जिसे साठ रुपए की क्लर्की ने तबाह कर रखा था; चन्द्रभान, ऐजेंसियाँ जिसकी जान का जंजाल बन गई थीं, द्वारका जो घर छोड़ना चाहता था; गौरी जो सम्पत्ति हड़पने की धुन में था और गोविन्द जो अपने सहकर्मी की हत्या ही करना चाहता था, इस समय सबसे अधिक सिर्फ अपने को ही बचाने में लगे थे। रहा बेचारा रामलाल, अब वह दिसावर जाने से ही छुटकारा पा गया था।

इसी तरह भागते-भागते वे काफी दूर निकल गये थे। गनीमत हुई कि उन छः में से कोई पिछड़ा नहीं। बहुत काफी दूर निकल आने पर उनकी जान-में-जान आई। फिर भी पूरी तसल्ली किसी को

lepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

न थी। सभी घर लौट जाना चाहते थे, जल्दी-से-जल्दी। किसी को किसी के साथ की परवाह न थी। पर अब भय ने उन्हें साथ ही जकड़ रखा था। मजबूरी में वे साथ थे।

इधर भूख ने इतना बेहाल कर दिया कि बिना कुछ खाये एक कदम भी आगे बढ़ना नामुमकिन था। पर पानी के बिना इस दौड़-धूप के बाद कैसे चलेगा। किन्तु जब उनमें से किसी को दृष्टि सामने अड़े पहाड़ की कोख पर पड़ी जिसमें कि बहुत-सा स्वच्छ-सुन्दर पानी जमा था, तो सभी को बड़ी राहत मिली। गरीब गोपाल बड़ी उतावली से उस ओर बढ़ा। वह अपने जले-भुने पैरों को किसी तरह शीतल किया चाहता था। पर उसने उस कुंड में बिना सोचे-समझे पैर रखा नहीं कि गड़पगुम। यह क्या? साथियों ने देखा एक दूसरी मौत, और अब सबकी मौत सबकी आँखों में नाच रही थी। किसी की इतनी हिम्मत न पड़ी कि उसके चिकने किनारे को पकड़ने की कोशिश करनेवाले उसके हाथ को थाम कर उबार ही ले। आखिर गरीब गोपाल अपनी गरीबी के साथ डूब ही गया। जिस तरह उसने अपने पहले साथी का मरने में साथ न दिया था, उसी तरह उसका भी कोई न दे सका।

अब वहाँ कोई भोजन भी नहीं कर सकता था। या तो गोपाल के साथ सबकी भूख मर ही गयी थी या इस मृत्युकुण्ड में उन्हें अब जल के स्थान में विष-ही-विष दिखाई देने लगा था, जिसे अब कोई वैसे भी पीने को तैयार न था। फिर भी उन पाँच जिन्दों का काफिला वहाँ से आगे न बढ़ सका। सभी के घुटने गिर रहे थे। आखिर कुछ देर के लिए उन्होंने कमरें ढीली कर ही दीं।

कोई घंटा भर रुककर उन्होंने बढ़ने का निश्चय किया। और अपनी-अपनी कमरें कसने लगे। पर गौरीशंकर पड़े-का-पड़ा रह गया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

किसी ने कुछ प्रेम और किसी ने कुछ क्रोध साथ कहा—'इस सुअर को उठाओ न! क्या इसी तरह पड़ा रहेगा? या हम इसे यहां छोड़ चलें?'

पर वह सुअर ऐसा था कि न तो धमकी से ही उठा और न उठाने से ही। उसके मुँह से भाग निकल रहे थे और ओंठ नीले पड़ चुके थे। शायद कोई नागिन उसे चूम कर चली गयी थी। बेचारे गौरी का मीठा सपना उसकी जिन्दगी के साथ ही खत्म हो गया। अब कैसे वह अपनी साली से व्याह करेगा, कैसे ससुर की सारी सम्पत्ति अपनी बना सकेगा। आः, वह तो चाहता था साली की मौत या अपनी पत्नी की मौत। पर यह क्या—मौत उसी की आ गयी। मौत ने कहीं उसकी बातों का गलत अर्थ तो नहीं समझ लिया।

तीन गये, अब चार शेष थे। पर अब वे चारों भी भागे। जिन्दगी के लिए मौत से भागे या भागना चाहते थे। उनके एक नहीं, तीन-तीन दिली दोस्त मर चुके थे, और यह उनके लिए अच्छा मौका भी था, बचपने की साथ मरने की प्रतिज्ञा को अमल में लाने का। पर अब सबको अपनी-अपनी जिन्दगी सबसे कीमती और सबसे प्यारी लग रही थी।

पर वे जीवन को बचाने के लिए ऐसे भागे कि जीवन का मार्ग ही भूल गया। उन्हें दिशाभ्रम हो गया। किधर बढ़ें। किधर न बढ़ें? जंगल में अटकल से बढ़ना खतरे से खाली नहीं था। तब क्या! शरीर थक रहा था। हिम्मत टूट रही थी। पर प्राणों के कस बढ़ रहे थे। बहुत कुछ सोच-विचार कर यही तय हुआ कि इधर कहीं से पहाड़ पर चढ़ पड़ें और फिर पहाड़-पहाड़ अपने चिरपरिचित देवी के मन्दिर तक पहुँच कर सीधा बस्ती का रास्ता पकड़ें। जीवन-मोह ने उन भूख-प्यासे, थके-माँदों को आगे बढ़ने और पहाड़

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

चढ़ने की शक्ति दी। खून का पसीना बनाकर, घुटनों पर हाथ टेकते हुए वे किसी तरह ऊपर की ओर चढ़ रहे थे। रास्ता इतना बीहड़ और कठिन था कि चढ़ते न बनता था। पर अब तो कुछ भी हो, उस रास्ते से ही सही रास्ते पर लगना था। पर दुर्भाग्य पीछा न छोड़ रहा था। जब वे पहली श्रेणी को लाँघनेवाले ही थे कि गोविन्द का पैर ऐसा सरका कि जम ही न सका, जब तक कि नीचे की कड़ी पृथ्वी ने उसके रक्त से अपना आँचल रंगकर उसे अपनी गोद में ले नहीं लिया। बेचारा गोविन्द अपना वेतन बढ़ाने के लिए अपने सहकर्मी तक की हत्या करने पर उतारू था, पर यह पहाड़ ऐसा कठोर कि उसी की मौत बन कर टूट पड़ा।

अब उन तीन का अचरज भी मर चुका था। उन्हें प्रतीत हो रहा था कि कोई प्रबल शक्ति उनसे खेल रही है और अब उनकी भी वैसी ही मौतें अवश्यम्भावी हैं। सोचकर उनका रंग पीला पड़ गया था और आँखें मृत्युभय से निर्जीव हो गयी थीं। फिर भी वे अपनी जान में अपने जीवन को बचाने के लिए सब कुछ करना चाहते थे। पर क्या?

वे सब रुककर बढ़ने लगे। पर पहाड़ के मार्ग में पड़नेवाली जो श्रेणियाँ नीचे से दिखाई न देती थीं, वे नई-नई बनकर हर चढ़ाई के बाद दिखाई देने लगीं, जिससे उन्हें आगे बढ़ने के रास्ते में पहाड़-ही-पहाड़ दिखाई देने लगे। वे ही नहीं, अब तक सूरज भी शायद चलते-चलते थक चला था। और अब वह विश्राम के लिए शायद पश्चिमोदधि में डूबकर पितृ-क्रोड़ का सुख लिया चाहता था। क्लर्क मोहन, जो जीवन में रोटी-पानी का जुगाड़ करता-करता ही काफी टूट चुका था, अब इस नई विपत्ति से लड़ने का साहस अपने में न पा रहा था। उसे लग रहा था कि अब वह ये नई पहाड़ियाँ पार करके भी एजेंसियों को लेने के योग्य नहीं रहेगा। उसका

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

शक्तिदीप बुझ रहा था। अब वह जली हुई बत्ती के अग्रांश-सा गिरा ही चाहता था। हारकर उसने घुटने टेक दिये। ऐसे कि फिर कभी न उठे। वह उठा ही नहीं। जो जीवन के वैभवमय विस्तार का स्वप्न देखता था, वह इन कठोर पहाड़ियों से टकरा कर चूर-चूर हो गया। इसकी हृद्गति बंद हो गई थी।

चन्द्रभान और द्वारका फिर भी बढ़ते गये, यद्यपि विश्वास हो रहा था कि वे अपनी मृत्यु की ओर ही बढ़ रहे हैं। फिर भी चन्द्र-भान अपनी एजेंसियों को छोड़कर भी अपने जीवन को समेटकर भी, अपनी प्राणरक्षा करना चाहता था और द्वारका जो पहले ही जीवन से ऊब चुका था, अब उसके आकर्षण का उपभोग करने के लिए सर्वस्व की वलि देकर भी प्राणरक्षा करना चाहता था।

सूरज डूब ही गया। अँधेरा बढ़ चला और उसी के साथ उनकी निराशा भी। कुछ सुस्ताने के लिए वे एक चौड़ी शिला पर टिक गये। भोजन उनके साथ था और अब तक उनकी भूख भी भय और बहानों के आगे बढ़ चुकी थी। कुछ भी हो, भूखे नहीं मरेंगे और वे खाने लगे। उन्होंने खूब भोजन किया, बेहद भोजन किया। पर जब टुकड़े पानी के अभाव में गले में अटकने लगे तो कुछ करते-धरते न बना। उधर खाते ही प्यास का जोर बढ़ चला। क्या करें? कहीं पानी मिलेगा? अचानक द्वारका को ध्यान आया कि कल जोरों से मेंह बरसा था। अवश्य ही पहाड़ के किसी गड्ढे में जल भरा होगा। वहीं खोजना चाहिए। और वे दोनों ही दो अलग-अलग दिशाओं में खोजने लगे। तय किया कि ज्यादा दूर अकेले न बढ़ें और जरूरत भी हो तो साथ ही। चन्द्रभान तो जल ढूँढ़ता ही रहा कि द्वारका को एक वैसा गड्ढा मिल गया। उसने उस समय उसके स्वच्छ होने का भी विचार नहीं किया और न अपने साथी की ही चिन्ता। बस बेताब होकर उस जल के चुल्लू-पर-चुल्लू चढ़ाने

pal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

लगा। जल यद्यपि कुछ गरम लग रहा था, पर वह उसे अन्त तक पीने से न रुका। ऐसा अन्त कि जिसे सर्वान्त कहना चाहिए। पानी विषैला था और विष तीव्र। वह जल पीने के बाद उस स्थान से हट भी नहीं सका।

और चन्द्रभान अभो भी बढ़ रहा था। तेजी से व्याकुल-सा बढ़ रहा था, शायद उसी तेजी और अकुलाहट से जिससे कि उस रात का अन्धकार। चन्द्रभान टटोलकर ठोकरें खा-खाकर बढ़ता रहा, किसी अज्ञात दिशा की ओर! घूम-फिरकर उन्हीं-उन्हीं रास्तों पर। उसने हताश दृष्टि को आसमान की ओर उठाया। शायद चाँद उग आये और दो कण सुधा के ही बरसा दे। पर अभी किसी दिक्कोण में सन्ध्या ही उससे उलझ रही थी। उसे रजनी का मान रखने में विलम्ब हो रहा था। रजनी उसकी प्रतीक्षा से ऊब रही थी और जब उसका चाँद आया भी तो उसका तारकांचल मलिन हो चला था। चन्द्रभान ने उठते चाँद के प्रकाश में देखा कि द्वारका एक जल के गढ़े के पास मृत होकर पड़ा है। उसे लगा कि आसमान का चाँद भी इसी तरह मर जायेगा। ये तारे भी इसी तरह बुझ जायँगे और ये दिन-रात भी इसी तरह सारी दुनिया को मार-मार कर खुद मरते जायेंगे। मैं भी न बचूँगा। मेरी एजेन्सियाँ भी न बचेंगी और तब, तब मेरे पीछे चाँदनी होगी या अँधेरा, चाँद-सूरज भी होंगे या नहीं, दिन-रात कैसे आयें-जायेंगे, जीने-मरने का क्या अर्थ है, अपना-पराया भी कुछ होता है क्या, आदि का कुछ भी तो मेरे लिए प्रयोजन न रह जायगा। तो यह सिर्फ धड़कते दिल, जलती आँखों और जिन्दा अरमानों के लिए हैं, नहीं तो कुछ भी नहीं।

तभी उसे अपने बचपन के छहों साथी याद आये। वे सब दिन, एक-एक करके सब दिन। साथ जीने और साथ मरने की प्रतिज्ञाएँ

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

भी । आः, यह कैसा कि साथ जी तो नहीं सके पर मर रहे हैं ! छः जने लगभग साथ ही मरे हैं । फिर मैं ही जीवित क्यों ? मेरी ही प्रतिज्ञा झूठी क्यों ? ऐसा क्यों ? क्यों ? क्यों ?

उसकी इस 'क्यों' से पहाड़ भी प्रतिध्वनित होकर पूछने लगा, भला क्यों ? क्यों ? क्यों ? और उसने इस 'क्यों' का उत्तर दिया पहाड़ के उस सर्वोच्च शिखर से कूद कर, जहाँ से उसकी बस्ती और जीवन का रास्ता सीधा और साफ बिखरा पड़ा था ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सब अपने लिये रोते हैं

मैं सोया ही पड़ा था कि मेरे पड़ोसी रामजी बाबू के नौकर ने मुझे जगाते हुए कहा—"बाबूजी ! रामजी बाबू का इन्तकाल हो गया !"

मैं आँखें खोल भी न पाया था कि नौकर मौत की खबर देकर वापस लौट चला। मैं झट से मसहरी का पल्ला उठा खाट के नीचे आया और नौकर को आवाज देकर रोकते हुए पूछा : 'नेतू, रामजी बाबू को हुआ क्या था ?"

नेतू ने चलते-चलते कह दिया : "दिन पूरे हो गये थे।"

नेतू चला गया। वीतरागी-सा। मृत्यु हो गई मालिक की, पर उसके लिए कुछ नहीं ! दस तक उसे यह अप्रिय समाचार पहुँचा देना है, पहुँचा देगा। कोई अधिक पूछेगा तो कह देगा—दिन पूरे हो गये थे !

भला यह दार्शनिक बुद्धि उसे किसने दी ? शायद नेतू......

नेतू के बारे में इससे ज्यादा मैं सोच न सका। रामजी बाबू की ओर ध्यान खिच गया। क्या उम्र थी। ५० को भी नहीं, मेरी ही उम्र के। मर गये ! दो-दो बीबियाँ और आठ बच्चे छोड़कर, जिनमें सबसे बड़ी १६ साल की एक लड़की है और सबसे छोटा साल भर का एक लड़का—बड़ी कच्ची गृहस्थी। अब क्या होगा ?

सोचते-सोचते मुझे ध्यान आया कि मुझे भी चलना चाहिए। पर चलने का जाने क्यों उत्साह न था। जाकर रोआ-राट का सामना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

करने की हिम्मत न थी। मैं निबटने चला गया। फिर कुल्ला दातून की। पर दिमाग में रामजी बाबू ही थे। रह-रहकर उनकी बातें मन में उठ आतीं !

वे मुझसे कहते : "तिवारी, तुम में मनुष्यता की बड़ी कमी है।"

मैं पूछता : "क्यों ?"

कहते : "तुममें मोह नहीं !"

"मोह !"

"हाँ ! ब्याह जो नहीं किया। अधूरे जो हो।"

मैं हँस कर कह दिया करता : "ईश्वर ने एक पुरुष के लिए एक स्त्री पैदा की है। तुम्हारे जैसे जब एक का नियम तोड़ दें तो हमारे जैसों को घाटा पूरा करना ही पड़ता है !"

इस पर वे हँस दिया करते। कहते : "मजाक तो अच्छा है ! पर भाई, ब्याह न किया, गृहस्थ न हुए तो लोक-बुद्धि का भी दिवाला रहता है।"

मैं पूछता : "लोक-बुद्धि क्या होती है ?"

वे बताते : "व्यवहार की अक्ल ! जैसे किसी झगड़ालू पड़ोसी के मरने पर चाहे तुम्हें खुशी ही हो रही हो, तब भी उसके घरवालों के सामने जाकर रो पड़ना, या ऐसे ही भीगी आँखों से हमदर्दी दिखाते हुए मृत का गुणगान करना।"

मैं घबड़ा-सा जाता ऐसी बात सुन कर। कह देता : "बाज आया ऐसी लोक-बुद्धि से। यह तो अपने साथ ही बेईमानी है।"

इस पर वे कहते ही : "ब्याह जो नहीं किया ? इसी से बछेरे की तरह कूदते हो !"

मैं : "छोड़ो भाई ! मेरा ब्याह अब मुमकिन ही कहाँ।"

वे : "क्यों, बाल तो अभी काले हैं।"

मैं : "उम्र तो अब सफेदी की हो गई। पाँच कम पचास का हूँ !"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

वे : "अरे उम्र औरत की देखी जाती है, मर्द की नहीं। मर्द तो साठे में भी पाठा होता है।"

मैं हँसी का विराम लगाने को कह देता : "वह तुम हो !"

मैं फारिग हो चुका था। कपड़े पहन कर आखिर रामजी के घर के तरफ चल ही दिया। रास्ते में भी उन्हीं की बात दिमाग में घूम रही थी। वे कहते : "तिवारी, ब्याह अब भी कर डालो। बुढ़ापे में कोई सेवा करनेवाली तो होगी।"

मैं : "मेरा नौकर अच्छा है।"

वे : "भली कही नौकर की ! कल दूसरे ने उसे दस के बारह दिये, वह चलता बना। भाई, पत्नी पत्नी ही है। सुख-दुःख की सच्ची साथी ! बीमार पड़ जाओगे तो नौकर कन्नी काट जायेंगे। वे तुम्हारा मल-मूत्र साफ नहीं कर सकते। रात-रात भर जाग कर दवाई नहीं दे सकते ! पानी को भी नहीं पूछेंगे।"

मैं : "तुम सब मोटे स्वार्थ की बात कहते हो ! भाई, मैं तो बीमार पड़ा नहीं कि अस्पताल गया। नर्सें जो तीमारदारी कर सकती हैं, वैसी और कोई नहीं।"

वे : "और कोई तुम्हारे है कौन ? इसलिए तुम जानो भी क्या। पर एक बात कह दूँ, तुम अस्पताल में जाकर मर भी गये तो कोई नर्स या मेहतर वहाँ नाम लेकर रोयेगा तक नहीं। मुर्दा जला दिया जायगा और तुम्हारी खाट या तो खाली पड़ी रहेगी या कोई मरीज आ जायेगा।"

मैं : "तो तुम्हें मरने के बाद रोने के लिए रोनेवालों की ज्यादा फिक्र है।"

वे : "अरे भाई, वह मौत भी क्या जिस पर कोई रोनेवाला न हो ?"

मैं : "मुझे मरने के बाद की किसी बात की फिक्र नहीं। पर मनुष्यता का सवाल है, तो नर्स भी रो देगी। अस्पताल का मेहतर भी रो देगा। मौत किसे अच्छी लगती है ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

वे : "वेवकूफ हो ! ऐसी मनुष्यता कहाँ ? सब स्वार्थ के लिए रोते हैं। बीवी का स्वार्थ मर जाता है, इसलिए रोती है। मरने वाले का नाम लेकर रोती है।"

मैं : "यह जानते हुए भी तुम रोने का इन्तजाम पहले से कर रखने की सलाह देते हो ?"

आखिर वे बचने के लिए कह देते : "अरे गृहस्थी का क्या सुख है, तुम जानते तो हो नहीं, कोई बात समझाऊँ भी कैसे ?"

आज तक मैं न समझा था। उसी नासमझी के साथ उनके घर जा पहुँचा। दीवालों को बहरा कर देनेवाला रुदन मचा था। शव सफेद कपड़े से ढका पड़ा था। कल तक रामजी बाबू का यही ६ फुट का लम्बा शरीर ठहाके लगाकर पान चबाता हुआ मस्ती में भर कर इधर-उधर घूमा-फिरा करता था। आज वही........?

बड़ी वहू दीवार में सिर पटक-पटक कर रो रही थी। छोटी जिसकी उम्र उनसे सिर्फ आधी थी, पैरों में बिलख-बिलख कर लिपटी जा रही थी। पास-पड़ोस की दो-चार जवान-बूढ़ी औरतें उनके रोने को अपने स्वर का सहारा दे रही थीं। बड़ी लड़की और कुछ बड़े बच्चे, जिन्हें मौत का कुछ-कुछ अर्थ पता चल गया था, अनाथों की तरह तड़प रहे थे। मैं फटी आँखों से यह सब देख रहा था। एक बार चाहा कि रामजी बाबू का मुँह उघाड़ कर देख लूँ, पर हिम्मत न हुई। साथ ही बीबियों की रुदन उक्तियों को सुन कर और भी धैर्य जाता रहा।

बड़ी वहू, जो दीवाल को सिर से न फोड़ पा कर अब बाल नोचने लगी थी, कह रही थी : "हाय हाय, मुझे इसने कौन-सा सुख दिया। न जीते न मरते। मेरी जवानी में ही एक और रांड को छाती पर ला बिठाया। हाय रे हाय ! मेरी रातें, रात न रहीं; दिन, दिन न रहे। मेरा किया भी क्या ? मेरे नाम का तो कुछ छोड़ा भी नहीं। बैंक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

छोटी का, बीमा छोटी का। मोटर छोटी की। मढ़ैया छोटी की। मुझे व्याहा थोड़े ही था। मैं तो रखैल थी रखैल! व्याही तो यह छोटी थी। हाय राम, अब मेरा क्या होगा! मेरी बेटी व्याह जोग हो गई। उसके हाथ कौन पीले करेगा? मेरे सागर का क्या होगा? हांय रे, मैं तो उजड़ गई। इस नागन ने मुझे चौपट कर दिया! हाय रे, हाय......!''

बड़ी बहू के परिताप की कोई सीमा न थी। उसके ये वाक्य काश रामजी बाबू सुन सकते तो अगले जन्म में व्याह की भूल न करते। या ईश्वर ही सुन ले तो गृहस्थी का प्रपंच ही मिटा दे!

बड़ी बहू का रोना जारी था। बीच-बीच में छोटी भी भभक उठती। बड़ी ठेठ गाँव की अपढ़ और फूहड़—इससे अपने रोने में भी गँवार। पर छोटी शहर की थी और मिडिल पास। फिर भी औरत थी, और कह रही थी: ''हाय मेरी जवानी तो बर्बाद हो गई। जीते जी व्याहलियों का-सा सुख नहीं पाया, अब क्या पाऊँगी। ओ रे रामजी, पति मुझे पति जैसा एक दिन को भी न लगा। मेरी खुशी के दिन नसीहतों में बिता दिये। व्याह के दिन क्या सुख होता है, मैं तो जान ही न सकी।''

मैं सोच रहा था कि जानती भी कैसे? जवानी की चढ़ी नदी, सूखे सागर से किस उमंग से मिल सकती है। उसकी जवानी की बाढ़ को अपनी जवानी के उफान में समा लेनेवाली तरुणाई चाहिए। शरीर के हट्टे-कट्टे पर अति विलास के कारण विकल इन्द्रिय रामजी बाबू कैसे किसी को यौवन का उन्माद दे सकते थे! यौवन के उन्माद की भूखी संगिनी जीवन में भी भूखी रही और मरण में भी!

इसी प्रकार सोचता हुआ मैं वहाँ से हट गया। आँगन में आया। तीन बरस की चुनिया जो मरण का रहस्य समझे बिना सबको रोते देख खुद भी बाबूजी-बाबूजी कह कर रो रही थी, अब किसी के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

गरम-गरम जलेबियाँ ला कर दे देने पर उन्हें चाव से खा रही थी और आँसुओं की धाराओं को पोंछने तक की फुर्सत न थी। पाँच बरस का पंचू टुकुर-टुकुर उसको ओर देख रहा था और शायद सोच रहा था कि वह भी रो सकता तो शायद जलेबियों का अधिकारी हो जाता।

वहीं पास में दो बकरियाँ बँधी थीं। रामजी बाबू पत्नी और बकरी को बराबर ही समझते थे और बराबर ही प्यार करते थे, प्राकृतिक सीमाओं से विवश हो कर। उन्हें शायद पता भी न था कि रामजी बाबू अब नहीं रहे। सामने पड़ी-पड़ी हरी-हरी पत्तियों को, अपनी भींगते पैरों से काट-काटकर, तृप्ति के साथ खा रही थीं। उन्हें अतृप्त आँखों से देखकर मैं बाहर चला गया। ड्योढ़ी से निकलते ही नेतू मिला। मुझे देखते ही बड़े उछाह से बोला : "अब लौटा हूँ बाबू जी! मुहल्ले भर को खबर कर आया।"

मन में आया कि कह दूँ : "बड़ी बहादुरी का काम किया। जाओ अब गरम-गरम दूध पी कर थकान मिटाओ!" पर उसके भद्दे मुँह के सामने और अधिक खड़े होनें की हिम्मत न हुई। चल दिया। रुदन अब भी पीछा कर रहा था। सड़क पर उसी रोने से आकृष्ट होकर किसी अनजाने बाहरी ने पूछा : "कैसा रोना है?"

मैं : "मौत हो गई है।"

वह : "कोई मर गया है?"

उसने कहा और अपनी चाल से आगे चल दिया। कौन मर गया हैं, यह उसने न पूछा क्योंकि उसका इससे कोई मतलब न था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

ज़रा-सी बात

सच्चू दस बरस हो गया। पर समझ उससे उम्र का दस गुना दूर है। जितने अक्षर नहीं पढ़े उससे अधिक किताबें फाड़ चुका है। उससे भी अधिक बेंतों की मार पड़ी है। पर वह शैतानी छोड़ता ही नहीं। मुंशीजी हर उपाय कर के हार गये। शहतूत की संटियों तक से मरम्मत की, बेंत तक पीठ की खाल उधेड़ने के काम में लाये, मगर सच्चू न बदला! संटियों और बेंतों तथा सजा देने के ढंग बदलते गये, पर जिसे बदलना था—वह न बदला। स्कूल का उस का वक्त गाँव के जोहड़ में तिरते; आम, अमरूद, जामुन और शहतूत के पेड़ों को धुनते, गुल्ली-डंडा और आँख-मिचौनी खेलते ही बीत जाता। कबड्डी और डोलो उसे उतनी ही पसन्द थी जितनी कि पढ़ाई नापसन्द।

और यह शैतान सच्चू कोई हट्टा-कट्टा भी न था। एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। मुँह पर बड़ी-बड़ी आँखें और लम्बी नाक के सिवाय कुछ न दिखाई देता था।

मदरसे में तो मार पड़ती ही थी, घर पर भी पड़ती। मुंशीजी मदरसे से लौटते हुए उसके बाप से चौपाल में एक की चार लगाते। बाप पटवारी हैं। लड़के के ऊधम सुनता। आग-बबूला हो उठता। और तभी घर के भीतर आकर सच्चू की माँ पर बरसने लगता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सच्चू प्रायः ऐसे वक्त गायब रहता। सामने पड़ जाता तो उसकी हड्डी-पसलियाँ दुरुस्त हुए बिना न रहतीं।

पटवारी कभी ड्योढ़ी के भीतर आ कर गरजता सच्चू की माँ पर—"सच्चू कहाँ है? आज मैं उसकी हड्डी-पसली तोड़े बिना न मानूँगा।"

माँ बेटे का पक्ष ले कर कहती—"बस यही तो आता है तुम्हें! प्यार तो कभी किया नहीं, जब देखो मार! उसके जनने की पीड़ा तो मैंने भोगी है। उसकी बदन की चोट के दर्द को मैं जानती हूँ।"

पटवारी भभकता: "बस-बस रहने दे, तू ने ही उसे बिगाड़ रखा है। आज अभी तक बाहर ही दीखता है। आने तो दे जो...."

पटवारिन नरम पड़ती—"पर बात भी हुई कुछ?"

पटवारी ने बताया: "स्कूल में दिन भर गायब। किताब-तख्ती नदारद। राम जी का बाग उजाड़ डाला। एक भी पक्का आम पेड़ पर न छोड़ा। उसने तो मेरा गाँव में रहना मुश्किल कर दिया है। पटवारी का लौंडा समझ कर कौन कब तक लिहाज करेगा। बस आज तो....।

पटवारिन आँगन से घर के भीतर मुड़ती हुई कहती,........ "जाओ भी, क्यों जरा-सी बात का तूफान खड़ा कह रहे हो!"

पटवारी चिंघाड़ उठता—"तुझे जरा-सी बात लगती है। फसल में एक पेड़ सौ-सौ उठाता, पर उसने कच्ची अंबिया तोड़ कर ही सब कुछ खत्म कर दिया। अगर......"

पर 'अगर' अब दीवालों को देख कर नहीं बढ़ पाता। जरा-सी बात टल जाती।

फिर सच्चू शाम को घर में घुसता। रूखे बाल, दुपहरी में इधर-उधर धुंध मचाने के कारण चढ़ी हुई आँखें, किसी से लड़ाई-झगड़े में फटा हुआ कमीज मुँह पर नाखून के खरोंचों के निशान।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

माँ उसे देखती। देखते ही करम ठोंक कर कहती,"....तूने तो मेरा जीना मुश्किल कर दिया रे! लगता है कि फाँसी खाकर मरना होगा। तेरी शैतानियों के मारे नाकों दम है। अरे इस तरह क्यों जला रहा है? एक दिन मुझे मार कर अपने ऊधम का खातमा ही कर दे न।"

सच्चू चुपचाप सुन कर कहता, "माँ भूख लगी है। रोटी......!"

माँ चीखती, "...भूख लगी है। पेट है कुआँ। कच्ची अम्बियों से पेट नहीं भरा, खा तू जितनी खाई जावे खटाई, जब आँखें उबलेंगी तो पता चलेगा, तब माँ का नाम भी लिया तो..."

सच्चू माँ की आदत जानता है फिर दोहराता है, "अच्छा खाने को तो दो। पेट में भूख के मारे दरद हो रहा है।"

माँ कहती, "कच्ची अम्बियाँ खाएगा, पानी पियेगा, डले-पत्थर निगलेगा, फिर भी पेट में दरद नहीं होगा, तो क्या होगा? तू बड़ा आफत का परकाला हो गया है। आज से तुझे टुकड़ा भी जो खाने को दूँ। पकी पकायी रोटियाँ मिलती हैं। उन्हीं से यह मटर गश्ती सूझती है।"

इतना कह कर माँ उपेक्षा संचित करती हुई काम में लग जाती। सच्चू की पुकार व्यर्थ जाती। अन्त में वह हाथ-पैर पटकने, रोने चिल्लाने, और अपनी शिकायतें लगानेवालों को गालियाँ देने लगता। इतने में पटवारी भी चौपाल से उठ कर भीतर आता। साँझ की बात साँझ के साथ भूल जाता। प्यार के साथ पूछते, "क्यों रो रहे हो, सच्चू!"

सच्चू कारण न बताता और अधिक फैल भरने लगता। आखिर बाप को माँ से पूछना पड़ता, "क्या बात है? तुमने कुछ कहा?"

माँ तीखे स्वर में कहती, "...अभी तो कहा ही है। अब दिखा दूँगी।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

बाप शान्त करता हुआ पूछता, "...क्यों तेज होती हो ? क्या करके दिखाना है ! बच्चे के साथ बच्चा बनना भी भला ठीक है ?"

माँ फिर जोर देती... "नहीं-नहीं, ऐसे ठीक नहीं होगा। मैंने कसम खाई है, आज तो इसे..."

उसके वाक्य पूरा करने से पहले ही सच्चू रोते-रोते कहता.... "मुझे भूख लगी है। मुझे रोटी कोई नहीं देता। हाय ! मैं भूखा ही मर जाऊँगा। हाय रे, मर गया रे मर गया !"

बाप से अब न सहा जाता। सच्चू का पक्ष लेकर पत्नी पर बिगड़ता।

और तब सच्चू को रोटियों की सूखी चिनाई करनी और पन्द्रह बरस के लड़के की खूराक खानी पड़ती।

इसी तरह रोज और कभी दिन में कई-कई बार जरा-जरा-सी बात पर तकरार हो जाया करती। बाप को जब गुस्सा चढ़ता, तो माँ उसे अनाज की कोठी के पीछे छिपा कर खुद सामने हो जाती और रात में भी जिद करती कि मदरसे में पढ़ने गया है। माँ जब इसी तरह गुस्सा करती, तो बाप हिमायती बन जाता और गुस्सा टल जाता। कभी-कभी सच्चू की बुद्धि भी काम कर जाती। वह कहता, "माँ, आज मैंने भूत देखा है !"

जब कि माँ का पारा सातवें आसमान पर होता, भूत की बात सुन कर पाताल में उतर आता। चट से अपने लड़के का सिर ढक कर मन-ही-मन ईश्वर के अनुग्रह की कामना करती हुई कहती— "अरे तू कहाँ-कहाँ फिरता है ! मुझे रुलाए बिना नहीं मानेगा क्या ?"

सच्चू रूपक बांधता, डरती क्यों हो माँ। मैं तो नहीं डरता। सब कहते हैं कि उस दीवाल के नीचे सैयद रहता है। कोई उस पर थूक भी दे तो जान ले लेता है। कल ही मैंने वहाँ पेशाब किया।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

माँ के पितर कूच कर जाते, बैठते हुए दिल से कहती—"ओ मेरे बच्चे, तू देवता-जिन्न के साथ शैतानी मत किया कर। आदमी और उसकी धरती तेरे लिए कौन-सी थोड़ी है।"

सच्चू आगे कहता—"कल की ही तो बात है। मकान के पीपल के नीचे सूतली के धागे से लिपटा मिट्टी का कच्चा घड़ा रखा था। रामू ने कहा इसे फोड़ दे, तो मैं जानूँ। मसान के प्रेत इसी का पानी पीते हैं। माँ, मैंने उसे फोड़ दिया। फोड़ा ही नहीं, पानी भी पी लिया!"

बस, माँ का शरीर काँपने लगता। बेटे से लिपटी-लिपटी जहाँ की तहाँ बैठ जाती, दिमाग सुन्न हो जाता और कान सुनने की क्षमता खो बैठते। तब भी सच्चू सुनाता—"और जो आम के बाग का चौराहा है, वहाँ कच्चे आटे का दीया और बलि का सामान रखा था। उसे मैंने आज ही बराबर किया। लड़के कहते थे, माता का पुजापा है। मै नहीं मानता, मैंने दीया बुझा दिया और पुजापा... ।"

इतने में बाप आ जाता। सच्चू का बोलना तभी बन्द हो जाता। बाप बेटे को हँसते हुए देख कर हँस कर कहता—"आज तो बड़ा लाड़ लड़ाया जा रहा है।"

माँ घबड़ा कर कहतीं—"देखो जी, अब देर न करो। रमजानी से इसका तावीज करा दो। यह तो आदमी तो आदमी, भूत-प्रेतों से भी छेड़खानी करने लगा है। गये दिन पीपल तले घड़ा......"

बाप सुने बिना कहता—"फूट गया होगा। पत्थर चोट का शौक है। लग गया होगा पत्थर। तुम इन जरा-जरा सी बातों को लेकर दिमाग न खराब किया करो।"

ऐसे ही एक दिन सन्ध्या के समय की बात है। पटवारी चौपाल में बैठा था और पटवारिन घर का दीया बाल रही थी। तभी गाँव के एक नाई ने घबड़ाते हुए आ कर कहा—"गजब हो गया पटवारी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जी, गजब हो गया ! तुम्हारे सच्चू को तो पीरू के लौंड़े जग्गू ने मार ही डाला। बस राम जो रखें...बचे या न बचे।"

पटवारी की आँखों में खून उतर आया। उसके सच्चू को भी कोई हाथ लगा सकता है, वह यह कल्पना भी नहीं कर सकता था। बस चौपाल के भीतर से वल्लम निकाल कर जग्गू के घर की तरफ भागा।

नाई पटवारिन की खबर करने आया। पटवारिन उसे उम्र का बड़ा जान कर पल्ला करती है। और वह उसे बहू कहता हैं। उसी तरह बोला—"बहू सरबनास हो गया ! तुम्हारे सच्चू के तो प्राणों पर आ बनी !"

पटवारिन के मुँह से घबराहट में बोल भी न निकला। वह घर का दीया जला तुलसी चौरे पर दीया रखने जा रही थी। नाई के आने पर दीया भी आँचल की ओट में कर लिया था। घबराहट में दीया हाथ से छूट गया और आँचल ने लौ पकड़ ली।

नाई का ध्यान उधर न गया। संवाद का काम पूरा करके लौटते हुए बोला—"बहू इन मालियों ने भी अन्त की कर रखी है। जग्गू ने माली का होके पटवारी के लौंडे के पत्थर मारा, अब बस..."

तबतक पटवारिन के मुँह से हाय-हाय निकली : आग से बचने के लिए वह इधर-उधर दौड़ी, पर उससे आग बढ़ती ही गई। नाई की हिम्मत भी आगे बढ़ कर बुझाने की न पड़ी। आग ने बढ़ते-बढ़ते बालों तक को पकड़ लिया।

पटवारिन से अब न सहा गया। वह लपक कर आँगन के कुएँ की ओर बढ़ी और धम्म से...

नाई पटवारी को नया समाचार देने दौड़ा। पटवारी थोड़ी ही दूर बढ़ा होगा कि जग्गू के बाप से उनकी मुठभेड़ हो गयी। पीरू गाँव के बाहर से कुछ बेंच-बाँच कर आ रहा था। पटवारी ने उसका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

रास्ता रोक कर कहा—"क्यों वे माली के, तेरे लौंडे की इतनी मजाल है कि हमारे सच्चू पर हाथ छोड़े !"

माली ने मोटी रकम कमाई है। पैसे की पूरी-पूरी ऐंठ है। पटवारी से ज्यादा चाँदी है उसके पास। फिर भी पटवारी से झगड़ना पसन्द न करके बोला—"हो गया होगा झगड़ा, पटवारी जी! बच्चे ही जो ठहरे। उनकी भी भली चलाई, जरा-सी बात पर झगड़ा और जरा-सी बात पर मेल।"

पर पटवारी आपे से बाहर हो रहा था—"तू भी इसे जरा-सी बात कहता है वे माली के! आज तेरे जग्गू के टुकड़े-टुकड़े न कर दिये तो..."

माली की भौंहें भी तन गयीं। कड़क कर बोला—"इतनी तेजी न दिखाओ पटवारी। तुम्हारा दिया नहीं खाते। मेरे जग्गू के टुकड़े करनेवाले इस धरती पर पैदा नहीं हुए।"

पटवारी से अब सहा नहीं गया। माली, और उससे जबान लड़ाये ! बस तैश में आ कर बल्लम सँभाला और चिल्ला कर कहा—"मैं पहले तेरे ही टुकड़े.... !"

बल्लम माली की छाती में खूब गहरे तक घुस गया। वह खून के फव्वारे के साथ चीख मारकर कटे पेड़-सा जमीन पर गिर पड़ा। नाई ने दूर से ही यह देखा और पास ही की चौकी पर खबर देने सिर पर पैर रख कर दौड़ा। रास्ते भर उसके मुँह से सिर्फ एक ही शब्द निकल रहा था—खून ! खून !

थोड़ा ही देर में पटवारी को पुलिस ने हिरासत में ले लिया। पटवारिन आग-पानी से मर चुकी थी ? असल में सच्चू जग्गू का कोई झगड़ा नहीं हुआ था। बाग के किनारे खड़ा-खड़ा सच्चू कह रहा था—"जग्गू आज की रात तेरे बाग के आम तोड़ूगा।" जग्गू

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

ने जवाब दिया था—"आम की तरफ उँगली भी उठायी तो जान ले लूँगा।"

नाई उधर सें गुजर रहा था। गुजरते-गुजरते उसने उनकी बात सुनी और सच्चू को आम के पेड़ पर ढेला मारते तथा जग्गू को सच्चू की तरफ लाठी लेकर दौड़ते देखा। इसके आगे उसने कुछ न देखा। वह भी दौड़ा और पटवारी से जा लगायी, पटवारिन को भी जा सुनाई। सच्चू आम पर ढेला मार कर भाग गया था और उसे भागता देख कर जग्गू जमीन पर लाठी पटक-पटक कर उछल रहा था। असली बात जब लोगों को पता लगी तो हरेक ने समझदार की तरह कहा—"जरा-सी बात से क्या हो गया!"

नाई को सब भला-बुरा कहते हैं। नाई कसमें खा-खा कर अपनी सफाई पेश करता है। उसकी कसमों का विश्वास करनेवाले अन्ध-विश्वासी जिन्होंने सच्चू को सैयद की दीवार पर पेशाब करते, मसान के पीपल का घड़ा फोड़ते तथा बाग के चौराहे की बलि हड़पते देखा था—मानते हैं कि बात फैलानेवाला नाई नहीं, जिन्न था।

अब भी क्या आप इसे जरा-सी बात कहेंगे?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

असत्य का सत्य

मैंने पत्नी से पूछा—लल्लू क्यों रो रहा हैं जी !

उन्होंने कहा—पड़ोस में कहीं खिलौने देख आया है, उन्हीं के लिए रो रहा है।

मैंने बड़प्पन के साथ कहा—खिलौनों के लिए रो रहा है; क्यों लल्लू ?

लल्लू ठिनकता हुआ अपनी माँ की टाँगों से लिपट गया। फिर मुझे तिरछी दृष्टि से देखता हुआ मचलते हुए बोला—आँ, आँ, हम नहीं जानते, खिलौने लेंगे, रेल...मोटर...गाड़ी !

मैंने डपटते हुए कह दिया—नहीं खिलौने-विलौने कुछ नहीं, सब व्यर्थ हैं, मिथ्या है।

बस लल्लू रो पड़ा, साथ ही श्रीमती जी भभक उठीं। बोलीं—तुम्हें तो सभी कुछ व्यर्थ और मिथ्या दीखता है ! बात-बात में बेदान्त बघारते हो। तुम्हें तो संन्यासी होना था, झूठे ही कोठी बँगला घेरे हो।

वे मुझे मीठी फटकार बता कर चली गयीं। मैं सोचने लगा—हाँ वेदान्ती कहते हैं, जगत मिथ्या है, माया हैं। सत्य नहीं, उसका भ्रम है। सत्य तो मात्र ब्रह्म ही है। किन्तु यह ब्रह्म क्या ? शून्य ! बोद्धों का शून्य ! जहाँ कुछ नहीं, वह शून्य ! फिर यही सत्य कैसे ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सोच ही रहा था कि लल्लू की माँ फिर आ धमकीं और समझाती हुई बोलीं—देखो, बच्चों के मामले में यह सत्य-वत्य नहीं चलेगा। वे इस प्रपंच से दूर रहते हैं। उनका सत्य उनके खिलौनें ही हैं। जिस वस्तु के लिये वे जब भी मचल उठें, वही सत्य है।

मैं बँगले से बाहर उद्यान में चला आया, श्रीमती जी के अन्तिम शब्द मस्तिष्क में घूम रहे थे। मालती-कुन्ज की ओर बेञ्च पर जा बैठा तो मच्छर परेशान करने लगे। वहाँ से उठकर फव्वारे के पास चला आना पड़ा। रात्रिकाल था। चाँदनी हँस रही थी और चाँद फव्वारे के कुण्ड में एकत्रित जल की बूँदों पर काँप-काँप कर थिरक रहा था! पवन में मस्ती थी। पर मैं निष्प्रयोजन-सा बैठा सोच रहा था—तो बच्चों का सत्य खिलौने हैं। पर बड़ों के लिये तो ऐसा नहीं। फिर इसे सत्य कैसे मान लें। इसकी व्याप्ति तो अबाध नहीं। वहीं बच्चा जब बड़ा होता है तब उसमें काम का भाव आता है! इस प्रकार उकका सत्य भी बदल जाता है और तब सुन्दर युवती ही उसे सत्य प्रतीत होती हैं।

मुझे अपने विवाह के आरंभिक दिन स्मरण थे। तब मैं पत्नी को ही सब कुछ समझे बैठा था। बहुत दिनों तक मान-मनौवल चला। पर अब वह सब निरर्थक ही जान पड़ता है। यौवन का उन्माद था; और अभी मैं कौन-सा वृद्ध हो गया हूं? इससे क्या, वृद्ध होकर ही कौन-सी कामनाएँ मर जाती हैं।

यह तो और भी विचित्र बात हुई। तो क्या अतृप्त कामना ही सत्य है? समय पर जो भी इच्छा उत्पन्न हो, वही सत्य है। काम ही श्रेष्ठ है!

'काम ही सत्य है' यह बात कुछ ऐसे बलपूर्वक मन में जमी कि मैं निर्विकल्पवत् बँगले में चला आया। मेज पर सुस्वादु भोजन परसा था। यथाशक्ति भक्षण कर जा लेटा। उसी तन्द्रा में निद्रागत हो गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

अगले दिन धोबिन कपड़े देने आयी तो उसके साथ उसका गोद का लड़का भी था। उसके काले-काले फूले गालों पर सूखे आँसुओं की स्पष्ट रेखाएँ बनी हुई थी। मैंने कहा—मालूम पड़ता है कि तुम्हारा बच्चा अभी-अभी रो ही रहा था। क्या बात है ?

धोबिन—सरकार क्या कहूँ, इसकी तो रोने की आदत है।

'रोने की आदत' नहीं यह तो बहकाने की ही बात हुई। सत्य कुछ और ही है। उसी तुक से पूछ ही बैठा—नहीं सत्य कहो ?

कह नहीं सकता कि वह मेरे सत्य से क्या समझ सकी। पर वह जो कुछ जानती थी उसने कह दिया—सरकार दूध तो उतरना बन्द हो गया। रोटी खा नहीं पाता। बस, दूध के लिये भूखा रोता है। इतनी हममें समरथ नहीं कि दूसरे दूध का जुगाड़ कर सकें।

मैं चौंक उठा—भूख से रोता है। क्या यह सत्य है ? नन्हें से बच्चे को भूख सताने लगी ?

धोबिन मैले कपड़े लेकर चली गई। मैंने श्रीमतीजी से कहा—सुना तुमने धोबिन क्या कह गयी। भूख सत्य है, समझी ! हमारा लल्लू खिलौने के लिए रोता है दूध तो उसे मार-मार कर पिलाया जाता है। पर धोबिन के लड़के की पहुँच अभी तक खिलौनों तक नहीं हो पायी है ! शायद उनके लिए भी रोता हो, पर जब भूख लगती है तब उन्हें भूल जाता है। उसका एकमात्र सत्य 'भूख' है।

वे बिगड़ उठीं—तुम्हारी तो आदत हो बिगड़ गयी। रात-दिन सोचना ही सोचना। भला निकम्मा सोचना भी किसी अर्थ का ? व्यर्थ शरीर सुखाना और मन ही मन गलना।

पर मैं कहता गया—नहीं हमें जानना ही चाहिए कि इस कटु सत्य का अनुभव बच्चे को अभी से क्यों होने लगा। इसमें किसका दोष है, समाज का या अन्य किसी का।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

वे बोलीं—समाज़-वमाज कुछ नहीं, सब अपना-अपना भाग्य है।

मैंने विरोध किया—नहीं यह तो टालना हुआ। अदृष्ट पर मेरी आस्था ही नहीं ?

श्रीमती जी ने उत्तर दिया—शून्यवादियों की आस्था कभी किसी पर हुई भी है, तुम्हारा ही क्या ? ठीक वेदान्ती से स्थूल भूत-वादी होते भी देर नहीं लगती। कभी उन आनन्द-वादियों से हो जाते हो जो दृश्यमान स्पन्द जगत् को ही सब कुछ मानते हैं।

मैंने योग दिया—हाँ सोचता हूँ कि जिसका मन के योग द्वारा सभी इन्द्रियाँ पृथकशः अनुभव करती हैं, वह दृश्यमान, अनुभूयमान जगत मिथ्या कैसे ? पर ये इन्द्रियाँ भी तो भंगुर हैं, बिलकुल नाश-वान् ! फिर नश्वर के द्वारा अमृतकी उपलब्धि कहाँ ! कुछ भी हो, खाने को नहीं मिलता तो पेट काटने को दौड़ता है। इसके लिए दुनिया सब कुछ करणीय-अकरणीय करती है। भूख ही से सारा संसार भिड़ रहा है। समस्त सृष्टि जिस चक्र के साथ घूमती है वह सत्य नहीं तो क्या ?

पर कोई समाधान न हुआ। मेरे विचारों की अनर्गलता और भ्रामकता नष्ट न हो सकी। हाँ भूख अधिक सत्य जान पड़ रही थी। बहुत दिन बीत गये। धोबिन भी कपड़े देने न आयी। इधर मैले कपड़ों का ढेर लग रहा था। सोचा बीमार हो गयी होगी। इस बार मैंने उसके बच्चे को ढेर से खिलौने और मिठाई देने का निश्चय किया था ! सोचता था, इस सबसे वह कितना प्रसन्न होगा। उसे आनन्दित देख उसकी माँ निहाल हो उठेगी। तो फिर यह अनुभूयमान आनन्द सत्य नहीं तो क्या काल्पनिक आनन्द सत्य होगा ? नहीं साक्षात् अनुभव को सांसारिक कह कर टाला नहीं जा सकता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

बहुत दिनों बाद धोबिन आयी। देखने में पहले से आधी लग रही थी। गोद का बच्चा भी साथ न था। मैंने पूछा—बड़े दिन लगाये, बीमार पड़ गयी थी क्या ?

सहसा उमड़ आये आँसूओं के साथ वह कह उठी—मुझे तो बीमारी भी नहीं खा पाती सरकार !

मैं चकित था। पूछा—बच्चा नहीं आया। मैंने उसके लिये बहुत कुछ मंगा छोड़ा है। मिठाई खिलौने...

मैं कहते-कहते रुक गया। धोबिन का मूक क्रन्दन जता रहा था कि अब उसके बच्चे के लिए किसी भी सम्पदा की जरूरत न थी। मैं घबड़ाया-सा कह उठा—धोबिन, तो क्या बच्चा पूरा हो गया। आः क्या भूख से मरा ? दूध न पा सकने के कारण मरा ? बोलो धोबिन क्या हुआ था उसे।

वह रोती हुई कह गयी—बीमार पड़ गया था सरकार ! बस फिर उठा ही नहीं। घर से निकली तो मिट्टी ही। छोटी-मोटी दवाइयों से तो कुछ हुआ नहीं, और बड़ी दवाइयों के लिये पैसा न था।

एं यह क्या ! पैसे के कारण इलाज ही न हो सका ? पैसा होता तो बच्चा बच जाता। पैसा इतना बड़ा—यह कैसा सत्य ? फिर भूख ! भूख तो पैसेवालों को भी लगती है तो कौन सत्य ! भूख या पैसा ? गोरख-धंधा है। इस दुनिया में मनुष्य का जीवन और उसकी आवश्यकता ही सत्य है। मरने पर जो उसके लिये व्यर्थ हो जाता है वह असत्य है। तो सब सत्य हैं, सब असत्य है !

मैं जीवन में परम सत्य को खोज रहा था। सत्यों की नुमाइश-सी लगी थी। नहीं तय कर पा रहा था विवेक कि सत्य-असत्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

क्या है ? सोचता—काम सत्य है, भूख सत्य है, मृत्यु सत्य है, मोह सत्य है। फिर भी...?

धोबिन ने गट्ठर सम्हाला और आँसू बहाती चल पड़ी। मैं सोचता रहा—यह अब किसकी प्रेरणा से चालित हो रही है। मोह या भूख! कुछ भी हो, भूख ही सत्य है। मृत्यु को दुर्निवार जान कर भी यह जो अथक परिश्रम कर रही है, पेट के लिये ही न! संसार को माया और मिटनेवाला जान कर भी जो जीवन से लड़ रही है, पेट के लिये ही हैं। बस सत्य भूख है या मृत्यु।

पर मृत्यु को कैसे मान लें। मानव ने अभी आशा छोड़ी ही कहाँ, वह तो अभी भी जीवन और मृत्यु से लड़ रहा है। भूख के बल पर लड़ रहा है। उसका जीवन संघर्ष है और उसकी शक्ति भूख!

लल्लू मेरे ही पास खड़ा था। मैंने पूछा—लल्लू भूख लगी है क्या? बोलो क्या खाओगे।

लल्लू ने अपनी-सी कही—नहीं हमें भूख नहीं लगी। खिलौने लेंगे हम तो।

मैं पुनः चकित हो कर विचार करने लगा—लल्लू भूख को सत्य मानने को तैयार न था। इसका पेट जो भरा रहता है। तो क्या आवश्यकता ही सत्य है? मैंने मन ही मन कहा—'हाँ आवश्यकता ही सत्य है।' अनुभव ने भी समर्थन किया—आवश्यकता ही सत्य है, मेरे विचार यहाँ जा कर पुनः केन्द्रित हुए। नहीं जानता, कब तक के लिये।

और बस मैं आवश्यकता खोजने लगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

आत्महन्ता

मन्मथ और मनोज दो अभिन्न मित्र थे। मनोज मन्मथ की छाया की तरह साथ रहता, फिर भी कोई न जानता कि मनोज भी कोई है। जिस मनोज को मन्मथ की प्रेयसि रति भी नहीं जान सकी, उसे मैं जान गया; इस पर आप अचरज करें तो मुझे अचरज न होगा! मनोज को मैं कैसे जान पाया, यह फिर बताऊँगा!

मनोज को छोड़ कर सबका विश्वास रहा है कि मन्मथ अजातशत्रु है। कोई उसका द्वेषी नहीं। कोई उसका निन्दक नहीं! उसमें अहंकार नहीं, उसमें स्वार्थ नहीं! कर्म वह योगी की तरह करता है और जीवन का सामान्य भोग भोगी की तरह। वह अभी नवयुवक ही है, फिर भी बड़े-बूढ़े उसका उदाहरण दिया करते हैं! मन्मथ प्रशंसा का अमृत पीकर इतना छका हुआ है कि अब उस की सभी इच्छाएँ संन्यास-सा ले चुकी जान पड़ती हैं। यह बात वह सगर्व कह भी दिया करता है और उसका यह गर्व मनोज को छोड़कर किसी को मिथ्या नहीं लगता।

एक दिन मन्मथ ने मनोज से कहा—तुम मुझमें सदैव लालसाएँ जगाने के लिये प्रयत्नवान हो, पर मैं कहता हूँ कि मैंने जीवन का वह रस चख लिया है जिसके बाद तृप्ति ही तृप्ति है!

मनोज ने हँसी से ताड़ित करते हुए कहा—तुम झूठे हो!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मन्मथ को लोग शिव भी कहते हैं, जिस पर लोक माया का असर ही नहीं होता ! पर मैं जानता हूँ कि मनोज की प्रत्येक बात पर वह बिगड़ उठता है। अपना गुस्सा छिपाने की हर कोशिश उसके गुस्से को और उभाड़ा ही करती है। अपने क्रोध के दमन की मिथ्या चेष्टा करते हुए उसने कहा--तुम सिर्फ बुरा ही देखते हो !

मनोज—जो जैसा है, मैं उसे वैसा हो देखता हूँ !

मन्मथ—तो मैं झूठा हूँ !

मनोज—हाँ, तुम सच्चे नहीं हो ! तृप्ति तुमसे दूर है !

मन्मथ—कैसे ?

मनोज—तुम्हारी इच्छा अभी मरी नहीं हैं !

मन्मथ—मेरी कौन इच्छा मरी नहीं ?

मनोज— कोई भी !

मन्मथ—पर कोई एक !

मनोज—क्या रति मर गई ?

"रति !"—मन्मथ काँप उठा। काँपते हुए स्वर में बोला—तुम बड़े कठोर हो। तुम खिले हुए फुल को सिर्फ नोचना जानते हो। लहलहाती खेती पर सिर्फ पाला बनकर पड़ा करते हो ! रति मेरी आत्मा है ! रति मेरा स्वर्ग है। रति मेरा तीर्थ है। रति मेरी अग्नि है। उसमें मेरे समस्त पाप भस्मसात हो चुके हैं ! अब, मैं प्रणयशेष रति में केवल प्रणय की तृप्ति हूँ।

मनोज अपने अट्टहास से उसे विचलित करता रहा। और कह दिया—तुम कविता अच्छी करते थे मन्मथ ! तुम्हारी कल्पना तो कम से कम भव्य है !

मन्मथ चीख उठा—तुम मेरे कमरे से निकल जाओ मनोज !

मनोज कुर्सी पर और आराम से बैठ गया। और धीरे से हँस कर कह दिया—कहाँ जाऊँ मित्र मेरा आसन तो एक ही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मन्मथ की आवेश में मुट्ठियाँ बँध गईं।

आप मन्मथ को अच्छी तरह जानते रहे हैं ? कदाचित् इसी से मेरा विश्वास नहीं कर रहे हैं। शांत मन्मथ इतना उत्तेजित हो ही नहीं सकता, यह आप का ध्रुव विश्वास है ! ठीक बात है। आप अपने विश्वास की रक्षा कीजिये और मुझ पर वैसे न बिगड़िये जैसे मन्मथ अपने सखा मनोज पर बिगड़ता है ! आपको शान्त रखने के लिये मैंने उस दिन को बात वहीं छोड़ी। आप मन्मथ से मिलने गये होंगे तो उसके बैरागी रहन-सहन से अवश्य ही प्रभावित हुए होंगे ! साथ ही उसने अपने कमरे की दीवालों पर जो वेदवाक्य टाँग रखे हैं, उन्हें आपने अनेकों बार प्रशंसा से पढ़ा होगा ! पर मनोज जाने क्यों उसका भी मजाक उड़ाया करता, उन पर भी व्यंग किया करता !

यह मन्मथ की पूजा का समय था ! वह अपने ध्यान में लगा हुआ था ! मनोज कभी उसकी मुद्रा को देख कर हँस देता, कभी उन दीवाल पर टंगे वाक्यों को। उसके पूजा के आसन पर से उठते ही वह बोला—मन्मथ, तुम जिसे जीवन की सिद्धि समझते हो वह वंचना है ! इससे तुम न यहाँ कुछ भोग सकोगे, न वहाँ कुछ पाओगे !

मन्मथ—अविश्वासी मनोज, तुम केवल संदेह के ही साधक हो !

मनोज—नही, विश्वास मेरा किसी से कम नहीं ! पर मैं झूठ को झूठ मानकर ही विश्वास करता हूँ !

मन्मथ—तुम्हारी दृष्टि इतनी मैली है कि दिन को भी रात समझते हो !

मनोज—हाँ रात को मैं दिन नहीं समझ सकता !

मन्मथ—तुम्हारा हर जवाब उल्टा होता है !

मनोज—सीधी बातों का जवाब ही सीधा हो सकता है !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मन्मथ का धैर्य छूट रहा था! उत्तर में कुछ कहने को उसके होंठ काँप ही रहे थे कि मनोज ने धीरे से कहा—इधर, जरा मेरे पास आकर बैठो मित्र! अच्छा-अच्छी बातें तो अपने बारे में तुम सारी दुनिया से सुना करते ही हो। कुछ अप्रिय बातें मुझसे भी सुन लिया करो!

मन्मथ—उफ, तुमसे छुटकारा नहीं। कहो, क्या कहना चाहते हो?

मनोज—मन में तुम विश्वास रखते हो?

मन्मथ—बुराई की तरह।

मनोज—बुराई तो तुम पूजना चाहते हो?

मन्मथ—तुम्हारा मतलब।

मनोज—तुम्हारी पूजा; दीवालों पर टंगे आदर्श वाक्य...?

मन्मथ—इनसे तुम्हें चिढ़ क्यों?

मनोज—भ्रम से चिढ़ होनी चाहिए।

पर तुमने इधर लिख कर टाँग रखा है—अश्माभव अर्थात् पत्थर बन! यह झूठ की कैसी पूजा है? इन्सान अगर पत्थर बन जायगा तो पहाड़ चलने लगेंगे और घर बना कर रहने लगेंगे। धीरे धीरे उनके नगर बन जायेंगे।

मन्मथ—तुममें प्रतीक को समझने की अक्ल नहीं है। पत्थर इच्छा का निषेध करता है। आदमी इच्छा को छोड़ दे।

मनोज—इससे पहले आदमी को जीवन छोड़ना होगा और तुम्हें रति।

मन्मथ—तुम रति के पीछे क्यों पड़े हो? जानते हो वह मेरी साधना है।

मनोज—जानता हूँ कि वह तुम्हारी हर बात की कसौटी है। तुम्हारे मन के सब झूठ उस पर कसे जाकर छिपे नहीं रह जाते। देखो यह दूसरा झूठ है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मन्मथ—क्या ?

मनोज—तुमने लिखकर टाँग रखा है—'जो सुख शरीर की अपेक्षा रखता है, वह मिट जायगा ! अमर सुख आत्मा की उपलब्धि है !' जिसकी छाया है वह पाप है, मिथ्या है ! जिसकी छाया नहीं, उसे ढूँढ़ो !' यह तुम्हारी अपनी सूझ जान पड़ती है दोस्त ! खूब लिखा....पर अर्थहीन !

मन्मथ—स्थूलता में रहनेवाली तुम्हारी आँखें इसका अर्थ न देख पायें तो किसका दोष ! तुम छाया नहीं छोड़ सके, इसी से सत्य भी नहीं पा सके !

मनोज—तुमने, किसी एक ने भी वह सत्य पा लिया होता तो मैं छाया छोड़ देता ! मैं छोड़ दूँगा छाया मित्र, पर पहले बताओ तुम रति को छोड़ सकोगे !

'रति !' मन्मथ के होंठ हिल कर रह गये ।

मनोज—क्या तुम्हारा प्यार भी स्थूलता से नहीं ! छाया छोड़नेवाले शरीर से नहीं !

मन्मथ—मैंने रति को नहीं, उसके सुन्दर शरीर को नहीं, उसकी आत्मा को प्यार किया है !

मनोज—वह आत्मा कभी देखी है ?

मन्मथ—उसके आचरण में !

मनोज—और वह आचरण किस का विषय है प्यारे !

मन्मथ—शरीर का !

मनोज—और तुम उसी को छोड़ना चाहते हो ! आधार की हिंसा में लगे हो !

मन्मथ—मैं तुम्हारी बातें नहीं समझ पाता !

मनोज—समझते तो हो पर स्वीकार नहीं कर सकते ! एक बात कह दूँ—रति को शरीर से नहीं पा सके तो आत्मा को भी न पा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सकोगे ! जो रस इन्द्रियों से नहीं पाया जा सकता वह भ्रम है ! जो सत्य शरीर को अस्वीकार करता है वह झूठ है ! और इस झूठ की साधना करते-करते एक दिन तुम आत्महिंसा करोगे।

मन्मथ—तब तुम उत्सव मनाना !

मनोज—तब तो रोऊँगा !

मन्मथ—क्यों ?

मनोज—मैं शरीर में विश्वास रखता हूँ। मैं तुम्हारे विना न रह सकूँगा ! तभी पूछता हूँ कि रति को देखने की इच्छा क्या तुममें नहीं होती भाई ! उससे मिलने की उत्सुकता क्या तुम्हें नहीं होती ! बताओ न कि तुम किसे देखना चाहते हो ? तुम किससे मिलना चाहते हो ? क्या आत्मा ? क्या शरीर ? आत्मा को सम्पर्क की इच्छा क्यों ? जो तुझ में आँखे देख पाती हैं, वह छाया है, शरीर है, रति की मांसलता है, उसका यौवन है, पुरुष में प्यास जगानेवाला उसका स्त्रीत्व है।

मन्मथ ने चाहा कि कुछ उत्तर दे ! पर तभी रति आ गई। मनोज जैसे अन्तर्धान हो गया !

मन्मथ का मुख मलोन था ! रति ने आते ही पूछा—क्यों तुम आज उदास क्यों हो ?

मन्मथ ने पूछा—रति, बताओगी कि प्यार क्या है ?

रति मुस्कराई ! उसकी कमल-सी आँखें हास के रस से भर कर मन-मधुप के लिये और भी आकर्षक हो गईं। उसने होठों के बिम्ब खिला कर कह दिया—मैं और तुम ! बस यही प्यार है।

मन्मथ—दूसरों की समझ में यह भाषा न आयेगी !

रति—न समझें दूसरे, तुम तो समझते हो न ?

मन्मथ—फिर भी प्राण !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

रति—दो आत्माओं का मिलन।

मन्मथ—और यह प्यार हो क्यों जाता है?

रति—जब मन्मथ रति को देख लेता है।

मन्मथ—रति नहीं देखती!

रति—दोनों ही देखते हैं! दोनों आकृष्ट होते हैं! दोनों प्यार करने लगते हैं!

मन्मथ ने अनायास ही रति की लम्बी-लम्बी पतली अंगुलियाँ अपने हाथों में ले लीं। पूछा—दोनों किसे देखते हैं! किस की ओर आकृष्ट हैं...किसे प्यार करते हैं?

रति—कहा न कि रति मन्मथ को। मन्मथ रति को! वे ही आकर्षण हैं। वे ही प्यार हैं?

मन्मथ—और आत्मा?

रति की कुंचित लटें पुष्ट कंधों पर से झूल कर वर्तुल उभार लेती हुई गोद में खेलने लगी थी। मन्मथ उनमें उलझता हुआ पुनः अपना प्रश्न दोहरा बैठा—और आत्मा सखि!

रति ने मुस्करा कर कह दिया—वह इन आँखों से नहीं दिखाई देती।

और मन्मथ इन आँखों से हड्डियों को सुन्दर बनानेवाले माँस, मन को मस्त करनेवाले रक्त के उष्ण आकर्षण के अतिरिक्त कुछ नहीं देख पा रहा था! जब रति प्यार के उच्छ्वास-सी लौट गई, तो मन्मथ ने उसके रिक्त स्थान पर कुछ न देख पा कर जब आँखें बन्द कर लीं, तो वहाँ केवल अन्धकार ही रह गया, जिसमें प्रयत्न करने पर भी वह किसी आत्मा का प्रकाश नहीं देख सका! उसका मन आप ही प्रश्न कर बैठा—रति आत्मा है या शरीर! रति छाया है या सत्य! छाया ही सत्य है या...?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

तभी उसे लगा कि सामने कुर्सी पर बैठा हुआ मनोज उस पर हँस रहा है! वह चीख कर कह भी न सका कि निकल जा मनोज !

तब से मन्मथ दिन प्रतिदिन दुबला होने लगा! उसके दुबलेपन का सम्बन्ध आप सदा उस को साधना और तपस्या, त्याग और संयम से लगाते रहे! मैं कुछ और कहूँ तो आप उसके प्रशंसक होने के कारण बुरा मान जायेंगे! अच्छा तो मैं कहानी कहूँ! आप मेरी किसी बात का विश्वास न करते हुए भी कहानी समझ कर सुनते जाइये।

मन्मथ १०००) महीना कमाते हुए भी अभी तक अविवाहित था! रति से उसका प्यार मनोज के अलावा कोई न जानता था, इसी से सब उसे 'साधु-पुरुष' समझकर ही संतोष किया करते थे। अभी वह शरीर और आत्मा की गुत्थी सुलझा भी नहीं सका था कि उसके पास दूर के संबंधी की एक लड़की एम० ए० में पढ़ने वहीं चली आई! उसका नाम कामना था और वह रहने लगी मन्मथ के साथ ही! कामना का रहन-सहन सादा था, पर इच्छाएं उतनी सरल नहीं थीं। मन्मथ के पास आते ही वह घर की स्वामिनी-सी बन बैठी थी और हर एक काम को बड़ी तत्परता से करती! वह तत्परता जैसे कामना के ऊपर चढ़ने की सीढ़ी थी। कामना सुन्दर थी और अपनी सुन्दरता के प्रति असावधान रह कर ही जैसे वह उसका प्रचार किया करती थी!

कामना और मन्मथ को साथ रहते रहते कई मास बीत गये! मनोज उनके बढ़ते हुए मेल का पूरा ख्याल रख रहा था। एक रात मन्मथ को अकेले में पा कर उसने सदा की तरह कहा—कामना सुन्दर लगती है मन्मथ ?

मन्मथ ने चिढ़ के साथ कहा—वह दूर के संबंध से मेरी बहन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मनोज—होगी ! पर मूर्ख मेरा प्रश्न है कि कामना सुन्दर लगती है ।

मन्मथ—मनोज तुम ऐसी बातें करोगे तो मैं तुम्हारी हत्या कर दूँगा !

मनोज—मेरी हत्या; तुम आत्महत्या की भी सोचने लगे ।

मन्मथ—धूर्तता न करो ! मैं तुम्हारे प्राण ले लूँगा !

मनोज—मैं धूर्त ही सही । पर तुम मूर्ख हो ! किसके प्राण लोगे । प्राण लेनेवाले तुम नहीं हो मित्र ! भूलो मत प्यारे कि हमारा जीवन किसी विराट की इच्छा है । हमारी मृत्यु भी उसी विराट की इच्छा है । हम उसकी इच्छा में दखल देनेवाले कोई नहीं । मृत्यु जब आयेगी तो विचार की जरूरत न रह जायेगी ।

मन्मथ—मृत्यु के भय ने तुम्हें दार्शनिक बना दिया ।

मनोज—दार्शनिक ही सही ! जाने क्यों, किसी भी सच बात को तुम रहस्य का रूप दिये बिना स्वीकार नहीं कर सकते । बताओ कायर ! कामना सुन्दर है, यह स्वीकार करने में तुम डरते क्यों हो ?

मन्मथ—मैं डरता नहीं ! मैंने एक ही सुन्दर को देखा है, वह है रति !

मनोज—पर रति की सुन्दरता से तुम्हारा मतलब ? रति के शरीर को नहीं आत्मा को तुमने प्यार किया है ! रति तुम्हारी आत्मा है !

मन्मथ—हाँ, वह मेरी आत्मा है...परमात्मा है ! पापी तुम भागो ।

मनोज—भाग जाऊँगा ! आत्मा का पुण्य तो तुमने ले लिया शरीर का पाप मुझे दे दो । रति की स्थूलता मुझे अर्पित कर दो ! उसकी आत्मा पर तुम अपना प्यार जीवित रखना !

मन्मथ—मुझे पागल न बना डालो ! आज तुम इसी तरह बात करते रहे तो मैं सचमुच ही तुम्हारी हत्या कर दूँगा ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मनोज—उसे मैं विराट की इच्छा मानकर निश्चिन्त हूँ।

मन्मथ—तो तुम चले जाओ?

मनोज—कहाँ चला जाऊँ मित्र! आनेवाला जाता है। मैं तो न आनेवाला हूँ, इसी से न जानेवाला हूँ। फिर अधूरी बात छोड़ कर जा भी कैसे सकता हूँ!

मन्मथ—पाप, तुम अपनी बात पूरी करो और भागो!

मनोज—मन्मथ, पुण्य के छल में तुम गिर रहे हो? तुम्हें गिरते छोड़ कर मैं कैसे भागूँ। प्यारे, रति को आत्मा समझो तो समझो; पर उसके शरीर को न भूलो! अपने शरीर को न भूलो। आत्मा को आत्मा से प्यार करो! शरीर को शरीर से प्यार करो! प्यार के फल में बीज भी हैं, रस भी। तुम एक को भुला देते हो, फिर भी अपनी सिद्धि को पूर्ण समझते हो! रति यदि तुम्हारी तृप्ति है तो तुम अतृप्त बने रहो। प्यार की पूर्णता इसी में है। और अपनी अतृप्ति के समाधान के लिए रति के शरीर को अपने शरीर से प्यार करो।

मन्मथ परेशानी के साथ अपने स्थान पर से उठ खड़ा हुआ। विचलित स्वर में बोला—तुम नहीं जाते तो मैं जाता हूँ। अब मेरे पीछे न आना।

मनोज—पर उधर कहाँ चले।

मन्मथ—कहीं भी।

मनोज—तुम ऊपर जा रहे हो!

मन्मथ—हाँ!

मनोज—ऊपर कामना का कमरा है!

मन्मथ—चुप रहो।

मनोज—तुम्हारा शरीर काँप रहा है!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मन्मथ—तुम बराबर मेरे पीछे आ रहे हो! देखो और आगे मत बढ़ो!

मनोज—ऊपर स्थूलता बैठी है! ऊपर छाया है! ऊपर तुम्हारे शब्दों में मिथ्या है—शरीर है! तुम अपने प्यार से शरीर में न रम कर अन्यत्र रमने जा रहे हो?

मन्मथ—ओ: तुम चुप भी नहीं रह सकते!

मनोज—बहुत चुप रहा! बहुत दिनों से देख कर चुप रहा!

मन्मथ—तुमने क्या देखा! बताओ क्या देखा? लो मैं ठहर गया! बताओ क्या देखा? अपनी बात पूरी कर लो मित्र और मेरा पीछा छोड़ो। मुझे जाने दो।

मनोज—तुम प्यार में शरीर पाने का साहस न कर सके। अब पाप में उसे खोज रहे हो;

मन्मथ—मैं प्यार को कलुषित नहीं कर सकता!

मनोज—प्यार की मृत्यु कर सकते हो! शरीर की वितृष्णा में अन्धे तूने कभी जाना ही नही कि बिना प्यार शरीर का भोग पाप है। प्यार ने ही उसके भोग को पुन्य बनाया है। उसी से तू परांगमुख है।

मन्मथ—तू अधम है! मुझे किसी के शरीर का आकर्षण नहीं!

मनोज—कल रात तुम क्या कर रहे थे;

मन्मथ—क्या?

मनोज—कामना का सिर तुम्हारे वक्ष पर था!

मन्मथ—वह दुःखी थी! वह रो रही थी।

मनोज—और तुम्हारा वक्ष उसे सान्त्वना दे रहा था। तुम्हें रोमांच करुणावश हो आया था। तुम्हारा रक्त वेदनावश उष्ण हो चला था? और कामना, कदाचित् तुम्हारी सहानुभूति से कृतार्थ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

होकर आँसुओं में भी हँस रही थी, जिसे सिर्फ अंधकार ही देख रहा था।

मन्मथ—कामना एक अनाथ लड़की है। मैंने उसे आश्रय दिया तो तुम्हें पाप लगा।

मनोज तुमने शरीर को आश्रय दिया और उसने शरीर की खोज में भटकती हुई तुम्हारी आत्मा को आश्रय दिया। तुम धरती पर रहे। पर तुम्हारा प्यार आकाश का नक्षत्र हो गया। तुम वञ्चक हो मन्मथ।

मन्मथ से मनोज के सामने न ठहरा गया। वह मुड़कर तेजी से सीढ़ियों पर चढ़ने लगा और चढ़ते-चढ़ते जब रुका तो कामना के कमरे के दरवाजे पर! कमरा दूसरी मंजिल पर था! किवाड़ और खिड़कियाँ खुली थीं। अष्टमी के चाँद की फीकी-सी चाँदनी चोर सी-सहमती कमरे में घुस रही थी! कामना असंयत-सी खाट पर रूपकी ढेरी-सी पड़ी थी। वसन शिथिल, केश श्लथ। 'कामना सुन्दर है'—मनोज ने मन ही मन कहा। उसने खिड़की से बाहर आसमान मे नजर डाली! शुक्र नक्षत्र अङ्गारे-सा दहक रहा था, उसे लगा—प्यार कुछ ऐसा ही है, जो आकाश में ही शोभित रहेगा। धरती तो देह में पली है। कामना सचमुच धरती है। देह है। सुन्दर है! और रति...रति—आत्मा—पुण्य-प्रकाश....

तभी मनोज ने धीरे से कहा—देह की आसक्ति।

मन्मथ चीख उठा—तुम यहाँ भी चले आये!

मनोज—चीखो मत मूर्ख! कामना जाग जायेगी। उसका सोते रहना ही श्रेयस्कर है।

मन्मथ—मैं तुमसे छुटकारा चाहता हूँ। मेरा पीछा न करो न करो मनोज! सच...सच मैं तुम्हारी हत्या भी कर सकता हूँ। तुम मेरे लिए असह्य हो उठे हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मनोज—रति के शरीर को भी प्यार करो, उसे हत्या ही नहीं देह भीं समझो, उसे पुण्य नहीं कर्त्तव्य भी समझो, उसे प्रकाश ही नहीं छाया भी समझो, बस मैं सत्य हो जाऊँगा।

मन्मथ—तुम साक्षात पाप हो !

मनोज—और तुम छिपे पाप। अति भयानक। दूसरों के लिये नहीं अपने लिये भी अति भयानक !

मन्मथ—उपदेश न दो। लौट जाओ !

मनोज—आओ हम साथ ही लौटें। कामना जाग गई है। अब रुकना ठीक नहीं।

कामना—मन्मथ।

मन्मथ—हाँ !

कामना—मैं बड़े बुरे सपने देख रही हूँ। मुझे अकेले भय लग रहा है। तुम आ गये मैं बच गई।

मनोज—पर मन्मथ तुम न बचोगे।

मन्मथ—फिर पाखण्ड मचाया। तो तू यों न मानेगा। अच्छा ठहर। तेरी मृत्यु मेरे ही हाथों लिखी हैं।

मनोज—आतमहत्या न कर मित्र।

मन्मथ—अब भय न दिखा। कामना ठहर। पहले इस धूर्त्त से छुटकारा पा लूँ। इस खिड़की से ढकेल कर इसका अन्त कर दूँ।

कामना मन्मथ की वह हिंसावृत्ति देख कर चीख के साथ बेहोश हो गई। उसकी चीख के साथ ही एक देह खिड़की से नीचे गिर कर जीवन से वंचित हो गई।

अगले दिन सुबह होने पर मन्मथ के हितैषियों को उसकी मृत्यु का पता लगा। मामला साफ आत्महत्या का था। कारण कोई कुछ न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जान सका। मन्मथ की आत्मा रति भी न जान सकी। आत्मा होकर शरीर के लिये रोई। कैसी माया!

और अब मैं आपको मन्मथ के अभिन्न सखा मनोज के बारे में भी बता दूँ। उसका परिचय मैंने मन्मथ की डायरी से पाया था। डायरी के उन पन्नों, से जिनमें उसके जीवन का अन्तर्द्वन्द्व अङ्कित था। अन्त तक मन्मथ अपने मन की सच्ची इच्छा न जान सका और बंचना के मार्ग से बढ़ते-बढ़ते मृत्यु का हो गया। पर वह मनोज आज भी नहीं मरा। वह हम सबके साथ जीवित है। हमारा वैसा ही अभिन्न सखा है, वैसा ही घोर शत्रु!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पारस-पथरी

सड़क पर पड़े पत्थर की भी कोई कीमत होती होगी, मगर ग़रीब की चाह की तो उतनी भी नहीं। उसी दिन बाज़ार में घूमते-घूमते मेरी बीबी की निगाह अचानक एक ऐसी सादी साड़ी पर पड़ गई थी, जिसे वह अपनी पसन्द की प्यारी चीज़ की तरह ख़रीद लेना चाहती थी। बाजार की दूकान के आगे पहुँच कर शो-केस में टँगी उस सादी धोती पर, जिसकी किनारी में उसके लिये सबसे ज्यादा आकर्षण था, उसके पैर ही जो बँध गये थे। तीन बरस का मुनुआ मेरी गोद में था, जिसके बोझ से मेरे हाथ टूटे जा रहे थे। एक तो गरीब की औलाद होती है हड्डियों का ढाँचा, फिर भी मेरे लिये वह बच्चा जैसे बोझ ही हो रहा था। मैंने अपनी बीबी को रुकते देख कर कहा—'बढ़ो भाई! इस तरह रुक-रुक कर चलोगी तब तो आज हमने अजायबघर की सैर कर ली!'

उसने मेरी उतावली पर गौर किये बिना ही कहा—'आपने यह धोती देखी! मुझे पसन्द है।'

मैं उसकी पसन्द पर बिगड़ कर बोला—'पसन्द की भी भली चलाई। पसन्द तो तुम्हें यह सारी दुकान आ सकती है। पर अब बढ़ोगी...भी!'

फिर भी उसने बढ़ने का नाम न लिया। उस धोती के लोभ में वह इतनी आ गई थी कि उस समय उसमें मेरे स्वभाव की तेजी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

या झुँझलाहट तक को परखने की शक्ति न रह गई थी। वैसे ही चाव के साथ बोली—'देखिये, आपने शायद इसके किनारे पर घ्यान नहीं दिया ! मुझे तो बड़ा पसन्द आया। आप पूछिये न इसकी कीमत ! ज्यादा न हुई तो एक धोती मुझे ले ही दीजियेगा।'

अब मेरी सहनशक्ति सीमा पार कर गई थी। उधर मुनुआ खिलौने की दूकान सामने होने के कारण अपने छोटे-छोटे हाथ बढ़ा कर लपक रहा था। मैंने पहले तो उसे डाँटा, और इसके पहले कि वह किसी खिलौने के लिए माँग पेश करे, उसके एक तमाचा भी जड़ दिया। तमाचा गुस्से में ज़ोर का जा पड़ा। मुनुआ बिलबिला उठा। मैंने रही-सही झुँझलाहट बीबी पर ही उतारते हुए कहा—तुम्हारे साथ बाजार में निकलना भी पाप है। तुम छोटे बच्चों से भी गई गुज़री हो। कोई चीज़ देखी नहीं कि ललच उठीं। पैसे हों तो खरीद क्यों नहीं लेती ? दो-चार दर्जन खिलौने अपने साहबजादे को भी नजरे-इनायत कर दो !'

मैं उन खुशकिस्मत लोगों में से हूँ जिनकी अच्छी बीबीयों ने ही उनको इस जरूरतों की दुनिया में जीवन के साथ जोड़ रखा हो। नहीं तो मैं कभी का गले में फाँसी लगा कर समुद्र में डूब कर मर जाता। बम्बई जैसे शहर के लिये ८०-९० रुपए किसी घर-गिरस्ती के लिए होते क्या हैं ? मेरी भी यही दशा है। पहले ही हफ्ते में सारी तनख्वाह साफ ! यह तो एक वही थी कि इतने पर भी किसी तरह घर का काम चलाये रखती थी और मेरे विना जाने ही महीना पूरा हो जाता। पर मैं ऐसा था कि सैकड़ों बहाने पैदा कर उस पर बिगड़ने के रास्ते ढूँढ लिया करता। घर में घी नहीं, घी के लिए पैसे नहीं, तो वह मुझे पूड़ियाँ कैसे बना कर दे, या दाल में घी कैसे छोड़े। पर मैं यह सब जानते हुए भी कुछ न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

समझता था फिर भी वह मुझे और हमारे जरूरत भरे जीवन को निभाये जा रही थी।

शौकीन तबीयत या फिजूलखर्च वह थी नहीं। पर जाने आज कैसे उसके मन में यह भाव आ गया था कि जैसे और स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ सज-धज कर घूमती हैं, और अपनी नई-नई चाहों को उन पर हँसी या आँख का जोर डाल-डाल कर पूरा करवाती रहती हैं, वैसे ही मैं बिना कोई और दवाव डाले एक दिन के लिए ही सही, अच्छे कपड़ों में इनके साथ घूम आती! जो भी हो, मैंने उसकी भावना पर गौर किया ही नहीं और अपने तैश में आकर मुनुआ की खामखाह मरम्मत कर डाली। मुनुआ के चिल्लाते ही धोती से उसका आकर्षण हट गया और वह अपने बच्चे की फरियाद पर रँभाती गाय की तरह मेरी तरफ बढ़ी। पर वह बोली कुछ नहीं। मेरी तरफ एक बार देख कर मुनुआ को अपनी गोद में ले लिया और तरह-तरह की बातें बना कर उसे चुप कराने की कोशिश करने लगी। वह भी बातों में आ कर चुप हो गया।

उसकी उस दृष्टि में—अभियोगशून्य दृष्टि में—कौन-सी मार्मिकता थी, यह कोई मेरे जैसा पति ही समझ सकता है। मेरा भी गुस्सा तत्काल रफा हो गया और मन पछतावे से भर उठा। कुछ दूर ही आगे बढ़े होंगे कि मैंने लज्जित स्वर में पूछा—'विमला, तो तुम्हें वह धोती पसन्द आई?'

उसने मेरी बातों का कोई जवाब न देकर, अपनी ही कही—मेरा सिर भारी हो रहा है। आज अजायबघर न जाकर घर वापस जायँ तो कैसा!'

मैंते कहा—'न चलेंगे; पर यह तो बताओ की तुमने उसकी कीमत भी पूछी! मै सोचता हूँ कि कोई खास कीमत न हो तो खरीद ली जाय। इधर दो मोटी धोतियाँ कोई आठ महीने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पहले ला कर दी थी मैंने। और भी तो शायद कुछ नहीं तुम्हारे पास ?'

विमला समझ गई कि मैं उसकी खुशामद कर उसे मना रहा हूँ, और मैंने अपना अपराध भी स्वीकार कर लिया है। बस, वह सिर भारी होने का बहाना भी न कर सकी और मुस्कुरा पड़ी। मैंने बहुत खुश हो कर पूछा—'क्यों, खरीदोगी न वह धोती ? बढ़िया है।'

वह बोली—'जाइये भी। पसन्द आने से क्या होता है ? आप तो खरीदने को कह ही देंगे ! मैं जानती हूँ कि आपका दिल मुझसे भी कच्चा है। पर मुझे तो सारी गृहस्थी चलानी है। फिर महीने का आखीर है।'

सच ही मेरी जेब में कानी कौड़ी न थी। विमला से ही पैसे माँग-माँग कर खर्च किया करता था। फिर बोला—'अच्छा तो विमला, नये महीने में तुम जरूर खरीद लेना। मजाक नहीं, मैं ही खरीद लाऊँगा।'

वह बोली—'हाँ आप खरीद लायेंगे। पहले अपने जूते तो देखिये। कैसे मुँह वा रहे हैं।'

'तुमने भी क्या कही ? मेरी ही मेरी चिन्ता रहती है। नहीं, इस बार तुम्हें मेरी बात माननी ही होगी !'

इतने मे पास से गुब्बारेवाला निकला। मुनुआ की आँखें उसकी तरफ थी। मैंने ताड़ कर प्यार से पूछा—'गुब्बारा लोगे बेटा ?'

पर माँ की गोद में होने पर भी वह मार न भूला था। डर कर चुप ही रहा। मैं हँस पड़ा और एक नहीं दो गुब्बारे खरीद कर लिये। पैसे विमला ने दिये ! फिर हम अजायबघर भी घूमे। दो आने मूँगफलियों में खर्च कर हँसी-खुशी घर लौटे, पर मेरा मन उसी धोती को खरीदने की योजना में बराबर उलझा रहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उस दिन मैंने सोचा था कि इस महीने की तनखाह आने पर सबसे पहले वही धोती खरीद कर ला दूँगा ? तनखाह मिलने में दो-चार रोज की ही देरी थी और मैं इसी बीच उस धोती की कीमत जो सौभाग्य से अभी तक शो-केस में ही थी, पूछ आया था। इस बात की मुझे निहायत खुशी थी कि कीमत सिर्फ पाँच रुपये थी। फिर भी इन पाँच रुपयों को पा लेना मेरे लिए मामूली बात न थी।

दिन बीते, तनखाह आई और अगला-पिछला चुकाने में सारी रकम खत्म हो गई। मेरा कायदा था कि मैं सारी तनखाह ला कर विमला के ही हाथ में रख देता था और फिर एकाएक पैसा जरूरत बता कर ही उससे ले पाता। इस बार मैंने रुपये देने के साथ ही उससे पाँच रुपये की माँग की। इस पर वह चौंक कर बोली—'पाँच रुपए ! क्या कीजियेगा ! देखिये, अभी इतना उसका देना है और इतना उसका। फिर अभी पूरे महीने का खर्च सिर पर है। इसके अलावा आपको जूता भी चाहिये। आप, इन फटी चप्पलों में जाते हैं, पर शर्म मुझे लगती है।'

मैंने हँस कर कहा—'शर्म तो मुझे भी तुम्हें फटे-पुराने मैले, मामूली कपड़ों में देख कर लगती है। क्या तुम्हें किसी अच्छी धोती की जरूरत नहीं ?'

'जाइये भी ! ऐसी मैं कौन नंगी बैठी हूँ, और कौन मुझे दफ्तर जाना होता है। मैं समझ गई, आप पाँच रुपए किस लिये माँगते हैं। जाइये, एक पैसा भी नहीं मिलेगा।'

और सच ही मुझे एक पैसा न मिला। वह किसी तरह भी अपनी ज़रूरत को जरूरत मानने को तैयार न थी। मुझे अपनी विवशता और उसके त्याग को देख कर रोना आता था। अपने आँसुओं को उससे छिपाने के लिए ही मैं बाहर चला आया। मुनुआ दरवाजे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

के पास ही धूल-मिट्टी में खेल रहा था। मैंने उसकी ओर कोई ध्यान न दिया और चुपचाप घर से बाहर सड़क पर चला गया। सड़क पर आ कर इधर-उधर देखा और फिर जिधर मुँह उठा, उधर बढ़ चला।

शाम का वक्त था। आफिस से लौटा ही था कि इतनी बातें हो गईं। फिर मुझसे घर में रुका भी नहीं गया। भूखा-प्यासा, भारी-दिल और भारी-दिमाग से पैरों को घसीट-घसीट कर बढ़ता रहा। उस समय मेरे दिमाग में कुछ खास ढंग के ख्याल चक्कर खा रहे थे। जब मैं किसी दम्पति को बन-ठन कर अपनी बगल से गुजरते देखता, या किसी की कार के उड़ाये धूल-धक्कड़ में छिप कर रह जाता—तो अपनी बेबसी, मजबूरी, अभाव और जरूरत के बारे में सोचने लगता। सोचता कि ये कारवाले भी आदमी ही हैं। इनकी बीवीयाँ भी मुझ जैसे गरीबों की बीवियों से ज्यादा खूबसूरत नहीं। इनके शरीर पर माँस चढ़ा हुआ है और धब्बों को रंग-पोतकर छिपा रखा है। मेरी बीवी, जो वैसे ही खूबसूरत और स्वस्थ थी, जिन्दगी की जरूरतों से घुलती जा रही थी। आह! क्या वह शादी के पहले भी इतनी पीली, इतनी दुबली और इतनी ही उदास थी?

इस ख्याल के आते ही मेरे दिमाग में उस दिन का उस का चित्र छा गया, जब वह मेरी कल्पनाओं से भी सुन्दर, आशाओं से भी आकर्षक बन कर मेरे जीवन में स्वर्ग का सुख और सौन्दर्य भरने आई थी! उसने मुझे वह सब कुछ दिया जो कि मैं उससे चाहता था, सुख भी, तृप्ति भी। पर मैं उसे वह न दे सका, जो कि मेरा कर्त्तव्य था। उसने आते ही घर का सारा काम अपने सिर पर ओढ़ लिया। अपने सुन्दर कोमल हाथों की रोटियाँ सेंक-सेंक कर और बर्तन मांज-मांज कर काला और कुरूप बना डाला। जाड़े, गर्म,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

बरसात सभी में एक ही तरह नंगे पाँव फिरते रहने की वजह से उसकी ऐड़ियाँ फट गई, पंजे फैल गये और यही था वह सारा सुख, जो मैं उसे दे सका।

आज मुझे अपने ऊपर रहम भी आता है और झुँझलाहट भी। जब यह भार सम्हालने की मुझमें ताकत ही न थी, तो मैंने सादी ही क्यों की? मुझे क्या हक था कि किसी एक की जिम्मेदारियाँ खुद ओढ़े विना अपना सारा भार उस पर झोंक दूँ? इसी तरह सोचते-सोचते मैं यहाँ तक बढ़ गया था कि इस जीवन से मौत ही अच्छी! विमला अगर मर जाये तो उसे सुख मिले! नहीं तो मुझसे उसका कुछ न होगा। चक्की पीसती रहेगी, चूल्हे में जलती रहेगी—ऐसी कि न उफ करेगीं न धुँआ उठेगा!

इसी तरह सोचता हुआ मैं सड़क के कंकड़-पत्थरों को आँखों से टटोल-टटोल कर बढ़ रहा था। उस समय मुझे हजारों ऐसे किस्से याद आ रहे थे, जो कंगालों के बादशाह वन जाने के थे। मैं भी सोचता था कि आज मुझे कोई ऐसी ही चीज मिल जाये, जो मुझे राजा बना दे, तो कैसा? सोने की डली से बढ़ कर मैं ख्याल ही ख्याल में पारस-पथरी तक जा पहुँचा। और जब मैं इस तरह पारस-पथरी के अचानक पा जाने की कल्पना कर रहा था, मुझे ऐसी कहानियाँ याद भी आये बिना न रहीं, जिनमें भाग्यहीनों के छूते ही सोना भी कोयला हो जाने के दृष्टान्त थे।

इसी तरह उधेड़-बुन में चलते-चलते मैं एक पार्क तक जा पहुँचा। शरीर कुछ थक-सा रहा था, इसलिए वहीं एक पेड़ के नीचे जाकर घास के बिछौने पर पैर फैला दिये। एक क्षण के लिए धरती की सेज ने बड़ा सुख दिया और मैं उस सुख को सदा बनाये रखने के लिए उसी हालत में अपनी मौत माँग बैठा। पर मौत न मिली, चिन्ता जरूर बढ़ती गई। मैं किसी भी हालत में पाँच रुपये पा लेना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

चाहता था। कोई यार दोस्त भी ऐसा न था, जो माँगे से पाँच रुपए दे दे। बेचारे गरीब के दोस्त भी तो गरीब ही होते हैं !

गरीब की एक मामूली-सी चाह थी, वह भी पूरी नहीं हो रही थी। बेचारा गरीब अपनी चाह को पूरा करने के लिए भीख माँगने से लेकर चोरी तक सब कुछ कर डालना चाहता है। पर चोरी के ख्याल के आते ही पुलिस, अदालत, जेल और इन सबके पीछे हुकूमत का जोर आँखो में भय बन कर छा गया। गरीब बेचारा इस ख्याल के आते हीं काँप कर रह गया। उसने साफ महसूस किया कि उसके कमजोर दिल में चोरी करके अपनी साध पूरी करने की भी ताकत नहीं, जब कि जोर पर चलनेवाली हुकूमत गरीब की जरूरतों को कतई परवाह नहीं करती। यह सब क्या है और जमाने की रफ्तार में क्या रह जायगा, कुछ समझ में नहीं आता था। सोच और फिक्र में पड़े मेरे दिमाग पर धीरे से कमजोरी की नींद की खुमारी उत्तर आई और मैं कुछ ही क्षणों में चिन्तालोक से स्वप्नलोक में जा पहुँचा। पर वहाँ भी जैसे मेरी दुरूह चिन्ता सोने के पंख लगाये अप्सराओं के भेष में मुझसे बिहार करने मेंरों स्वप्निल पलकों पर उतर पड़ी थी।

मैंने स्वप्न में देखा मैं कर्मयोनि से भोगयोनि में जा पहुँचा हूँ। वहाँ मुझे सुख के लिए किसी तरह की मेहनत-मजदूरी या काम नहीं करना पड़ता। सिर्फ इच्छा की नहीं कि वहाँ सब कुछ तैयार। मधु सिन्धु में माधवी का पान करते हुए किसी मदालसा के साथ विहार करते-करते ही मानों युग क्षणों के समान बीते जा रहे थे, और इन क्षणों के बाद........

सपना तो था; किन्तु न था मधु-सिन्धु, न माधवी, न मदालसा; बल्कि मैं इसी पृथ्वी की कठोरताओं में अभावों की मारी अपनी बीवी की जरूरतों को पूरी करने लिये जैसे एक दिन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

दोपहर में ही निकल पड़ा था। नंगे पैर, नंगे सिर और नंगे बदन किसी ऐसे रेगिस्तान में बढ़ता जा रहा था, जिसका हर बालु-कण जलते हुए सूरज की तरह था ! भयानक गरम लू ने बदन झुलसा डाला था और ऐसी हालत में किसी तरह आँखें खोलते भी न बनता था। फिर भी मैं उसी तरह बढ़ता रहा। घर में पड़ी बीमार भूखी, ंगी बीवी की जरूरतों का मुकाबिला करने से आसान इस समय मानों रेगिस्तान के अन्धड़ का शिकार होना था, मैं जो उन रूरतों को पूरी करने में बार-बार बेकार ही साबित होता था इसी तरह बढ़ते-बढ़ते मेरे बेहोश होकर गिर पड़ने की नौबत आ गई। मुझे मौत का दरवाजा नजदीक ही दीखने लगा और मुझे इस हालत में भी इस बात की ही खुशी थी कि वह दरवाजा सच ही नजदीक है।

गरम अन्धड़ ने मेरे होश-हवाश भी दुरुस्त न रखे थे। इसलिए सामने चमनिस्तान पा कर भी, मीठे और ठंढे जल के सोते तथा मीठे खजूरों के पेड़ देख कर भी मैंने समझा कि मौत आ ही गई और मैं जलती हुई जमीन से उस सोते में इसलिए कूद पड़ा कि मर सकूँ।

उस सोते में कूदने के बाद मैं कितनी ही देर तक महसूस करता रहा कि बस, अब आखिरी घड़ी आई, अब आई; पर कुछ ऐसा हुआ कि मौत ने ही मुझे जिन्दगी के किनारे लगा दिया ! उसी सोते के छिछले जल में मेरे हाथ में पारस-पथरी आ गई, जिसे मैंने जिन्दगी की तरह छाती से लिपटा लिया ! मुझे ख्याल आया कि मैं मर तो इसीलिए रहा था। अब तो पथरी पाकर कुबेर हो गया था मैं ! मेरी सारी जरूरतें अपने-आप मिट गई थीं और मेरी बीबी अपनी साड़ी में टाँकने के लिए आसमान के तारों की भी कीमत चुका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सकेगी, मैं अपने जूते की तली में कोहेनूर लगा सकूँगा। मेरा बच्चा चाँद को खिलौना बना कर खेल सकेगा।

इसके बाद मैंने मीठे-मीठे खजूर जी भर कर खाये। प्यास मिटाने के लिए सोते का ठंढा जल पिया। फिर खजूर खाये, फिर जल पिया और अभावों या जरूरतों की दुनिया से बहुत दूर, आनन्द और मंगल-लोक में उत्सव मनाने लगा।

पर तभी मुझे ख्याल आया अपनी बीमार, भूखी नंगी बीबी का, अपने सूखते बच्चे का, बीबी के लिए उसकी मनपसन्द की साड़ी का, बच्चे के लिए उसके मनचाहे खिलौने का और तभी हिफाजत के तौर पर मैंने पारस-पथरीवाली अपनी मुट्ठी को कस कर बन्द कर लिया। इतना ही नहीं, मुट्ठी को बराबर कसता गया और उसी हालत में अपने घर की तरफ वापस दौड़ा। अब भी वह धूप, वही धुआँ, वही आसमान में तपता सूरज, जमीन पर आग उगलता हुआ रेगिस्तान; पर मैंने किसी एक की परवाह न की। इस समय तो मेरे पैरों के नीचे फूल बिछे थे। आसमान से चाँदनी बरस रही थी, शरीर से मलयानिल लिपट रहा था! मेरे लिए वसन्त था, बहार थी और मैं जवानी के नशे की तरह बढ़ता जा रहा था। पर तभी मुझे बीच मे ख्याल आया पारस-पथरी का। मैंने महसूस किया कि वह हाथ ही में है पर मुट्ठी ढीली पड़ रही थी: इसलिए मैंने मुट्ठी को जी-जान का जोर लगा कर कसा, कसता गया; पर वह ढीली पड़ती गई और मुझे उस अपार अनन्त स्वप्न-मय सुख में भी भयानका आशंका से पीड़ा होने लगी। कहीं हाथ से निकल गई यह पारस-पत्थरी...। कहीं...नहीं। इस 'कहीं' का गुमान भी नहीं कर सकता था। इसलिए मुट्ठी को और कसके बन्द करता गया। जोर लगाते-लगाते मेरे हाथ की नसें तन गई थीं, यहाँ तक कि माथे की भी नसें फूल आई थीं और मैं पसीने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मैं तर-बतर हो कर हाँफ रहा था। इतने पर भी पकड़ ढीली जान पड़ रही थी और पारस-पथरी के इस तरह हाथ आ जाने पर गुम जाने के ख्याल ने मुझे कहीं का भी नहीं छोड़ा था। बस आखिरी वार अपनी सारी ताकत लगा कर मैं 'हाय' कह ही तो उठा!

तभी मेरी खुसारी दूर हो गई—आँखें खुल गईं। मैं रात में मिलती संझा में पार्क की जमीन पर पेड़ की छाया में पास बहती किसी नाली के नजदीक ही पड़ा हुआ सपना देख रहा था। हाथ में मेरे एक कंकड़ था, जिसे मैं पारस-पथरी समझ कर प्राणपण से मुठ्ठी में दाबे था!

स्वप्न का सुख आँखें खुलने पर और भी ज़्यादा कटुता में बदल गया। मेने पास बहती हुई उस नाली को, जो मेरे सपने में मीठे जल का चश्मा बनी हुई थी, उस खजूर के पेड़ को देखा जिसके सपने में मैं मीठे खजूर खा चुका था और उस पारस-पथरी पर भी निगाह डाली जो अब मेरे हाथ में सिर्फ पथरी बन कर रह गई थी।

गरीब का सपने का सुख दो घड़ी भी बना न रहा जब कि मैं उस कंकड़ को अपने आँसुओं से नहलाने के लिए फिर से जरूरत-मन्द और साधनहीन दुनिया की कटु सत्यता में आ फँसा! अब मैं एक क्षण भी वहाँ बैठा न रह सका। अपने बीबी बच्चे की पुकार सुनने के लिए घर की ओर दौड़ा। न सही साड़ी, फिर भी वह मेरा मान रखेगी। न सही खिलौना, फिर भी मेरा बच्चा मुझे 'बाबू' कहेगा। न सही पारस-पथरी फिर भी हम जीते ही रहेंगे। बस मैं उस कंकड़ को जितनी भी दूर फेंक सका फेंक कर घर की तरफ चल दिया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

गूजरी

उसे लोग आवारा समझते थे।

समझने के लिए वह आवारा से कम और अधिक कुछ भी न था। फैशन बना कर सड़कों पर घूमना, सड़क पर के प्रत्येक झगड़े में सब से आगे दिखाई पड़ना और राह चलते किसी से भी तू-तड़ाक कर बैठना उस का व्यसन ही नहीं स्वभाव था।

पर उसे अकेला, हाँ अकेला लोगों ने कभी न देखा था। जब से उस की आवारागर्दी का इतिहास प्रारम्भ होता है तभी से इसके एक साथी की भी कहानी। वे दोनों एक साथ दिखाई देते। साथी का नाम था भोटू।

भोटू काला, डोल-डौल का भयानक पहाड़ी कुत्ता था। वह उस के इशारों से बँधा पर वैसे खुला ही घूमता था। उस ने अपने आदमी साथी को उससे कम कभी न समझा था जितना कि उसने उसे। उस की आँख का इशारा पाते ही वह आदमी क्या और जानवर ही क्या किसी को भी फाड़ डालने का इरादा रखता। जब उस के मालिक का गुदगुदाता हाथ उसकी पीठ पर सहलाता तो उस के कान झुक जाते, पूँछ टाँगों में घुस जाती।

वह मस्ती में आ कर पुकारता…भोटू! और भोटू अपने पिछले पैरों पर उसी के बराबर लम्बा बन कर खड़ा हो जाता। उसके अगले पंजे उस की छाती पर होते। जीभ लपलपाती और आँखे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

वन्य उल्लास से चमकतीं। तब वह भी अपने को कुछ और समझने लगता।

पर यह आदमी और जानवर का जोड़ा इस बस्ती के लिये हाल की ही चीज थी। और इस से पूर्व आवारा भी आवारा न था। लोग उसे भुवनचन्द्र के नाम से जानते और पहचानते थे। वह एक शरीफ और प्रतिष्ठित बाप का सीधा बेटा था।

पर धरती की कौन सिकुड़न कब मर जाती है और कौन कब उभड़ पड़ती है यह स्वयं धरती भी नहीं जानती। अपरिपक्व मानव का मनोविज्ञान भी इसी प्रकार का होता है। जब भोली दुनिया समझ में न आनेवाली अनेक बातों को भाग्य के बहाने समझ लेने या अपने आप को बहका लेने का आँखों-देखा धोखा खेलती है, तब समझदार घटनाओं से चालित और आकस्मिकताओं से परिवर्तित उस मनोविज्ञान को स्वाभाविकता कह कर टाल देता है। किन्तु यह स्वाभाविकता भी भाग्य के छद्म-पूर्ण मायिक आवरण से किंचित भी तो रहस्य में न्यून नहीं। पिता के मरने के बाद से ही वह सीधा लड़का आवारा समझा जाने लगा था। कोई न उसे समझता कि भुवन है। सब कहते आवारा है।

और आवारे के साथी भोटू का आविर्भाव? यह एक कहानी है। भोटू की प्राप्ति का वृत्तान्त और आवारे के मनोविज्ञान की परिचिति।

स्कूल छोड़ देने के बाद उसका काम और सबसे खास काम घूमना या भटकना रह गया था। घर और अपने कार्यों के प्रति वह कभी उत्तरदायी ही न रहा। भाइयों के रहते भोजन की कमी न थी और माँ के रहते फैशन में किसी प्रकार की असुविधा। बस वह भटकता और खूब भटकता। बस्ती में लोगों को घूमना खटकता, भले ही उसने उनकी कभी परवाह न की हो। पर जङ्गलों में कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

न टोकता, भले ही वह टोक का कभी कायल न रहा हो। बस उसे गङ्गा-पार के मझाड़े में घूमने या भटकने में असीम आनन्द प्राप्त होता।

दिसम्बर के दिनों में गंगा को संकोच व्याधि चिपट जाती। वह सूखने और सिकुड़ने लगती। खैर और बेरी के जंगलों में बहनेवाली अपनी धाराओं के आँचल को समेट लेती और तब वह झंखाड़ वन और भी सूखा और उदास लगती। लाली पके बेरों में और हरियाली काँटेदार बेरियों में ही सिमट कर रह जाती। खैर मीठी-मीठी धूप में सूखा किया करता। सूखी धाराओं के पेटे के रेते में धँसे पत्थर और सूखी काई से भूरे तथा स्वच्छ गंगागोटी दाँत निपोरा करते। धूप उन सब पर से हँसती हुई उड़ जाती। हवा को या तो खर के ठूँठ छेड़ते अथवा काँटेदार झाड़ियाँ काँप-काँप कर उसके दामन को थामती या पहाड़ की सूनी कोखें गूँज-गूँज कर अपने हृदय में भर लेतीं! तब पहाड़ की जड़ की किसी खोखल में थमे पानी में सिहरन पैदा हो जाती और तट के रेते की सलवटें उस से अपनी तुलना करने लगतीं। तब पहाड़ की ढालों पर उगी सूखी, भूरी और हरी घास के तिनके थिरकने लगते।

पर वह आवारा संज्ञावाला लड़का इस सब कुछ को भूला और अपने आपमें खोया बड़ी तल्लीनता के साथ बेरियों से बेर चुन-चुन-कर खाता—खट्टे-मीठे, कच्चे-पक्के, कसैले और अधपके सभी। वह इसी कार्य में इतना अधिक मग्न रहता कि यदि उस समय उस से कोई उस का नाम भी पूछ बैठे तो वह यही उत्तर दे कि मुझे मालूम नहीं।

और उसे सचमुच कुछ भी न मालूम रहता! सूरज इतना ऊँचा चढ़ चुका है कि अब आगे बढ़ने पर गिरना ही गिरना शेष है। सूरज ढलता है। उसे प्यास लगती है। और भूख, भूख को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

वह शायद गुलामी ही समझता हो। बस वह नदी का पानी पीता। चुल्लुओं से पीता। पेट भर जाता, इच्छा न मरती और वह चुल्लू चढ़ाता रहता। कोहनियों तक कमीज की बाहें भींग जातीं। ठोड़ी और गले पर से ढुलक-ढुलक कर जल छाती पर से कमीज को तर कर देता। फिर भी वह गोड़ों-गोड़ों जल में खड़ा चुल्लू उँड़ेलता जाता। और कुछ नहीं तो खेल ही सही। समय काटने या नष्ट करने का खेल। आवारों के लिए छोटी-सी जिन्दगी भी बड़ी लम्बी होती है। इतनी लम्बी कि वे उसे भटक-भटक कर ही बिताते हैं। उनके जीवन-यापन में भी एक कला होती है और किसी तरह यापित कर देना या बिता देना ही वह कला होती है। हर आवारा इस में पटु होता है।

और जब वह पानी पीने की कसरत से थक जाता है, तो पैर खींचता हुआ जल से बाहर आता है। काईवाले पत्थर पैर जमने ही नहीं देते, फिर भी वह आगे सरकता ही रहता है। और जब किनारे के पत्थरों पर अनमना-सा बैठता है, तब भी उसे ज्ञान नहीं होता कि पैंट गोड़ो तक पानी, काई और रेते से भंड़ी हुई है। ऊनी मोजे और बूट लथपथ हैं। वह तो पत्थरों पर पड़ी अपनी परछाईं भर को देखता है। देखता रहता है और देखते-देखते ही किसी ऊँचे पत्थर को उपधान बना कमर टेक देता है, पैर लम्बे कर देता है। सूनी साँसें छोड़ता है और सूनी आँखों से धूप भरे नीले सफेद आसमान को देखता है। आकाश की गहराई नीलिमा है। सफेदी हवा पर तैरनेवाले, नीलिमा में गोते लगानेवाले रीते बादल ही तो हैं। पहाड़ी चील हवा से होड़ लगाती हुई सफेद बादल के टुकड़े को पीछे छोड़ सर्राटे-से उड़ी जा रही है। वह उसे देखता है। कैसा आदर्श जीवन! उन्मुक्त जीवन ही उसका आदर्श है। चील अकेली है। कोई साथी नहीं। फिर भी उड़ रही है। शायद सूरज तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पहूँचना है या बादलों से ऊपर उठ कर ही मँडराते रहना है। क्या वह उसी के साथ उड़ नहीं सकती? नहीं, वह बहुत दूर, बहुत ऊँचे एकदम आसमान में है। पर वह जंगल पहाड़ और पानी से बँधी जमीन पर। आकाश में कोई रोक नहीं, कोई टोक नहीं। जमीन पर पग-पग पर रुकावटें और अड़चनें। धरती पर का आदमी आकाश के पंछी की स्पृहा करता है। उस जैसा ही हो जाना चाहता है। वह यह भूल जाता है कि आकाश में चाँद, सूरज और तारे ही घर बना सकते हैं। धूप और चाँदनी ही खेल सकती हैं। हवा ही बराबर उड़ती रह सकती है। शब्द ही आकाश-विवर में पवन-वीचियों पर तैरते हुए शून्य का सामगान कर सकते हैं; आदमी नहीं, पच्छी नहीं, कोई नहीं। उसे ध्यान नहीं रहता कि उस शून्य में उड़ते हुए पन्छी को परछाईं भी अभी-अभी उस पर पड़ी है और वह जमीन पर है। छाया का भी आसरा धरती ही है। पच्छी के पङ्ख जब शिथिल हो जाते हैं तो वह बसेरा ढूँढ़ता है। यह बसेरा बादल या आसमान में कहीं नहीं मिलता। अचरज में खोये पन्छी को धरती पर उतरना पड़ता है। तब किसी पेड़ की शाखा या कोटर अथवा चोटी ही उसका आसरा बनती है। धरती की उपज पेड़ और वह आकाश में उड़नेवाले पच्छी का आसरा! भूख और प्यास लगने पर भी उसे चुग्गे और पानी के लिए आदमी की धरती पर आना ही पड़ता है। आकाश तो निराधार है और भला निराधार में भी कोई ठौर?

सचमुच ही कोई ठौर नहीं! कोई ठौर...जंगल गूँज रहा है। मधुरता ध्वनित हो रही है। वह भी सुनता है और पड़ा-पड़ा ही अनुमान कर लेता है कि यह गूजरों के जमावड़े की सूचना है। गाय-बैलों के गले की घण्टियाँ। आदमी ने बस्ती छोड़ दी और पशुओं के साथ वन में आ बसा। वे पशु भी कृतज्ञ हैं और आदमी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

का अनुशासन स्वीकार करते हैं। आदमी पशु को उपयोगिता का पाठ पढ़ाता है। बस आदमी और पशु की मैत्री हो जाती है और वे जङ्गल-जङ्गल, पहाड़-पहाड़ साथ ही तो घूमते हैं।

वह उठ खड़ा हुआ। उसका साथी कोई नहीं। घर है, माँ, भाई-बहन, भतीजे-भतीजी और भाभियाँ सभी तो हैं, फिर भी अकेला। नहीं, कोई उसका साथी नहीं। ऐसा साथी जो उसकी आवारागर्दी में साथ दे, उसी-जैसा जीवन बिता सके। न वह बँधे, न वह बाँधे और मुक्त जीवन चलता रहे, जंगली साथी। वह उठ कर जंगल में घुस गया। उसके पाँव उसे आप ही आप घने जंगल में उधर ही ले जा रहें थे जहाँ से वह घण्टियों की गूँज उड़ रही थी। उसे बीच-बीच में चरते हुए गाय-बैल मिलते गए और साथ में गूजरों के छोटे-छोटे बालक और बालिकाएँ, सुन्दर स्वस्थ और निर्भीक! पर उसे उनके पास जो कुछ रुचिकर लगा वह था उनका वन्य जीवन! वह उस जीवन का निरीक्षण करता हुआ बढ़ता गया। कही कोई जमींदोज भट्टियों में खैर की लकड़ी के कोयले बना रहा था तो कहीं बड़ी-बड़ी भट्टियों पर रक्खे कड़ाहों में दूध का मावा तैयार किया जा रहा था। गूजरनियाँ बड़े-बड़े मटकों में दूध बिलो-बिलो कर घी निथार रही थीं। उसने सब कुछ देखा और उसे सब कुछ व्यापार लगा। बड़े-बड़े हुक्के पीते हुए गूजर भी बाजार-भाव की बातें कर रहे थे। केवल व्यापार, और इससे उसे चिढ़ थी। आदमी जो अनायास ही पैदा होता है और बढ़ता है, किस प्रकार कृत्रिम उपायों से अपने जीवन को अप्राकृतिक बनाना चाहता है। यहाँ जंगल में पशुओं के साथ रहते हुए भी ये गूजर पूरे जंगली न बन सके। वह उस जमावड़े से दूर हटना चाहता था। वह यहाँ सच्चा साथी ढूँढ़ने आया था जिसकी प्राप्त्याशा मिथ्या हो चली थी। पर घूमते न घूमते उसकी दृष्टि एक जीव पर पड़ गई। क्षण भर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

में ही वह समझ गया कि वह साथी बन सकता है। कितना सुन्दर ! सुन्दर, उसकी भयानकता ही उसकी सुन्दरता थी जिसे वह सस्पृह देख रहा था। उसकी डरावनी आँखें उसे घूर रही थीं और किसी आशंका से सजग होकर वह टूटा ही चाहता था। वह एक पहाड़ी कुत्ता था :

उस कुत्ते को अपना बनाने के लोभ का वह संवरण न कर पा रहा था। उसकी इच्छा हुई कि उसके पास जाकर पूछे कि क्या वह सच्चा साथी बन सकता है। कुत्ते को उसका वहाँ डटा रहना स्पर्धा-सा जान पड़ता था। उसने एक बार भौं की ओर इस पर भी जब उसे वहाँ से टलता न देखा तो आक्रमण कर दिया। उसके कुछ भी सम्हलने के पूर्व ही उसका बाँया हाथ कुत्ते के मुँह में जा चुका था। उसने चुप रह कर ही उसके कीलों की जकड़ का अनुभव किया। कीलें मांसमें गुब चुके थे और रक्त वह रहा था। पर तभी एक गूजर-बालिका की दृष्टि उस पर जा पड़ी थी ! उसने दौड़कर उसे कुत्ते से छुड़ाया।

"तुम यहाँ क्यों आए ? मावा लेने आए होंगे ? घी तो नहीं चाहिए ?"

उसका ध्यान अपने हाथ के घाव पर न था। वह तो सिर्फ उन शब्दों को सुन रहा था जो उस बालिका के मुँह से उसे अच्छे न लग पा रहे थे। वही जीवन के कृत्रिम प्रसंग। वह पुनः कुत्ते की ओर देखने लगा और इच्छा रहने पर भी न कह सका कि मैं तो सिर्फ भटकने आया हूँ।

लड़की कहती गई—यह हमारा कुत्ता है। हमारे जानवरों की चौकसी करता है। भेड़ियों तक को मार डालता है। गुलदार को भी पास नहीं लगने देता। सिह तो इस जंगल में बहुत कम है। मैं न देख पाती तो यह तुम्हें भी फाड़ डालता। तुम्हें क्या चाहिए ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

"हाँ यही कुत्ता।"

वह हँस पड़ी—यह गूजरों का रखवाला है। नहीं मिलेगा, चले जाओ !

वह चला गया। पर घर नहीं लौट सकता था। उसे अकेला जीवन बुरा लगने लगा था। अपने से ऊब कर वह एक साथी चाहता था। साथी उसने चुन तो लिया था, पाना भर था।

वह पत्थर उठा-उठा कर गङ्गा में फेंकता रहा। रेते के टीले जमा किए। वेरियों को हिला-हिला कर खुब झाड़ा और इसी तरह अँधेरा हो गया ! अँधेरे के साथ सूनापन और जाड़ा भी बढ़ता गया। जाड़े कीं उसे परवाह न थी। सूनेपन का समाधान वह कुत्ता था और वह उसी को हस्तगत करने की चिन्ता में था। आसमान का सूना-पन चाँद-तारों ने दूर कर दिया। पेड़ों पर पक्षियों ने बसेरा ले आबाद कर दिया। जल मछलियों से और स्थल जीवों से आबाद था ही। सूनापन था तो केवल उसी के हृदय में।

रात का पहला पहर जा चुका था। चाँद तारों को हतप्रभ कर हँस रहा था। बन उसी की मधुर प्रभा से आलोकित कर रहा था। वह जमावड़े की ओर बढ़ता गया। जमावड़े से कुछ ही इधर एक ऊँचा पेड़ था। वह किसी तरह उस पर चढ़ गया। चढ़ कर उसने इधर-उधर देखा और जैसे ही कुत्ते पर उसकी दृष्टि पड़ी, वह जहाँ-की-तहाँ रुक गई। वह मोह-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। देखते-देखते आँखें अलसा गई और वह दो आड़ी शाखाओं पर उठंग गया। नींद गहरी हो गई और अगले दिन तक के लिए वह सभी कुछ भूल चुका था।

विहग प्रभाती गा-गाकर थक गए। उषा सौन्दर्य लुटा कर लुप्त हो गई। अरुण उज्ज्वल हो गया। गाय-बैलों की घण्टियाँ बज उठीं। दूध दुहा गया। भट्टियाँ चढ़ीं और दूध बिलोने की क्रिया प्रारम्भ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हुई। पर वह न जाग पाया। जब आँखें खुलीं तो नीचे खड़ा कुत्ता भूँक रहा था और बहुत-से गूजर, गूजरिनियाँ और बालक खड़े-खड़े हँस रहे थे। वह चुपचाप पेड़ से नीचे उतर आया। सभी की उत्सुक आँखें उससे प्रश्न-सा कर रही थीं। वह आप ही कह बैठा—मुझे यह कुत्ता चाहिए। दोगे ?

सब हँस पड़े। किसी कड़कती आवाज ने कहा—चले जाओ, पागल।

वह चला आया, फिर भी वहाँ से बिना कुत्ते के नहीं जा सकता था। भूख लगती तो बेर, खाता, प्यास लगती तो पानी से बुझाता। खाँसी बढ़ती गई, दाँत खट्टे हो गये पर उसे कुत्ते के सिवाय और कुछ नहीं सूझा। संझा को उसी टोह में चक्कर लगा रहा था कि उस पर उसी गूजर की दृष्टि जा पड़ी जिसने उसे आज सुबह ही लताड़ा था। उसके पास आकर बोला—लड़के, तुम चोर हो। कुत्ते को ले जाने का हौसला मत करना। मारे जाओगे। हम गूजर हैं और वह गूजरों का कुत्ता है।

उसने कहा—मैं चुराऊँगा नहीं तुम मुझे उसे दे दो। मैं उसे अपना साथी बनाऊंगा।

गूजर हंस पड़ा—अच्छा तो तुम उसे ले ही लेना चाहते हो। पर बदले में क्या दोगे ? कितना रुपया है ?

बदला अर्थात् व्यापार; वह झिझका ! रुपया, उसकी जेबों में हवा भर थी। उसे टल जाना पड़ा।

वहाँ से हट कर वह पुनः गङ्गा-तट पर आकर रेती और पत्थरों के बिस्तरे पर आ पड़ा था। निराश मन और थकित देह कुछ सोच न पा रहा था। सिर उसका पत्थर पर था। पैर जल में पड़े थे और मन उड़ रहा था।

उसने सुना—अरे, अभी नहीं गए ? क्या करते हो ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उसने देखा वही बालिका, जिसने कल उसे कुत्ते से छुड़ाया था, पानी भरने तट पर आई थी। पीछे-पीछे वही कुत्ता था जो उसे अब भी धूर रहा था।

उसने कहा—तुम मुझे अपना कुत्ता दे दो, लड़की! मुझे कुत्ता चाहिए।

मुझे लड़की नहीं गूजरी कहो। तुम इसका करोगे क्या ?

साथी बनाऊंगा।

कुत्ते को साथी ! अरे मुझे साथी बनाओ न !

उसने साश्चर्य उस सुन्दर स्वस्थ षोड़शी को देखा ! अधरों की मुस्कान बता रही थी कि अभी वह जंगली बेल-सी है, जिस पर वासना के पुष्प पुष्पित ही न हो पाए। वह ठगा-सा उसकी ओर देखता रहा। समझ ही न पा रहा था कि एक लड़की एक लड़के का आवारागर्दी में क्या साथ देगी। क्या वे संगी बन सकते हैं ? उसकी आँखों में अविश्वास था। उसकी आँखें, उसकी मुखाकृति स्पष्ट ही घोषित कर रही थी कि नहीं कोई भी लड़की उसका 'साथी' नहीं बन सकती।

लड़की ने कहा— हम साथ खलेंगे। गायों को साथ ही घेरेंगे। तुम मुझे अच्छे लगते हो ! तुम्हारी बातें भी रुचती हैं। और देखो तुम लापरवाह भी बड़े हो। तुम्हारे हाथ का जखम सड़ जायगा। इस पर कुछ लगाओ न। मैं बापू से दवा ला दूँगी ! तुम यहाँ खाते भी होगे भला क्या ? चलो मक्खन से टिक्कड़ खाना। दूध, दही, मट्ठा सभी दूँगी।

पर वह कुछ भी समझ न पाया ! दृढ़ स्वर में यही कहा—मुझे कुत्ता दे दो न !

गूजरी ने चुप रह कर उसकी ओर देखा और देखा भोटू की ओर। फिर उसने घड़ा भरा और कूल्हे पर रख कर चल दी। जब कुत्ता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

भी उसके पीछे-पीछे चला तो उसने स्वर को बाँधते हुए कहा—भोटू, तुम मत आओ ! यह आदमी तुम्हें साथी बनाना चाहता है। उसी के साथ रहो।

शायद भोटू समझ कर ही रुक गया था।

तभी से जंगली भोटू शहरी भुवन के साथ सड़कों पर दिखाई देता था। आवारा और आवारे के साथी से बस्ती का एक-एक बच्चा सुपरिचित था। अब भुवन के लिए कोई कार्य रह गया था तो भोटू के खाने-पीने की फिक्र करना और साथ-साथ लिए घूमना। सुबह उठते ही भाभी से पुछता—भाभी, तैंने भोटू को दूध दिया ?

तुम सब पी लो, भैया, बचने पर उसे भी दूँगी मैं।

भुवन अपना दूध का गिलास लेता और आँख बचा कर सब का सब भोटू को पिला देता। आप बासी रोटियों से पेट भर भोटू के साथ साथ सड़क की राह लेता।

उधर भोटू को उबकाई की बीमारी लग गई थी ! किसी ने भूवन को उसे इन्जेक्शन लगवाने की सलाह दी। बस हर तीसरे रोज अस्पताल में इंजेक्शन लगने लगे। इसके लिए जाने उसने अपनी किस-किस प्यारी चीज को बेच डाला था।

दोनों साथियों में खूब निभ रही थी ! भोटू ने भुवन के दुश्मनों को भी खूब छकाया था। कई एक को तो फाढ़ डाला था। भुवन और उसका साथी भोटू अजेय बने हुए थे।

पर एक दिन भुवन फिर अकेला रह गया। उसका साथी खो गया था। उसने जहाँ-जहां सन्देह हुआ चप्पा-चप्पा छान डाला, रात-रात भर खोज में भटका, कुछ उठा न रक्खा पर बिछुड़ा साथी न मिला। अब उसे सड़कों पर बिना साथी के निकलते भी हया-सी लगती। अब आवारा अकेला नहीं निकल सकता था। जब भोटू ही नहीं, तो कौन साथ दे !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कोई पूछता कि कहाँ है। भोटू ? क्या हुआ उसका ? तो वह भड़का-सा उत्तर देता—मरने भी दो। ले गया होगा कोई साला ! शब्दों में वह अपनी लापरवाही दिखाता, उपेक्षा की व्यन्जना करता पर उसका स्वर, उसकी आँखें और विकृतियाँ स्पष्ट कर देतीं कि भोटू का अभाव उसकी सबसे बड़ी वेदना है।

बस, एक दिन बस्ती से झगड़ा कर वह पुनः जंगल की ओर भागा। अपने रेते और पत्थर के पुराने बिस्तरे पर पड़ा हुआ आसमान की ओर घूर रहा था। आज वह आकर न तो पहाड़ों पर चढ़ा और न जंगल में घूमा था। थकित देह वहीं जा पड़ा था। दृष्टि आकाश में उड़ती रही।

सहसा एक पत्थर ने लुढ़क कर उसकी मग्नता भंग की। उसकी दृष्टि धरती पर उतर आई। उसने देखा गूजरी पानी भर कर लौट रही थी। असावधानी से उसी के पैर से एक पत्थर लुढ़क कर बोल उठा था। आज वह उस अच्छे लगनेवाले लड़के को देखकर भी बिना बोले चली जा रही थी। पर लड़के से चुप न रहा गया। पुकार कर कहा—गूजरी, भोटू को किसी ने उड़ा लिया। अब मेरा कोई साथी नहीं। भोटू भी नहीं ?

गूजरी रुक कर भी नहीं रुकी। वह किसी प्रकार कह गया—गूजरी अब मैं तेरे साथ ही रहा करूँगा। हम गायों को घेरेंगे... ...। गूजरी, मुझे भूख लगी है, दूध, दही, मट्ठा ! सुनती हैं गूजरी......

पर गूजरी ने न सुना। वह ठिठक कर तेजी से बढ़ चली। उसके हाथों, पैरों और गले में पड़े चांदी के मोटे-मोटे कड़े चमक उठे। उनकी चमक कुछ और ही सुना रही थीं। उन कड़े, कड़ूलियो और हँसली को इससे पूर्व उसने उसे पहने न देखा था। वह समझ गया कि अब गूजरी लड़की नहीं रही। इसका कोई और साथी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

बन चुका है। वह उठ कर खड़ा हुआ। गूजरी अब धीरे-धीरे जा रही थी।

उसने पैर बढ़ाया ही था कि पूर्व-परिचित उसी तगड़े गूजर को देख रुक जाना पड़ा। उसकी आँखों में आग थी। कड़क कर कहा—चोर! तू ही भोटू को ले गया। अब फिर आया। जाता कहाँ है?

गूजरी ने उसे देखा, उसकी कटि से घड़ा गिर गया। उसके शब्द सुने, वह उधर ही दौड़ी! प्रहार के लिए हाथ उठा, वह बीच में जा पहुँची—बापू!

बापू ने इतने से जाने क्या-क्या समझा। वह लौट पड़ा। पीछे-पीछे रोती-रोती गूजरी भी लौट रही थी। वह भी खोया-सा भटका-सा, घर की ओर लौट पड़ा था। उसी दिन से वह आवारे से काम-काजी हो गया था। लोग कुछ ही दिनों में आवारे को भूल उसे शरीफ बाप का शरीफ बेटा समझने लगे थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सुख की कब्र

मेरी जो जिन्दगी कभी फूलों से सुगन्धित उच्छ्वास जैसी थी, आज सड़ागंध और बदबू से भर उठी है। सुख और दुःख के इस विशाल फर्क को देख कर लगता है कि उस सुख और इस दुःख में युगों का अन्तर आ पड़ा है! पर बात ऐसी नहीं। कुछ ही वरसों के हेर फेर में दुनिया की उखड़ी-पुखड़ी साँसों के साथ देते-देते यह नौबत आ गई। समझ में नहीं आता कि जिन्दगी क्यों बदल जाती हैं। पर इतना सच है कि जिन्दगी बदलती है और हमेशा बेहतरी के लिए नहीं बदलती, चाहे ईश्वर में विश्वास रखनेवाले लोग उसके लिए हर अच्छे-बुरे को बेहतर समझ कर ही नियामत की तरह अंगीकार करने के पक्षपाती हों।

मैं अपनी वीमार पत्नी की चारपाई के पास बैठ कर इसी तरह जाने क्या-क्या सोचा करता हूँ। शायद मुझे इतमीनान हो गया है कि मेरी बीवी की बिमारी पर दवा से अधिक कारगर मेरी यह चिन्ता ही हो सकती हैं। और ठीक भी है, जब मौत को जिन्दगी में बदल डालनेवाली दवा कुछ पैसों के बिना नहीं खरीदी जा सकती और जेबों में हवा के गुब्बारे के सिवाय कहीं कुछ नहीं, तो फिर चिन्ता का एक नया या पुराना जैसा भी कोई समझे, प्रयोग कर देखने में तो कोई हर्ज नहीं। और मैं जिन्दगी और मौत के झूले पर झूलती—अपनी जान से भी प्यारी बीबी को देख-देख कर सिर्फ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सोचता भर रहता हूँ और मेरा यह सोचना जाने किस-किस राह चलता है कभी बच्चों की परवरिश का ख्याल, कभी अपनी ,राहत की फिक्र, कभी कुछ, तो कभी कुछ। जवानी में ही बूढ़ी हो चली इस दम तोड़ती हुई बीमार औरत से इतने सारे प्राणियों का सुख-दुःख कैसे और क्यों बँध गया, कुछ समझ में नहीं आता।

और समझ में आता ही क्या है? अभी-अभी कुछ देर पहले इस गरीब औरत ने जब दो घूँट जल माँगा था, तब भी मैंने इसी तरह सोचा था। सोचा था कि इसने पानी ही क्यों माँगा, दवा क्यों न माँगी? दवा की तो इसे सख्त जरूरत है और दवा इससे कोसों दूर है। शायद यह हर मरीज को आदत होती है कि जिन्दगी से सब से ज्यादा मोह रखते हुए भी पानी और दवा में से सिर्फ दवा ही चुनता है। मेरी अच्छी पत्नी, मेरे जवानी के नशे की होश, मेरे दिल की आरजू या मिन्नत, मेरे सपनों की रानी और कल्पना-लोक की अधीश्वरी, आज तीन-तीन गरीब बच्चों की माँ, एक गरीब की बीवी, खुद बीमार, मोहताज, बेबस और कंगाल! वह अच्छी तरह जानती है कि जो व्यक्ति उसके पुष्प-सदृश शरीर से सुरभित उच्छ्वासों पर तिरता हुआ अपने प्यार-भार से पुलकित पंखों को कभी थका हुआ महसूस नहीं कर सका, आज वह जिन्दगी की मजबूरियों से बुरी तरह जकड़ कर ऐसा टूट रहा है कि उसकी गिरती-टूटती, झड़ती, सूखी पंखुड़ियों के लिए नवजीवन का बसन्त बन कर आ ही नहीं सकता! वह बेचारा खुद इतना कंगाल है कि वह अपनी प्यारी पत्नी के लिये अपनी जान दे सकता है, पर दवा नहीं—पैसों से खरीदी जानेवाली दवा!

'पैसों से खरीदी जानेवाली दवा' इस एक छोटे से फिकरे में मेरे लिये कितना ज्यादा मर्म था। मेरी बीमार जीवन-संगिनी मोटी सुतली से बुनी झूला खाट पर पड़ी हुई सिर पर खड़ी हुई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मौत की छाया से अपना दामन समेटने की हर एक कोशिश करती हुई साँसों की किस्तें तक अदा करना जैसे भूल-भूल जाती हैं। उसके वे बच्चे जो हमारी जवानी के तोहफे और हमारे बुढ़ापे के समझे जानेवाले या मान लिये गये सहारे थे, जमीन पर इधर-उधर रोड़ों की तरह पड़े हुए भी शायद इसलिये चुप थे, इसलिये रो-रो कर रोटियाँ नहीं माँग रहे थे, या इसलिये किसी चीज के लिए जिद्द नहीं कर रहे थे, क्योंकि वे पूरी तरह रो कर थक चुकने के बाद बेकार फरमाइशों के बिस्तर पर ही आँख बन्द कर आनेवाली सुबह तक के लिए या जब तक कि आँखें न खुलें, बेहोश सुख की दुनियाँ में जा पहुँचे थे।

मैं एक हत्थेवाली टूटी कुर्सी पर बैठा हुआ बीच-बीच में कड़वे तेल के दीये की लौ पर टूटते हुए पतिंगों को देखते हुए भी इस नसीबवाली शमा या बदनसीब परवानों की न सोच कर सिर्फ यही सोचता था कि जो दवा मौत को जिन्दगी में बदल सकती है, उसके भी पैसे ? कैसी हो गई है यह दुनिया जो दम तोड़ते आदमी को देख कर भी यह कहने से नहीं चूकती कि पैसे दो, नहीं तो मुझे मुतलक फिक्र नहीं कि तुम जियो या मरो ! जब ऐसी मतलबी है यह दुनिया, जब मतलब से कोई आगे की चीज ही नहीं इस दुनिया में, तब इस अपनी सरकार, या अपनी सरकार के अपने नुमाइन्दों के मानी ही क्या ? आखिर हमसे ताकत और अधिकार लेकर यह सरकार बनी ही क्यों ? इसकी जरूरत ही क्या थी ? अपने चारों तरफ के इन नज्जारों को देख कर जिनमें जिन्दगियाँ सिसक रही थीं, मौत हँस रही थी, मैं यह मान ही नहीं पाता था, यह सोच ही न पाता था कि इन्सान ने अगर किसी सरकार की कभी कल्पना की भी होगी, तो ज़िन्दगी के लिए, ही जिसे ताकत और अधिकार देकर वह बेफिक्र हो सके और जिसके साए में अपनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जिन्दगी को महफूज समझे, या इतना इतमीनान रख सके कि अगर उसकी सरकार के खजाने भरे पड़े हैं, तो उसे खाली जेबों में भी सुख है। मगर ऐसी हालत में, जब कि उसकी जेबें खाली हों, जनता की सरकार के खजानें भरे पड़े हों और उसे अपनी दम तोड़ती हुई बीवी को बचा लेने के लिए पैसों पर बिकनेवाली दवा की जरूरत हो, जो कि उसे पैसों के अभाव में मिल भी नहीं रही हो, अगर उसका इतमिनान हिल जाये, इन्साफ में यकीन न रहे, हकों की हिफाजत न दिखाई पड़े, तो अचरज ही क्या ? और मैं जीवन के सन्ताप की तरह अब भी किसी तरह जीवित अपनी बीवी को देख-देख कर ऐसी तमाम व्यवस्थाओं और हुकूमतों को कोस रहा था कि जो हुकूमत का मतलब जिन्दगी को सुखी और बेहतर बनाने से नहीं, बल्कि उसे मजबूरियों से भी अपने खिलाफ जबान न हिलाने के लिये समझे हैं।

मेरी बीवी ने फिर जबान हिलाई। होठों ने हरकत की। मुझे भय हुआ कि कहीं इस बार सचमुच ही दवा न माँग बैठे। पर उसने माँगा सिर्फ पानी, जिसने मानो मुझे नई जिन्दगी बख्श दी हो। मैंने उसे चम्मचों से पानी पिला दिया और वह एक बार गमखोर आँखों से मुझे देखकर मुर्दा-की तरह लेटी रही।

मेरे दिल में राहत नहीं थी, मेरी आँखों में नींद नहीं थीं। जरूरतें मजबूरियों से जकड़ी पड़ी हैं। मेरा दम घुट-सा रहा था और जैसे एक बार खुल कर साँस लेने के लिए ही मैं बाहर चला आया था। पर बाहर ही उस बदबूदार मुहल्ले में क्या था, जिसका कि हर गिरता हुआ मकान जिन्दगी से बेजार लोगों का एक गढ़ था, जिसमें मजबूरियाँ जी रही थीं, आफतें पल रही थीं; मुसीबतें बढ़ रही थीं और जिन्दगियाँ—नई और पुरानी जिन्दगियाँ—तबाह हो रही थीं। अपने को किसी तरह तन्दुरुस्त

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

समझनेवाले जाने कितने गरीब बीमार गन्दगी के बिस्तरे पर मजबूरी की नींद ले रहे होंगे ! कितने भूखे बच्चे, भूख में माँ के सूखे स्तनों को चिंचोड़-चिंचोड़ कर भी दूध की बूँद भी न पा सकने के कारण बिलबिलाते-बिलबिलाते सो गये होंगे, और मर्दों की सताई जाने कितनी औरतें या औरतों के ठुकराए मर्द, उन गढ़ों की बन्द दीवारों के बीच अँधियारे को नियामत समझ कर अपने-अपने सिर कोनों में छिपा रहे होंगे। रात के सुनसान में ऐसी जिन्दगियों को सोते देख कर मुझे अपने जागने पर भी तरस न आया। पर तभी नंगे-वदन पर किसी गीली-गीली चीज को महसूस किया ! शायद कोई चमगादड़ ऊपर से पेशाब करती हुई उड़ गई थी। मैंने सोच भर लिया कि चमगादड़ होगी। एक बार गुस्सा होकर उसे कम्बख्त तक न कहा और खुद अपने आपको वदबख्त समझकर भीतर लौट आया।

मेरे मासूम बच्चे अब भी उसी तरह सो रहे थे। मेरी बीबी अब भी मौत की स्याह चादर ओढ़े पड़ी थी। दीये की छोटी-सी लौ अब भी टिमटिमा रही थी। अँधेरे की उस गमी में जैसे वहीं एक जरा-सी खुशी की झलक थी। फूल झड़-झड़ कर बत्ती छोटी होती जा रही थी। तेल कम होते जाने से जल्दी फूल बन रहे थे और मैं सोच रहा था—तेल चुकने से भी पहले बत्ती के जल जाने के बारे में। अपनी बीबी के पास भी मुझसे बैठा न गया। मैं ऊपर से सरकता हुआ दिए के पास ही जा पहुँचा और उसकी लौ के मद्धिम प्रकाश में अनोखी छटा दिखानेवाली, ढेरों किताबों से लदी चीड़ की पट्टियों की मेज पर जा कर बैठ गया। मेज ने जैसे विरोध प्रकट करते हुए एक बार चर्र-चूँ की, पर मेरी बेरहमी से मात होकर उसे चुप हो जाना पड़ा। खाली वक्त काटने के लिए मैंने कुछ किताबों की ही उलट-पुलट जारी की, पर दिल न लग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सका और किताबों को धीरे-धीरे एक-एक करके मेज से नीचे फेंकता गया। मेरे उस समय के किसी भी कार्य या व्यवहार में कोई संगति न थी। चिन्ता से जकड़े हुए दिमाग को कुछ फुर्सत दिलाने के लिए ही कुछ-न-कुछ उठा-पटक करते रहना जरूरी हो गया था। इन्हीं किताबों के बीच मेरे हाथ बरसों पुरानी एक डायरी आ लगी, जिसे छूते ही मैं फिर से कोई दस-साल छोटा हो ही गया।

इस डायरी की जिल्द उखड़ चुकी थी, जुजबंदी हिल गई थी, पन्नों के कोने में ऐंठने पड़ी थी। फिर भी मुझे वह कीमती तोहफे की तरह प्यारी जान पड़ी। उसको पाकर ऐसा लगा कि मैं कब्र में कयामत तक के लिए गड़े हुए अपने सुख तक फिर से आ पहुँचा हूँ।

बहुत पुरानी बात है। हाँ जो सुख सिर्फ याद बन कर ही रह गया हो, उसे पुराना कहना ही ज्यादा अच्छा लगता है। मैं शादी के बाद अपनी नई बीवी को पहली ही बार अपने पास देश से बम्बई लाया था। मिल में एक मामूली-सा नौकर था। कोई ८०-९० तनख्वाह मिलती थी। पर मजे से गुजरती थी। इतने मजे से कि हमारा मजा देख कर तरसनेवालों का या जलनेवालों का मजा किर-किरा हो जाता था। यह बम्बई तब भी काफी बड़ी थी, पर इसके बड़ेपन का आज की-सी महँगाई से कोई सम्बन्ध न था। मैं अपने एक ऐसे दोस्त के मकान में अपनी बीवी को लेकर रहने लगा था, जिसकी पत्नी कुछ ही दिन हुए काफी दिनों के लिए अपने मायके चली गई थी। मैं अपनी पत्नी तारा को हर खुशी बख्श देने के लिए मतवाला-सा बन, अपनी उस छोटी-सी नौकरी और मामूली-सी तनख्वाह के सहारे ही जिन्दगी के सबसे बड़े सुख को पा लेना चाहता था, और शायद पा भी रहा था। मेरे उन सुखी दिनों की गवाही इसी डायरी में बन्द थी, जो आज मुझे एक अर्से के बाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

दिखाई पड़ने के कारण तब से भी ज्यादा प्यारी लग रही थी। प्यारी इसलिये थीं कि वह तारा की फर्माइश थी और तारा की ही पसन्द। उसने कहा था—आज-कल हमारा खर्च बड़ा बेतरतीबो हो रहा है। ऐसे कैसे काम चलेगा। अब हमें कुछ ख्याल करना चाहिए।

उसे यह खयाल बम्बई आने के कई मास बाद या छमाही बाद आया था, पर मुझे तो इससे भी कई मास बाद जबकि मेरी छोटी अक्ल से भी यह छिपा न रह सका कि मेरी पत्नी शीघ्र ही मुझे पिता कहलाने का अधिकार देगी।

शायद कुछ देर के लिए यह अधिकार अच्छा न लगा था। अभी तो हमारे खेलने-खाने के दिन थे। इस तरह जिम्मेदारियाँ बढ़ने लगें तो क्या होगा? और यह तारा, यह सारी-की-सारी तारा, जी अपने सारे जीवन-सहित अभी तक मेरी, केवल मेरी ही है, क्या कल अपने बच्चे की भी उतनी ही होकर मेरे हिस्से को कम न कर डालेगी? पर बाद में मैंने यह मान लिया था कि कुछ भी हो, मुझे उस अधिकार की रक्षा करनी होगी, चाहे सृष्टि का नियम मान कर, चाहे प्रेम की निशानी।

जो भी हो, इसी दौरान में किसी दिन वह डायरी खरीद ली गई थी, जिसमें तारा अपने तारे जैसे खूबसूरत अक्षरों से हिसाब टाँका करती थी। इस डायरी की पूरी-पूरी मर्यादा रखने में कई बार तो वह मुझसे झगड़ तक चुकी थी—झगड़ इसलिए कि मेरा हिसाब सदा से बेहिसाब रहा।

मैं उस डायरी के पन्ने उलटता हुआ, मेज़ पर से उठ कर फिर से तारा की खाट के पास पड़ी कुर्सी पर जा बैठा। जैसे उस डायरी के हाथ में आने पर तारा से मामूली दूरी भी बहुत बड़ी जान पड़ती थी। और क्यों न जान पड़ती, जब कि इस डायरी की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जिन्दगी में मैंने एक दिन के लिए भी तो उसे छोड़ना पसन्द न किया था। जब कभी वह मायके जाने का नाम भी लिया करती थी, तो मैं हँसकर कहा करता था—"तो जा सकती हो तुम! पर इस डायरी का ख्याल भी तो तुम्हें होना चाहिए!" इस डायरी का ख्याल इतना गहरा होता कि जाने की चर्चा ही टल जाया करती थी।

दीपक के उस धीमे प्रकाश में उतनी दूरी से भी मैं डायरी के अक्षर आसानी से पढ़ सकता था, क्योंकि वे मेरी तारा की कलम से उतरे हुए थे। तारा के सम्बन्ध ने मेरे लिए अपने से संबंधित हर चीज को कुछ ऐसा बना दिया था कि मैं उसके नाम से जुड़ जाने-वाली हर चीज से अपना ही आत्मिक संबंध जोड़े बिना न रहता था। फिर तारा के अक्षर उनके बारे में तो मेरी जवानी का दावा था कि मैं उन्हें अँधेरे में भी पढ़ सकता हूँ, आँखें बन्द कर के भी देख सकता हूँ; और अँगुलियों से छूकर भी समझ सकता हूँ। समझ-दारों के लिए हो सकता है कि मेरी ऐसी बातों में कभी कोई सचाई न रही हो, मगर मेरे लिए तो हमेशा थी और आज उस टूटती जिन्दगी के लहमों में तो और भी हो गई है। मैं प्यार भरी, नजरों से अपनी प्यारी तारा के मौत की तरह सर्द पड़े चेहरे को प्यार और भय से देख कर डायरी के अक्षरों से बातें करने लगा।

हमारी यह डायरी जिस दिन खरीदी गई या जिस दिन से हमने हिसाब रखा, उस दिन से शुरू न हो कर बहुत पहले से शुरू हुई थी। ई० सन् ३६ की पहली जून को तारा ने सुन्दर-सुन्दर अक्षरों में दो नाम भर लिख छोड़े थे—एक मेरा और दूसरा उसका अपना। पहले मेरा, बाद में अपना। बिना मेरी सलाह लिए ही उसने ऐसा लिख डाला था। १ जून सन् ३६ हमारी पहली भेंट का दिन था। और मानों तारा इस भेंट को सदा के लिए अमर बना डालने के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

लिए इस डायरी को जरूरी समझ बैठी थी। नामों की इस तरतीब के बारे में उसका मेरा बहुत झगड़ा हुआ। मैं उसका नाम पहले रखने का हामी था जब कि वह किसी भी तर्क या संगति को कबूल न करके अपनी ही करने पर अड़ी हुई थी। आखिरकार मुझे ही झुकना पड़ा।

जब उसके लिखे ये अक्षर पत्थर की लकीर हो गये थे, तो मैंने उससे कहा था—"तारा प्रभु ईसा के १९३६ वर्ष पाँच माह बाद हमने एक-दूसरे में अपने-आप को निमज्जित किया है। हमारे जीवन में यह तारीख किसी भी ऐतिहासिक घटना से अधिक महत्त्व रखेगी।"

उसने सलज्ज भाव से फुसफुसा कर कह दिया था—"ऐसी बातें मेरी समझ में नहीं आती।" जबकि वह यह सब कुछ समझती खूब थी, और न समझती तो खुद बिना सुझाए उस तारीख में ये दो नाम लिखती ही कैसे ?

और उसके बाद के तो बहुत से पृष्ठ खाली थे। फिर तो जाने किस तारीख से हिसाब लिखना शुरू हुआ था। इस समय न तो मुझे यह तारीख ही याद है और न डायरी ही मेरे पास है। पर मुझे यह अच्छी तरह याद है कि उस तारीख में सबसे बड़ा हमारा खर्च कुछ खिलौनों का था। शायद उस दिन हमने सिनेमा भी देखा था, किसी विश्रांतिगृह में चाय भी पी थी और किसी बच्चे के झंगुले के लिए हल्की-सी बढ़िया मलमल भी खरीदी थी। सच ही कुछ ऐसा ही खर्चा था वह।

मैंने चाव से उस खर्चे को पढ़ा और अपनी पत्नी की बीमारी को भूल कर भी उसी चाव से उसके मुँह की ओर देखा। मेरी कल्पना भ्रमित आँखों को उतनी ही, वैसी ही जवान, खूबसूरत, कुछ शोख तो कुछ गम्भीर जान पड़ी और मैं शरीर के लोमहर्ष द्वारा मानसिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कृतार्थता प्रकट करता हुआ उस डायरी को पढ़ता गया। उस डायरी को पढ़ते-पढ़ते जाने स्मृति क्यों इतनी साफ हो गई कि तब का एक-एक दिन मेरी आँखों में सजीव और सुन्दर हो उठा। पूरी तरह मशगूल हो कर मैं उस डायरी का एक-एक अक्षर पढ़ गया था, सच कहूँ तो घण्टों पढ़ता गया और मुझे पता भी नहीं लगा कि रात आधी होने जा रही है। आज सोचता हूँ कि ऐसे पढ़ने में कौन-सा सुख हो सकता हैं? पर मेरा ऐसा सोचना ही गलत है, क्योंकि तब मैंने सचमुच ही सुख पाया था और एक बार फिर से अपने मुसीबत के दिनों से सुख-भोग के रुपहले दिनों में जा पहुँचा था।

तारा ने तो कुछ दिनों तक तो कागज की कीमत की तरफ ध्यान दिए बिना ही तारीखवार ही सब कुछ लिखा था, पर जब उसे वह किताब जैसी मोटी डायरी भी छोटी होती जान पड़ी, तो उसने अपनी तारीखें डाल कर नया सिलसिला शुरू कर दिया था। इस तरह एक बरस की डायरी में ही उसने कई बरस अंकित कर डाले थे; पर ज्यों-ज्यों मैं डायरी को आगे पढ़ता जाता था, मेरा उत्साह ठण्ढा होता जा रहा था। जो डायरी कभी फिजूलखर्च की रोकथाम के लिए सँभाली गई थी, वही अब पर्याप्त रुपया न होने के कारण आवश्यक खर्चों की जगहें भी छोड़े जा रही थी! शुरू की उन तारीखों में क्या न था—तारा की तबीयत कुछ खराब हुई कि फल, दूध, दवा और डाक्टर सभी कुछ तो। शुरू-शुरू में हमने सिनेमा भी देखे, घुड़-दौड़ भी और हॉकी-क्रिकेट के मैच भी। और वही जब हमारा पहला बच्चा हुआ, जिसे हम प्यार से राजा कहते थे और जो हमें अच्छी तरह माँ-बाप के रूप में परखने से पहले ही चल बसा था, तब क्या-क्या खर्च न हुआ था। तारा की हिफाजत में भी और दोस्तों के पेटों को मिठाइयों से भरने में भी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पर मुल्क की गरीबी और महँगाई के साथ-साथ हमारी भी गरीबी और महँगाई बढ़ती गई। जाने कहाँ-कहाँ कैसी-कैसी लड़ाइयाँ हुईं कि जिनका जानलेवा असर हम पर भी बुरी तरह पड़ता गया, जिससे डायरी के आखिरी पन्नों में न तो फलों का खर्च रह गया, न दूध मिठाई का। खेल-तमाशे और सैर-सपाटे के खर्चे भी उसी तरह गायब हो गये। फिर राजा के और भी कई भाई-बहन आये जब कि दोस्तों को मिठाई खिलाना तो दूर, बच्चा और जच्चा की हिफाजत के लिए ही कुछ न किया जा सका। डायरी साफ बता रही थी कि रुपये की कीमत घट रही है, चीजों के दाम बढ़ रहे हैं, जब कि आमदनी उतनी की उतनी है और इस सबके बावजूद हमें जीना है—बढ़ते हुए परिवार को लेकर जीना है।

पर मेरे मन में आया कि क्या यही जीना है ? मैंने बार-बार अपने भीतर के किसी से या आसमान के ऊपर रहनेवाले से पूछा कि क्या यही जीना है। पर माकूल जवाब कोई न दे सका। डायरी के सबसे आखिरी पन्ने तक जाने की मुझे जुर्रत ही न हुई, क्योंकि वे कोरे पड़े थे और उनके कोरे होने का मतलब था खर्चे के लिए पैसों का न होना। सहसा डायरी हाथ से छूट कर फर्श पर जा गिरी। तभी बेहोश-सी तारा ने दवा न माँग कर फिर से पानी माँगा। उसके सूखे गले को दो घूँट जल से तर करने के लिए जब मैं बढ़ा, तो डायरी पर एक पैर पड़ ही गया। बरबस उमड़ी आह के साथ बेबस नजरों से मैंने तारा को देखा, उस डायरी को देखा, जो कि इस समय मेरे सुख की कब्र ही जान पड़ती थी, और जिन्दगी में पैसे की जरूरत को आँसुओं से मिटाने के लिए रो पड़ा!

मैं रोता ही रहा, और तारा फिर से पानी तक न माँग सकी। बच्चे नींद में अभी भी बेहोश थे।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सोने का छत्तर

राधेश्याम !—बूढ़े प्रभुदास ने शैया से उठते ही आँख मलते हुए सदा के अभ्यस्त स्वर में पुकारा। वसन्त का प्रभात था। तारे अभी मलीन न हुए थे। विहगों ने नीड़ों से निकलना प्रारम्भ ही किया था। बूढ़े प्रभुदास को विहग विराव बेहद प्रिय था। वह इस का एक ही अर्थ लेता था कि वे नभचर भी अपने सिरजनेवाले का गुनगान कर रहे हैं। और तब वह और भी उदास स्वर में कहता—राधेश्याम !

पर आज....

प्रभुदास शहर के प्रसिद्ध राधेश्याम के मन्दिर का पुजारी है। मन्दिर की प्रतिष्ठा उसके वैभव के लिए है और वैभव की निशानी युगलमनोहर जो स्वयं छविधाम हैं, उसकी छविमयी मूर्ति का छविमय छत्तर...सोने का और रत्नों से जड़ा, सच्चे मोतियों की झालर से विभूषित। जब वृद्ध प्रभुदास सोलह शिखाओंवाली विशाल आरती से युगलमनोहर राधेश्याम की आरती उतारता, तो भगवान् अपने तेज से उतने तेजोमय न जान पड़ते, जितने आरती की सोलह शिखाओं से जगमगाते छत्तर से। पर प्रभुदास का वह वैभव भगवान् का ही मालूम पड़ता और अपनी अपरिमित श्रद्धा में वह यह भी भूल जाता कि वास्तव में यह वैभव धनमल का है, जिसने पिछली लड़ाई में लोहे का सोना बनाया था, और इस तरह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हजारों मन लोहे का सोना बना लेने के बाद युगलमनोहर के चाँदी के छत्तर को सोने में बदल दिया था। उस की इस भक्ति से भगवान् प्रसन्न हुए कि नहीं, यह तो कोई नहीं जानता; पर बूढ़ा प्रभुदास अवश्य हुआ। तभी उस का सिर श्रद्धा से युगलमनोहर के पादाम्बुजों के बजाय धनमल के मलवर्ण भौंड़े पैरों में झुकता जान पड़ा था। प्रभुदास के मुँह से निकला—इतनी माया और इतनी भक्ति!—भक्ति की इस अनुशंसा में जैसे वह स्वयं माया का भक्त हो उठा था।

प्रभुदास के जीवन के तीन याम यहीं राधेश्याम के चरणों की सेवा में बीते थे। उसका घर कोई चालीस कोस दूर किसी कस्बे में था, जहाँ उसकी पत्नी और पुत्र राधेश्याम रहते थे। राधेश्याम का जन्म बड़ी क्लिष्ट भक्ति के बाद हुआ था। प्रभुदास अपने प्रभु की सेवा में डूबा हुआ अपनी दासी पत्नी की चिन्ता से दूर पुत्र की कामना इन्हीं युगलमनोहर के चरणों में बैठ कर किया करता। उसे भगवान् और पुत्र के बीच में अपनी पत्नी कभी नहीं दिखायी दी, फलतः पुत्र-प्राप्ति की तपस्या दीर्घ...अति दीर्घ होती गयी। वह पत्नी के पास वैसे ही क्वचिद् जाता, जैसे दुष्काल कृषि-पूरित मही को भूले-भटके देख लेता है। और जब दूसरे याम की समाप्ति पर उसकी स्त्री ने पुत्र-रत्न को जन्म दिया, तो प्रभुदास अपने प्रभु की कृपा का इतना आभारी हुआ कि अपने पुत्र का नाम राधेश्याम रख कर, जिसकी माया वह था, जैसे उसी को सौंप कर निश्चिन्त हो गया। वह जन्म पर एक बार अपने पुत्र को देखने अवश्य आया था। और पत्नी के अनुसार उसे अपनी सूरत का पाकर सन्तुष्ट भी हुआ था। बाद में भी कभी-कभी हो आता था, पर अब जैसे उसके जीवन और पालन की कोई चिन्ता न थी। स्वयं राधेश्याम उसकी रक्षा करेंगे, ऐसा उसका अटल विश्वास था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

अब राधेश्याम युवा हो चुका था और प्रभुदास तीन याम पार करके बूढ़ा। उसके युगलमनोहर तो जैसे काल की कालिमा से सर्वथा अछूते थे। इसलिए चाहे मन्दिर की ईंटें बूढ़ी हो गयीं, पर वे अक्षय यौवन ही बने थे। क्षय बेचारे को भी शरण उस त्रिभुवन-नाथ के चरणों में न मिली थी। इसी से उसे गरीबों के घर ढूँढ़ने पड़ते थे।

युगलमनोहर का जन्म प्रभुदास के हाथों ही हुआ था, और जन्म-काल में भी भगवान् इतने ही तरुण थे। नास्तिकों के समान न कहकर यदि शास्त्र के वचनों में कहें, तो वर्तमान सेठ धनमल के पिता रिनमल (लोगों के ऋण का रुपया दीवाले में मारने में निपुण) ने यह मन्दिर बनवाया था। धनमल के जन्म-पर्व पर मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा की थी प्रभुदास ने। धनमल का जन्म भी भगवान् की असीम अनुकम्पा से हुआ था, क्योंकि रिनमल तो अपने घर की लक्ष्मी से विमुख रहकर विश्व की लक्ष्मी के फेर में देश-देशान्तर में व्यापार करते-फिरते थे और उनकी विरह-विदग्धा पत्नी जाड़े की लम्बी और ठण्ढी तथा वर्षा की घन-दामिनी से पूरित रातें पति के वियोग में न जाने किस सामाजिक-असामाजिक न्याय से बिताया करती थीं।

तो स्वयं युगलमनोहर के जन्म का इतिहास रिनमल के स्वयंभू पुत्र धनमल के जन्म के इतिहास से अटूट सम्बन्ध रखता है। ऐसे भगवान् ने अपने परम भक्त प्रभुदास को भी पुत्र देकर जो कृपा की थी, उसमें कृपा से अधिक अपनी ही रक्षा करना अभीष्ट था, यह भगवान् के सिवाय कोई नहीं जानता। पर भगवान् की रक्षा क्या ? उस अक्षय की रक्षा क्या ? क्षय उनसे लक्ष्मी के रहते सर्वथा दूर था, इसीलिए लक्ष्मीहीना के घरों की ओर ज्यादा उसका झुकाव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

था। फलतः भगवान् के चरणों में शरण न पाकर क्षयदेव भगवान् के भक्त की शरण में चले गये थे। प्रभुदास के स्वामी राधेश्याम के बजाय पुत्र राधेश्याम को क्षय हो गया था और अब उसकी हालत ज्यादा खराब थी। यही वजह थी कि आज-कल बूढ़ा प्रभुदास अधिक दुश्चिन्त रहता था।

अतएव उस सुबह जब उसने अपने अभ्यस्त स्वर में नक्षत्रों को देखते हुए 'राधेश्याम' कहा, तो उसकी आँखों में स्वर्ण-छत्रधारी युगल-मनोहर राधेश्याम की मूर्ति के बजाय कंकाल-शेष पुत्र राधेश्याम की मूर्त्ति ही उभर आयी। उसने स्वर को उदात्त करते हुए फिर कहा—राधेश्याम!—पर इस बार दूर से जैसे कोई खाँसा, किसी ने कराह-कर करवट ली, और फिर खाँसा, जोर से खाँसा और उस खाँसने में राधेश्याम की कृपा से अधिक यम का अनुग्रह प्रतीत होने लगा।

वृद्ध प्रभुदास चाहता कि पुत्र की चिन्ता न करे। जिसे त्रिलोक की चिन्ता है, उसे क्या उसके प्रिय पुत्र की चिन्ता न होगी? फिर पुत्र भी उससे अधिक तो भगवान् का था। भगवान् के प्रसाद की तरह ही तो उसे पाया। नहीं, राधेश्याम की चिन्ता व्यर्थ है।

और इस चिन्ता को व्यर्थ सिद्ध करने में व्यर्थ चिन्ता करता हुआ प्रभुदास अपने आह्निक में प्रवृत्त हुआ। उसने भगवान् को जगाया। शैया सँवारी। शयन-मलिन वेष दूर किया। स्नान से उस पुण्यधाम को पवित्र किया। नवीन वसन दिये! और जिस विधि के साथ रिनमल के स्वनाम धन्य पुत्र धनमल को भी जलपान नहीं परसा जाता था, प्रसाद परसा। आरती उतारी और भोजन से लेकर भामिनी तक का भोग एकान्त में करना चाहिए, के अनुसार द्वार पर लटका मखमली पर्दा खींच दिया और स्वयं अपनी उपस्थिति को अनुपस्थिति का प्रमाण देने के लिए नेत्र बन्द कर लिये। भगवान् भोग लगायें। पर नेत्र बन्द करते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

ही दृश्य बदल गया। उसका राधेश्याम अभी भी मलोन शैया पर पड़ा है। नहीं, नहीं, यह घण्टा-घड़ियाल की ध्वनि नहीं, शंख-ध्वनि भी नहीं, पर शंख जैसी ग्रीवा से निकली ध्वनि अवश्य है। राधेश्याम खाँस रहा है, राधेश्याम खाँस रहा है, राधेश्याम बराबर खाँस रहा है...

प्रभुदास ने घबरा कर नेत्र खोल लेने चाहे, पर कैसे खोले? भगवान् भोग तो लगा लें। उधर खाँसी बढ़ रही है। जैसे क्षय हँस रहा है अपनी हँसी। क्षय ऐसे ही हँसता है। खाँसी, विकराल खाँसी, सिर्फ क्षय की हँसी, कोमल हँसी। क्षय की उस कोमल खिलखिलाहट के घोर रव से त्राण पाने के लिए बूढ़े प्रभुदास ने कान भी अँगुलियाँ डाल कर बन्द कर लिये। प्रत्येक साँस युग-दीर्घ हो रही थी, युगलमनोहर का भोग जल्दी पूरा हो। उधर राधेश्याम का भोग दवाई है, ये व्यंजन नहीं। सिर्फ दवा। कड़वी-कसैली दवाई। डाक्टर रोगी की माँ से कह रहा है, दवाई, अच्छी दवाई मिलनी चाहिए, नहीं तो रोगी मर जायेगा।

बेवकूफ माँ का मन पूछता है—अच्छी दवाई क्या डाक्टर? अच्छी दवाई ही दो।

डाक्टर का जवाब है—अच्छी दवाई के अच्छे दाम होते हैं, अच्छे दाम!

पर अच्छे दाम भगवान् के भक्त के घर में कहाँ? माँ अपने हाथों को देखती है। कभी उनमें उसके ससुर के पहनाये सोने के कड़े थे। पर आज वे हाथ सूने थे। माँ की लालसा थी कि अपने इन्हीं हाथों ही के कड़े राधेश्याम की बहू को पहनाऊँगी। पर बहू से पहले क्षय आ गया। वर्ष भर से मेहमानी कर रहा है गरीब के घर में। सारा चाँदी-सोना चाट गया। घर में पैसा नहीं। खाने के लाले पड़ गये। रोगी को जब जल भी हजम नहीं होता, तब इस क्षय को सोना चाहिए। कहाँ से काल का कोई पेट भरे? क्षय तो साक्षात काल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

है। काल का पेट भला कब किसने भरा ? कब से यह अनन्त जीवनों की आहुति लेता आ रहा है। पर काल की क्षुधा न मिटी। अक्षय काल सबका क्षय हो गया। क्षय !

क्षयग्रस्त राधेश्याम को दवाई नहीं मिल सकती। राधेश्याम खाँस रहा है। क्षय हँस रहा है। और अब प्रभुदास से बर्दाश्त न हुआ। रोज से पहले ही उसने आँखें खोल दीं। भगवान् को भी भला भोग लगाने में इतनी देर ? क्षण भर में जो सृष्टि और प्रलय कर सकता है, उसे इतनी देर ! और प्रभुदास ने आँखें खोलीं। देखा, भोग भगवान् नहीं, चुहिया लगा रही है, पुजारी के चौंकते ही चुहिया चौंकी और जाते-जाते जितना भोग ले जा सकती थी, लेकर भाग गयी। प्रभुदास रोष में भर आया। यदि वह दुर्वासा होता, तो तत्काल शाप देकर भस्म कर देता; जनमेजय होता, तो सर्प...की तरह मूषक-यज्ञ करता। भगवान् के भोग के सबसे बड़े चोर ये ही हैं। और तब उसने भगवान् की प्रतिक्रिया जानने को उनकी ओर देखा। युगलमनोहर मुस्करा रहे हैं, वैसे ही जैसे सोते-जागते-नहाते-धोते, खाते-पीते मुस्कुराया करते हैं। कैसे निर्विकार, चाहे तो चुहिया क्या, त्रिलोक को भस्म कर दें। पर फिर भी रोष नहीं। धन्य हैं प्रभु ! निर्विकार ! सर्वथा निर्विकार ! और भगवान् की इस विकार-हीनता पर भक्त प्रभुदास की भक्ति और भी दृढ़ हो गयी। वह समझ ही नहीं सकता था कि इस पत्थर की मूर्ति में कोई विकार सम्भव नहीं। जितने विकार सम्भव थे, मूर्तिकार ने तराश-तराश कर बना डाले। अब तो सिर्फ मूरत रह गई। परमास्तिक मन में यह भाव कैसे आता ? उसने तो यही कहा कि भगवान् की शान्ति अक्षय है !

और अक्षय के साथ फिर क्षय आ गया। फिर राधेश्याम। फिर खाँसी, क्षय की हँसी। काल की स्मिति और अब भगवान्

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

की निर्विकारता पर भक्त का मन चिढ़ा। भला यह भी कुछ कि भक्त का अकेला पुत्र मर रहा हैं, भक्त रो रहा है, पर भगवान् पर कोई असर नहीं। भावनाहीन। हृदयहीन। कौन इन्हें परम रस कहता है? भावशून्य में रस कहाँ? भगवान् की भावना कितनी जड़! जड़! जड़ तक पहुँच कर भी प्रभुदास पत्थर तक न पहुँच सका। भगवान् को पत्थर का मान लेता, तो?

और उसने सोचा, नहीं भगवान् करुणाधाम हैं! भक्त की अवश्य सुनेंगे, अवश्य सुनेंगे। घर से पत्र आया था, जितना रुपया हो सके, जल्दी भेजो। डाक्टर कहता है कि राधेश्याम को अब अच्छी दवाई यानी अच्छा रुपया ही बचा सकता है। और अब गर्मी सिर पर है। और कुछ दिन बाद ही उसे यहाँ नहीं रखा जा सकता! पहाड़ ले जाना होगा। पहाड़!

पहाड़ का मतलब पहाड़-जितना रुपया। जहाँ प्रभुदास नहीं, केवल धनमल जा सकता है, क्योंकि पहाड़ पर चढ़ने के लिए आज-कल सिर्फ सोने की सीढ़ियाँ रह गई हैं। गरीब प्रभुदास, चाहे त्रिलोकी-नाथ का ही दास, पर जब दास है, तो कैसे उस स्वर्ण सुमेरु पर चढ़ सकता है? कहाँ से इतना धन, पहाड़-जितना धन लाये?

बस, प्रभुदास की असली चिन्ता धन थी। भगवान् से अधिक धन। पुत्र से अधिक धन। पर वह मन को समझाना चाहता था कि धन की चिन्ता व्यर्थ है। भक्त को उबारनेवाले भगवान् के चरणों में पड़ कर भी धन की चिन्ता? बस, उसे भक्त-वत्सल भगवान् के विषय की सहस्र-सहस्र कथाएँ याद आयीं। जिसने गज को ग्राह से मुक्त किया, अजामिल से अघी तारे, द्रौपदी की लाज रखी, भला वही भगवान् प्रभुदास की न सुनेगा? और प्रभुदास युगलमनोहर के चरणों में लिपट गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

प्रभुदास ने निश्चय कर लिया कि अब वह पुत्र की रक्षा के लिए कतई चिन्ता न करेगा। चिन्ता करने को उसके भगवान् हैं। पर वह भगवान् के चरणों से तब तक न टलेगा, जब तक कि वह भक्त की पीड़ा न हर लेंगे। प्रभुदास अपने प्रभु के पास ही रहा। दिन चढ़ा। प्रभुदास की साधना का कष्ट बढ़ा। निराहार। निर्जल। कहीं दूर कोई खाँस रहा है। कोई हँस रहा है हँसी मृत्यु की। प्रभुदास उस दूर की बात से अपना मन खींच कर फिर-फिर भगवान् के चरणों में लगाता। दोपहर हुई। मध्याह्न आरती हुई। भगवान् कलेवा कर चुके थे। अब भोजन करेंगे। निरन्न भक्त ने तृप्तिपूर्वक यह भी किया। पट बन्द हो गये। भक्त भी भगवान् के साथ बन्द हो गया। फिर काल की हँसी, पर भक्त पट बन्द करके बैठा था, जैसे काल ही पट वन्द कर लिया। पर काल चढ़ता ही गया। दोपहर, तीसरा पहर, चौथा पहर। फिर पट खुले। फिर आरती। सान्ध्य आरती। तारे चमके। दीपक जले। बाजारों की दुनिया घरों की ओर मुड़ी। रात हुई। अब भोग और शयन। भगवान् का भोग लगा। फिर शयन। पट बन्द हुए, दिन पूरा हुआ। भक्त अब भी बाहर न जायगा। निरन्न, निर्जल प्रभुदास युगलमनोहर के साथ ही बन्द हो गया। कृष्ण राधा के साथ हैं। शयन करेंगे। एकान्त चाहिए। पर आज भक्त उनकी सुख-रजनी में दुखनाद करता ही रहेगा। युगलमनोहर ने शयन किया। उसी तरह सिर पर छत्र। वांमाग में राधा। बिजली बुझा दी गयी। घृत-दीप जलता रहा। प्रभुदास की पत्नी सूखी रोटी खाकर बेटे राधेश्याम के सिरहाने बैठी थी और इधर महाप्रभुदास घृत-दीपक जला कर युगलमोहर के चरणों में औंधा पड़ा था। पट बन्द। वह और उसके भगवान् भीतर! बन्द पटों में भी काल बोलता गया। भक्त प्रभुदास की भी आँखें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

झपक गयीं। जागरण काल में अपनी जिस चेतना को वह रुग्ण पुत्र से हठात् परावृत्त करके भगवान् के चरणों में खींचता रहा, वही स्वप्न-काल में अवचेतन की अभिव्यक्ति-सी रुग्ण पुत्र के चारों ओर घूमने लगी...राधेश्याम खाँस रहा है। खाँसी से उसका कंकाल हिल उठता है, कफ मुँह में आता है, माँ तसला उठा कर आगे करती है! कफ थूक के साथ उस घिनौने पात्र में, जिसे माँ ने ममता से थाम रखा है, गिर पड़ता है, फिर कराह। भारी साँस। खाँसी! डाक्टर। अच्छी दवाई। अच्छे दाम। मृत्यु और गरीबी। जिन्दगी और पैसा। पैसा और पहाड़, सोने का पहाड़। सोने की सीढ़ियाँ। निर्धन भक्त प्रभुदास का दरिद्र पुत्र कैसे उस पर चढ़े? वहाँ पहुँचते ही जीवन मिल जायगा। पर सोना चाहिए। जीवन के पहले सोना चाहिए। राधेश्याम जोर से खाँसा। भक्त प्रभुदास उस आवाज से काँप उठा। शरीर पर जाने कैसा जोर पड़ा कि पसीने-पसीने हो गया। घबरा कर आँखें खोलीं। अन्धकार था। घृत-दीप बुझ चुका था। भगवान् जाने अन्धकार में क्या कर रहे थे। शीश पर रत्न-जटित स्वर्ण-छत्तर दमक रहा था। प्रभुदास की दृष्टि भगवान् के चरणों से स्वर्ण छत्तार तक गयी और इस बार वह उसे सोने के भारी ढेर के रूप में दिखाई दिया, जो उसके राधेश्याम को जीवन दे सकता है, उसके कुल को बचा सकता है। उसके हाथ उस सोने के भारी ढेर की ओर बढ़े। पर काँप कर रह गये। वह तो छत्र था, भगवान् का छत्र। और भगवान्? उसने छत्र के नीचे मुँह की ओर देखा। :राधेश्याम खाँस रहा था। खाँसी के धक्के प्रभुदास को लग रहे थे। धक्के खाते-खाते देखा कि भगवान् नदारद। सामने धनमल के स्वर्गीय पिता निरमल की अहङ्कार-मण्डित मूर्ति विराज रही है। उसी के सिर पर छत्तर है। प्रभुदास ने आँखें मलीं, गौर से देखा। और जितने गौर से वह देखता, उतनी ही स्पष्ट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

धनमल के पिता रिनमल की अहङ्कार-मण्डित मूर्ति दिखाई देती, जिस पर सोने के छत्तर की छाया है।

प्रभुदास उस मूर्ति के दर्शनों से जल-सा उठा, उफ! भगवान् के धोखे में मैं आज तक दुष्ट धनमल के पापी बाप रिनमल की ही पूजा करता रहा। पूजा करते-करते कंगाल हो गया। मेरा राधेश्याम मर रहा है। उसे दवाई के लिए पैसा चाहिए और यह धनमल का बाप रिनमल सोने का छत्तर लगाये है।

बस, प्रभुदास उठा। एक झटके से उसने रिनमल को गिराया और सोने का छतर उतारकर हाथ में ले लिया। फिर जिधर से उसे खाँसी की आवाज आ रही थी, उधर को ही भागा बेतहाशा।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

"पन्थी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर"

उस वन का नाम मुझे मालूम नहीं। पता नहीं वह लुम्बिनी वन था, जहाँ भगवान् बुद्ध ने जन्म लिया था, या जैतवन था, जहाँ उनके उपदेश के अमृत फल फले थे, या कदली वन था, जिसे गोरख और मछन्दर जैसे सिद्धों ने सिद्ध-पीठ बनाया था। जो भी हो, वह किसी न किसी वरदान पाये या शाप के मारे वन का ही टुकड़ा था। उसके कई बीघों में छाया करनेवाला बरगद का भी पेड़ था तो जमीन से अधिक आसमान को अपना समझनेवाला खजूर का पेड़ भी। काँटों में ही अपनी रक्षा समझ कर थके राही को दूर रखनेवाले बबूल के पेड़ भी थे और मीलों तक अपने सुवास का विस्तार करनेवाले चन्दन के पेड़ भी, जिन पर मतवाले भुजंग झूलते रहते थे।

खजूर पर कभी किसी पंछी ने भूल कर भी घोंसला न बनाया था और बबूल पर कोई चिड़िया थकी-हारी होने पर भी बसेरा न लेती थी। भुजंगोंवाले चन्दन से तो हर कोई दूर रहता। पर बरगद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

में पूरा एक विश्व बसा था। उसकी घनी छाया के नीचे वन के सभी पशु थकान मिटाते, सिंह वहाँ गर्जना करता और मृग कुलाँचें भरते। भूले-भटके राही या शिकारी भी उसकी घनी छाया का मोह सहसा न छोड़ पाते। उसकी शाखों में सैकड़ों-हजारों घोंसले बने हुए थे, जिनमें भाँति के पंछी बड़े प्यार और शांति के साथ रहते थे। उसी बरगद पर एक गिद्ध भी रहता था। कोई उसे जटायु संपाती का वंशज बताता था तो कोई महाराजा शिवि का परीक्षा लेनेवाला बाज हो। परीक्षा तो इन्द्र ने हो ली थी, पर कहते हैं बाद में वह शिवि के प्रभाव से अपनी छाया को गिद्ध बना कर वहाँ छोड़ गया था। वह चाहे जो भी रहा हो, पर अवश्य ही उतना पुरातन था जितना वह बरगद। ज्ञान उसका और भी बढ़ा चढ़ा था। सब पक्षियों का विश्वास है कि वह सृष्टि के आदि में भी था और तब से आज तक को हर बात को जानता है। शायद इसी से उसका नाम सर्वज्ञ पड़ गया था।

एक दिन बरगद पर रहनेवाले पक्षियों की एक सभा हुई। ऐसी सभाएँ प्रायः होती रहती थीं। सर्वज्ञ इन सभाओं में सभी की समस्याओं को सुलझाया करता और सब को ज्ञान भरी अद्भुत कथा-वार्ताएँ सुनाया करता। एक दिन भरी सभा में एक तोते ने अपनी सुन्दर लाल चोंच को नचा सर्वज्ञ से पूछा, "दादा एक बात तो बताओ विधाता ने बबूल को इतने कांटे क्यों दिए ?"

सर्वज्ञ मुस्कुराया। उत्तर देनेवाला ही था कि बड़बोली मैना पूछ बैठी, "मुझे भी एक बात बताओ दादा। चंदन को। इतनी प्यारी गंध देकर भी विधाता ने इसे साँपों का घर क्यों बना दिया ?"

मैना के बोलने पर कोयल से भी नहीं रहा गया। वह भी पूछ बैठी, "और इस खजूर को भी कैसा बनाया कि छाया का नाम नहीं और फल भी दिए तो इतनी दूर !"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

इस पर सब पक्षी अपनी बोलियों में हर्ष प्रकट करते हुए बोले, "हमारा बरगद सब से अच्छा है। हमारा बरगद सब से अच्छा है। ईश्वर ने इसे घनी छाया दी, खूब विस्तार दिया।"

सर्वज्ञ ने मुसकरा कर सब के कुतूहलों का स्वागत किया और प्यार भरी दृष्टि से सब को चुप कराता हुआ बोला, "तो आज मैं तुम सब को एक बड़ी पुरानी कहानी सुनाऊँगा।"

सभी पक्षी फुदक-फुदक कर सर्वज्ञ के आस-पास की ही डालों पर बैठने की कोशिश करने लगे। बरगद इस प्रसंग में अपने चिकने घने पत्तों के साथ झूम उठा। उसकी शाखों की लम्बी-लम्बी बाहों में ऐसी शक्ति भर उठी जैसे वह सारी दुनिया को उनमें समेट ले सकता है।

सर्वज्ञ भी एक ऊँची सी डाल पर जम कर बैठ गया। उसने अपनी दृष्टि आसमान में जमाई। जैसे जो कथा वह कहेगा वह आसमान की नीली तख्ती पर लिखी हुई है, और जिसे वह एक क्षण में पढ़ कर सब को सुना देगा।

सर्वज्ञ को आसमान की ओर देखते हुए प्यासा पपीहा। बोल उठा, "क्यों दादा, क्या देख रहे हो? क्या स्वाती नक्षत्र दिखाई दिया?"

सर्वज्ञ हँस पड़ा। शेष सब पक्षी भी हँसने लगे पपीहा लजा कर रह गया। पर जग-जाहिर प्रेम के खुलने पर लज्जा भी कैसी?

सर्वज्ञ ने कहना शुरू किया, "तो बात तब की है, जब विधाता वनस्पतियों को मुँह माँगा वरदान दे रहे थे। उन्होंने सभी वृक्षों को घनी छायावाला और फलों से भरपूर बनाया था। जिन्हें बाहर की सुन्दरता न दी थी उन्हें भीतर के बहुतेरे गुण दिये थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मैना ने चुटकी ली : "जैसे कोयल दीदी !"

तभी कौवे ने उसे डाँट दिया: "चुप री बड़-बोली ! बात सुन ।" सुग्गे ने हुँकारी भरी : "हाँ, दादा !"

सर्वज्ञ ने कहना शुरू किया : "तब फलवाले पेड़ों में से कुछ ऐसे मूढ़ भी थे जो इस बात से तंग थे कि उनके मीठे फल उनके अपने काम में तो आते नहीं, दूसरे ही लोग उन्हें खा जाते हैं। एक मूरख ने कहा : "हमारी यह छाया किस काम की ? हम खुद तो धूप में तपते ही रहते हैं..."

मैना से चुप न रहा गया। बोली : "वह मूरख खजूर होगा दादा।" सुग्गे ने रट लगा दी : "खजूर मूरख, खजूर मूरख, खजूर मूरख !"

इस बार फिर कौवे को डाँटना पड़ा, जिस पर कोयल बोली : "क्यों काँव-काँव करके कान खा रहे हो।" कोयल के गर्व पर बुल-बुल से चुप नहीं रहा गया। कौवे की हिमायत करती हुई बोली, जैसे वह उसका मामा हो : "मीठी बोली कोई तेरी ही निराली नहीं !"

मैना ने इस बार भलाई लेनी चाही : "दादा, तुम कथा सुनाओ। इन सब की आदत ही लड़ने की है।"

चुगलखोर मैना की इस बात पर सर्वज्ञ केवल मुस्कुरा भर दिया। बोला : "अच्छा सुनो। विधाता ने सब पेड़ों से पूछा : "बताओ तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं ! मैंने तुम सबको अपने विचार में बहुत अच्छा बनाया है। अगर तुम में से किसी को कोई तकलीफ हो तो मुझ से कहो। या जो चाहो माँग लो..."

तब सब पंछी कुतूहल ने भर कर पूछ बैठे : "दादा, तब !"

दादा ने कहा : "समझदार पेड़ तो चुप ही रहे। उन्होंने कृतज्ञ की भाँति विधाता के चरणों में सिर झुका दिया। पर कुछ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मूढ़ न माने। उन में वह खजूर भी है, यह बबूल भी हैं और चंदन भी !"

"कैसे दादा ?..." यह प्रश्न करनेवाला खुट-बढ़ई था।

मैना बोली : "सब्र करो। दादा सब बताएँगे। सब्र नहीं होता तो जा कर लकड़ी में छेद करो।"

खुट-बढ़ई के मन मे तो आया कि इस चुड़ैल के ही सिर में छेद कर दे, पर दादा के डर से चुप रहा। दादा ने कथा बढ़ाई : "तब खजूर इतना ऊँचा न होता था। इसमें खूब पत्ते लगते थे और छाया भी घनी होती थी। थके माँदे राही इसकी छाया को बेहद पसन्द करते थे, और इसके मीठे फल खा कर भूख मिटाते थे। इसके पत्ते जब हिलते थे तो ऐसा लगता था जैसे कोई पंखे झल रहा हो। पक्षी भी इसमें घोंसले बनाते थे। पर इसे यह सब कुछ पसंद न था। बोला : 'देव, तुमने मुझे मीठे फल दिये, यह तो अच्छा किया। पर मुझे छोटा और छायादार बना कर बहुत बुरा किया। मुझे तो तुम मेरे मन का रूप दे दो। मैं इन आदमियों से तंग हूँ।"

"विधाता को उस पर तरस आया। पर क्या करते ? कह दिया—'एवमस्तु।' जा ऐसा ही होगा।

"बस तब से खजूर जैसा तुम देखते ही ऐसा ही हो गया है। साथ ही विधाता ने इसे एक शाप भी दे दिया—'जा रेगिस्तान में तू अधिक फले-फूलेगा। पर यह शाप भी वरदान हुआ। जो सब का पिता है भला उससे किसी का बुरा होता है ! रेगिस्तान में यह देवता की तरह पुजता है।"

तभी कौवे की दृष्टि खजूर पर पड़ी। देख कर बोला : "देखो दादा, देखो। खजूर की पूजा हो रही है। ये कुछ जंगली इधर निकल आये हैं। खजूर को पत्थर मार-मार कर पूज रहे हैं।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सब पंछी हँस पड़े। दादा गम्भीर ही रहा। बोला : "दुर्भाग्य इसका। इसने सोचा था कि लम्बा होने पर अपने फलों को खुद ही खा सकेगा। छाया न रहेगी तो कोई इसके पास फटकेगा भी नहीं। पर..."

वेदना के कारण दादा चुप हो गए। कुछ ठहर कर बोले : "और इस बबूल को देखते हो न। तब इसमें एक भी काँटा न होता था। सुन्दर फूल लगते थे। इसकी लकड़ी भी अच्छे-अच्छे कामों में आती थी। इससे सृष्टि का भला होता था। पर यह दूसरों का भला होते देख मन ही मन जला करता था। जब विधाता ने इससे पूछा कि "खुश तो हो ?" तो यह अभागा बोला—"जिसके सुन्दर फूलों पर आदमी की दृष्टि हर वक्त पड़ी रहती हो, जिसके सिर पर आरे चलते हों और कुल्हाड़े बरसते हों, वह भी भला खुश !"

"उस कृतघ्न की बात सुन कर विधाता को बड़ा अफसोस हुआ। उधर बबूल कहता गया : "मुझे भी खजूर की तरह अपने मन का रूप दे दो, देव !"

"जा ऐसा ही हो"—विधाता ने चिढ़ कर कहा। उसी क्षण बबूल के सारे फूल काँटे हो गए। सुई जैसे लम्बे, नुकीले !

"साथ ही विधाता ने शाप भी दे डाला : तू बड़ा जलता है, जा जल कर तू कोयला हो जाया कर।"

"कोयला !" सब पक्षियों ने अचरज से कहा।

दादा बोले : "हाँ ! बबूल की लकड़ी का बढ़िया हल्का कोयला बनता है। आदमी की बुद्धि से इसके काँटे भी रक्षा न कर सके।"

मैना बोली : "पर दादा, विधाता ने बुरा शाप दिया। बेचारे का ऐसा परिणाम !"

दादा बोला : "नहीं, इसमें भी इसका भला हो सकेगा। ईश्वर का दिया कुछ भी बुरा नहीं होता। अगर यह कोयले के काम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

का भी न होता तो समझ लो आदमी इसे धरती से उखाड़ ही फेंकता।"

"और चन्दन?" तोते ने धीरज खोते हुए पूछा। उसका मन सबसे ज्यादा खुशबूवाले चन्दन के साँपों में ही उलझा हुआ था।

दादा ने खँखार कर गला साफ किया। फिर ऊपर की ओर देखा। आसमान की तख्ती में से कुछ पढ़ा। फिर धीमे-धीमे बोला : "चन्दन तो देव-वृक्ष था। देवताओं का अतिशय प्यारा! मनुष्य भी इसका बड़ा मूल्य लगाते और देवताओं को प्रसन्न करने के लिए इसी से उनकी पूजा करते। इस पर भी यह मूढ़ सोचता रहा कि विधाता ने इसे खुशबू देकर तो अच्छा किया पर रक्षा का उपाय न दिया। पवन हर वक्त मेरी गन्ध की चोरी करता है। आदमी हर वक्त मुझे घिस-घिस कर शीतल सुगन्ध पाने के लोभ में रहता है। बस, यह भी विधाता से शिकायत के स्वर में बोला : 'मेरा भी बुरा हाल है देव! मुझे तुमने इतना असहाय क्यों बना दिया।...'

विधाता को अपनी सृष्टि के मूर्खों के इस विद्रोह से बड़ी पीड़ा हो रही थी। अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले : 'बोलो, तुम क्या चाहते हो? तुम्हारी रक्षा के लिए मैं क्या कर सकता हूँ?'

चन्दन बोला : 'पिता, तुमने खजूर की छाँह ले ली और उसे ऊँचा कर दिया। बबूल के फूल ले कर उसे काँटे दे डाले। मेरा लो कुछ मत, पर साँपों को मेरा प्रहरी बना दो। जिससे मेरे पास फटकने की कोई हिम्मत ही न करे।'

'एवमस्तु'—विधाता ने पीड़ा के साथ कहा। साथ ही यह शाप भी दे दिया कि जा अब तू ऐसी ही जगह वास करेगा जहाँ जल्दी से तेरा कद्रदाँ भी न पहुँच पायेगा।"

कोयल ने पूछा : "तो दादा, क्या उस से पहले चन्दन खूब होता था?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

दादा ने बताया : "हाँ, हर घर के आँगन में। पर इस शाप से चंदन का भला ही हुआ। आदमी की पहुँच से तो यह अब भी दूर नहीं हुआ, पर दुर्लभ होने के कारण इसका मूल्य अवश्य बढ़ गया।"

कौवे ने पूछा : "दादा, हमारे बाबा बरगद ने कुछ नहीं माँगा ?"

सर्वज्ञ बोला : 'इसने भी माँगा था, पर समझदार की तरह। कहा कि मेरी छाया सदा फैली रहे। मेरी बाँहें सदा लम्बी रहें। मेरी गोद में हर कोई आश्रय ले। मुझ से हर किसी का भला हो। मैं सदा सब के काम आऊँ—पशु, पक्षी, मनुष्य सभी।'

"इस पर विधाता ने खुश हो कर इसे अक्षयता का वरदान दिया। नहीं देखते इस बरगद को ही। कई सौ वर्षों में भी यह बूढ़ा न हुआ। इसकी जवानी नित बढ़-बढ़ कर इसे और भी विशाल और भी दृढ़ बनाती रहती है। भगवान् बुद्ध ने भी एक बार अपने संघ के सहित इसकी छाया में तीन दिवस यापन किये हैं। मनुष्य इसे देवता की तरह पूजते हैं और हम सब का तो यह रक्षक है ही।"

तभी सर्वज्ञ की दृष्टि उन जंगलियों की ओर पड़ी जो खजूर का ध्वंस कर बबूल में आग लगाने और चन्दन को काट डालने की बातें करते हुए चिड़ियों के शिकार के लिए धनुष-बाण लिये बरगद की तरफ ही बढ़ रहे थे। सर्वज्ञ ने तत्काल सभी को संकेत किया। उस चिर परिचित संकेत को पा कर सब पक्षी अपने-अपने घोंसलों, कोटरों और घनी शाखाओं में छिप गये। जिस प्रकार जल प्रलय में बाल रूप भगवान् पैर के अँगूठे का अमृत पीते हुए महाप्लावन में भी वट-पत्र पर अभय संतरण करते हैं, उसी प्रकार समस्त क्षुद्र पक्षी भी अक्षय-वट के अभय वृक्ष में छिप कर सुरक्षित हो गये।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

आखिरी चिट्ठी

ध्यान नहीं आता कि मैं कब से अपनी इस छोटी-सी बस्ती के लोगों के भले-बुरे सदेसे उन तक पहुँचाता आ रहा हूँ। पर इतना तो जाहिर ही है कि दूर-दूर से आनेवाली इन चिट्ठियों को ठिकाने तक पहुँचाते-पहुँचाते मेरे बाल सफेद हो चले हैं। बाल ही सफेद क्यों, आँखें भी तो अब बुझती जा रही हैं और घुटने मानों झुक कर धरती पकड़ लिया चाहते हैं। कमर अपने को सीधा रखने के लिए वापस किसी लकड़ी के सहारे की आवश्यकता भी समझती है और चेहरे की झुर्रियाँ उनमें तो जाने मेरे हाथ से बाँटे गये कितने लाख दिनों का हर्ष-विषाद दबा पड़ा है। इस सबसे तो यही पता चलता है कि मेरी आयु साठ वर्ष से कम की नहीं। किसी युग में साठा भले ही पाठा रहा होगा, यानी जब घी-दूध पानी की तरह बहता रहा होगा, किन्तु आज जब कि सुनते हैं कि बड़े-बड़े शहरों में पानी तक विकता है तो घी-दूध पर तो जो न बीते सो थोड़ा। इसलिए पहले जमाने के लोगों का ख्याल करके कहूँ तो भले इस साठ बरस की छोटी-सी उम्र में ही बूढ़ा हो जाना पड़ रहा है, जब कि आज ये लोग कहते हैं कि मैं बड़ा-बूढ़ा हूँ। सत्तावन का गदर आँखों से देखा है। वास्तव में सही यह है कि यह प्रसिद्ध आज़ादी की लड़ाई मेरे पैदा होने से तीस बरस पहले हो चुकी थी और तब शायद मेरे पिता भी इस दुनिया में न आये थे। फिर भी सरकारी कागजों में शायद पचास-पचपन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

के आस-पास हो हूँगा। और ठीक भी है, कुछ ज्यादा होता तो पचपन-साला में बिना अपनी जरूरतों के लिहाज के भी निकाल बाहर किया जाता।

मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरा दिन न तो सूरज के साथ उगता था और न चाँद के साथ छिपता था। पर सही तो यह है कि चिट्ठी बाँटना शुरू करने और खत्म होने में ही मेरी जिन्दगी का एक रोज खत्म हो जाता था। जाने ईश्वर ने क्या सोच कर मुझे सगे सम्बन्धियों और अपने कहे जामेवालों से सर्वथा हीन रखा था। मैंने देखा कि कम्बख्त की जिन्दगी में भी एक बार बहार आया करती है—जवानी की बहार! मगर मैं तो शायद बूढ़ा ही पैदा हुआ था और बराबर बूढ़ा ही रहा और होता रहा। इस बात का सबूत तो यही है कि मेरे जीवन में कभी जवानी आई ही नहीं और हिन्दुस्तान में जहाँ धन के जोर पर बुड्ढों के भी ब्याह हो जाते हैं मुझ बदनसीब को गरीबी के कारण सेहरा बँध ही न सका। यह एक और भी कारण है कि मेरे लिए न तो सूरज ही कभी उगा और न कभी चाँद ही चमका। लोग जाड़ा, बरसात, गर्मी और जाने किन-किन मौसमों के बारे में सोचते-सोचते बदलते रहा करते, पर मेरे लिए तो न कभी कोई मौसम आया और न कभी गया। मुझे अपने उस खाकी कोट में कभी किसी मौसम के आने-जाने की निशानी दिखाई ही नहीं देती थी। हाँ, कभी-कभी सरकार की तरफ से कुछ खास ढंग के और शायद गरम कपड़े आया करते थे, पर मैं आज तक उनकी जरूरत महसूस कर ही नहीं सका। तो, जब चिट्ठी बाँटने का काम पूरा हो जाता तो मुझे लगता कि मेरा दिन भी पूरा हो गया। फिर चाँद चाहे उगता या न उगता, सूरज चाहे छिपता या न छिपता। मैं तो जान ही लिया करता कि मेरी एक-रस जिन्दगी का एक दिन पूरा हो ही गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

किसी को शायद शक हो सकता है कि तब क्या मैं हवा और पानी, रोशनी और अँधेरे पर ही जीता था। भूख जैसी मेरी जरूरत थी ही नहीं। और दिल—उसकी बात तो एक दम फिजूल। तो मैं कह किदूँ मैंने रोटी और पानी को कभी नहीं छोड़ा, साथ ही यह भी कभी महसूस नहीं किया कि यह भी जीवन में कोई विचार और चिन्ता की बात है। पर दिल के बारे में मैं इतना बेखबर कभी न था। जो दिल बंद लिफाफों के हरूफों की धड़कन सुन-समझ लेता हो उसके बारे में कोई भला आदमी बेखबर रह ही कैसे सकता है! इस दिल के बारे में जब मैं सोचता हूँ, तो मुझे उन लाखों चिट्ठियों की और उन हजारों चेहरों की याद आ जाती है जिनके दर्द को इस दिल ने अपना दर्द समझा; लेकिन सिर्फ दर्द कहना झूठा होगा। खुशी-गमी दोनों में ही वह हँसता-रोता रहा है। ऐसी खुशी-गमी जिसका इससे अपना कोई संबंध नहीं। ऐसी हँसी जिसका आनन्द इसके अपने लिए नहीं। ऐसे आँसू जिनकी पीड़ा भी इसके लिए नहीं थी। और तभी तो ताज्जुब है कि लाखों चिट्ठियाँ अपने हाथ से धूप-छाँह, आँधी-बरसात में चल कर बाँट देने पर भी अपने नाम के किसी पत्र के प्रति उसकी उत्सुकता रहती ही न थी। और शायद जो एक बार चिट्ठी उसके नाम कभी कहीं से रवाना की गई होगी, तो वह मौत के पैगाम के रूप में ही आती होगी। सोचता हूँ कि यह दिल भी बड़ा विचित्र है। शायद पत्थर और मोम का बना हुआ था। पत्थर अपने लिए, मोम दूसरों के लिए। तभी न अपने लिए कभी रोया न हँसा।

जिन चिट्ठियों को लेकर मैं अपना दिन शुरू करता उनमें आग होती, बर्फ होती; आँसू होते हँसी होती; और हर्ष, पीड़ा, अभाव, आवश्यकता सभी कुछ होता। और मैं अपने-बदसूरत हाथ से वह सब-कुछ आफत और नियामत की तरह बाँटता रहता। जब मैं डाकखाने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

से निकलता तो मेरा दिल हरा-भरा होता और जब सारी की सारी चिट्ठियाँ बाँट कर वापिस होता तो लगता खाली बरतन-सा बेकार जौर छूँछा। शायद मेरी जिन्दगी के एक रोज का मकसद पूरा हो गया। अब वह अगले रोज के लिये बिल्कुल व्यर्थ है। और तब शायद मैं अपने आपको धरती के लिए पहाड़ से भी भारी समझता और चाँदनी-अँधेरी रातों में इसलिए घूमते डरता कि कहीं यह बेकार में बहुत ऊँचा उठा हुआ शरीर चाँद-तारों से न जा टकराए और किसी मिलते-बिछुड़ते के रास्ते की बाधा न बन जाय।

तो मुझे खुशी होती जब मैं ढेर-सी चिट्ठियाँ ले कर उस पहले मोड़ की पहली दुकान तक पहुँचता। यहाँ मुझे हमेशा ही एक जईफ बनिया बैठा मिलता और जिसे मैं सोचता मेरी इन्तजार अवश्य है। यह सच है कि उस बूढ़े को मैंने शायद ही कभी कोई चिट्ठी ला कर दी हो। पर इससे भी ज्यादा सच यह है कि उसे मेरी इन्तजार रहती अवश्य—शायद कहीं से कोई चिट्ठी आ ही जाये! पर कभी चिट्ठी आई ही नहीं और न मैंने कभी उसकी संभावना पर विश्वास ही किया। पर मैं क्षण भर के लिए उसकी दूकान पर अवश्य रुकता।

वह पूछता—कहो भाई कुछ है हमारा भी ?

मैं जवाब देता—चिट्ठी तो नहीं, एक मनीआर्डर जरूर आया है। रुपये इतने ज्यादा थे कि मैं उठा कर ला ही नहीं सकता था, इसलिए डाकघर ही छोड़ आया उसे।

बात वह समझ जाता, पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसने उस मजाक का बुरा माना हो? और शायद उसने बुरा माना होता तो मैं कभी ऐसी मजाक करता भी नहीं। रोज ही ऐसी बात हुआ करती और कभी-कभी तो वह स्वयं उस पुरानी मजाक को उठा कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पूछा करता—तो कल लेते आओगे न हमारा रुपया। कहोगे तो मजूर साथ कर दूँगा।

मैं उसकी इस जिन्दादिली की गहरी दाद देने के लिए कभी-कभी ऊँचा हँसना चाहा करता, पर उसकी आँखों की उदासी और बेचैनी को देख कर इच्छा न होती, हिम्मत न होती। मुझे लगता कि इस मजाक में भी कुछ है—वह न सिर्फ बात है, न सिर्फ छेड़।

और मैं बढ़ जाता। शायद बढ़ते हुए जितने कदम रखता उनमें से अधिकांश चोरों की तरह। कारण कि जब मैं देखता कि हजारों आँखें मेरे झोले पर हैं और हजारों हाथ मेरे हाथ की चिट्ठियाँ लेने को बेताब हैं और मैं उनमें से किसी की आँख की बेचैनी को खुशी में नहीं बदल सकता, किसी के खाली हाथ को भर नहीं सकता, तो मुँह छिपा कर चला ही जाना पसन्द करता।

पर जब कोई पूछ ही बैठता—'चाचा कोई हमारी भी चिट्टी है ?' तो मुझसे न होने पर कहने न बनता सीधे से। कहता—'आज तो नहीं बड़े भैया, जाने आज क्यों नहीं।' इस संकोच का फल होता कि वह अगले दिन उसी ढंग से चिट्ठी की फरमाइश करता और मजबूर होकर मुझे भी वैसा ही जवाब दे देना पड़ता।

'चाचा' के रिश्ते से कुछ और भी रिश्ते याद आ गये। मैं बस्ती में जाऊँ, चाचा, भाई आदि और किसी किसी का तो बेटा तक था। मुझे चाचा, ताऊ के रिश्ते जितने प्यारे लगते उतने ही मामा-बेटा के भी। और सच ही मैं महसूस किया करता कि मेरा इस दुनिया में सब कुछ है। मैं अकेला कहाँ ? मेरा गैर कौन ? शब्द से तो ऐसा लगता कि सदा अमर रहनेवाले माँ-बाप को पा लिया है। और उन अमर माँ-बाप के लिए मैं चाहे इससे भी ज्यादा वृद्ध क्यों न हो जाऊँ बच्चा ही बना रहूँगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

हर रिश्ते और नाम में मेरे लिए बहुत-सा आकर्षण होता। मैं जानता हूँ कि 'मामा' कहने से हमारी बस्ती का एक बढ़ई बहुत चिढ़ा करता है। फिर भी मुझे कोई चिढ़ नहीं थी। बल्कि खुशी होती कि इस मामा के सम्बन्ध के पीछे मेरी भी कोई बहिन है और मैं भैयादूज तथा रक्षाबन्धन के त्योहारों का उतना ही अधिकारी हूँ जितना इस दुनिया में किसी भी बहन का बीर हो सकता है। तब चाहे सचमुच में वह दिन कभी न आता हो जब कि कोई बहन अपने मेरे जैसे भाई के राखी बाँधती हो तथा गोला दे कर मिठाई खिलाती हो, इस आशा से कि उसका मेरे जैसा भाई उसे अठन्नी या रुपया देगा जिसमें उसके लिए कुबेर का खजाना होगा; फिर भी मुझे लगता कि मेरे एक ऐसी बहन है अवश्य!

खूब, मैं तो चिट्ठी बाँटने निकला था और लगा आप को अपनी ही बात सुनाने। अभी वहाँ आगे बटोही बुढ़िया मेरी बाट देख रही होगी और बल्लू, भल्लू जाने कै बार चौक के पनवाड़ी की घड़ी मेरे इन्तजार में देख आये होंगे। बुढ़िया बटोही को शायद मेरे आने की प्रतीक्षा सब से ज्यादा रहती। और झूठ भी क्या, उसका इकलौता लड़का जवान बहू को उसके रोने के लिए छोड़ कर लाम पर जो चला गया था। उसे उसकी बड़ी ही चिन्ता रहती थी। दुनिया भर की तो मान-मनौती माने बैठी थी। पीर को चादर चढ़ायेगी, चण्डी माँ को चाँदी का छत्तर। पीपल को भी रेशम के तागे से बाँधेगी और गंगा जी को दूध से भर देगी। सारे देवी-देवताओं के नाम का कुछ न कुछ करेगी, पर शर्त यही कि उसका नत्थू लाम से अच्छा-बिच्छा लौट आये। इन बहुत से देवताओं में से मैं भी उसके एक देवता के बराबर था! तभी तो उसने कह रखा था कि 'बेटा जिस दिन मेरे नत्थू के घर आने की खबर लायेगा, उस दिन तुझे मिठाई खिला दूँगी भर पेट।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मैं नहीं जानता कि दूसरे देवी-देवता उसकी प्रार्थना की कितनी चिन्ता करते थे। और मैं तो सच ही उस दिन के लिए बेताब था! इसलिये नहीं कि मुझे बुढ़िया की मिठाई से दुश्मनी थी। बल्कि इसलिए कि मैं उसकी उमर को देखता और उसके उस बूढ़े दिल का कष्ट समझता, जिसे शायद मैं उसका बेटा बन कर भी दूर करने को तैयार था।

कभी न कभी नत्थू का कोई पत्र आ जाया करता था। बुढ़िया को यह जान कर ताज्जुब होता कि उसका बेटा समुन्दर पार जा कर गोरों के लिए लड़ाई लड़ रहा है और उसकी यह चिट्ठी शायद इटली से आई थी या फ्रांस से! नत्थू की चिट्ठी को मैं पढ़ा करता, क्योंकि बुढ़िया और उसकी बहू में से कोई भी पढ़ी न थी। पर उसके पत्र को पढ़ने का उत्साह मुझे कभी न रहा। भला लड़ाई के मोर्चे से आनेवाली उस चिट्ठी में जिन्दगी और मौत के आस-पास की सभी चीजें हो सकती हैं और मुझे यह हर्गिज गवारा न था कि लम्बी-लम्बी आशाओं और बड़ी-बड़ी मनौतियों को मना कर जीवित यह बुढ़िया क्या कभी किसी बुरे समाचार को सुनने के लिए भी प्रस्तुत होगी।

आज बुढ़िया के बेटे की चिट्ठी आई थी। और इस चिट्ठी को बुढ़िया तक जल्दी पहुँचा देने का उत्साह और झिझक दोनों ही मुझमें थी। मैं चाहता था कि किसी तरह उड़ कर बुढ़िया तक यह पत्र पहुँचा दूँ और साथ ही साथ यह भी चाहता था कि वह क्षण कभी न आये जब मुझ ऐसे पत्र पढ़ने पड़ें।

और वह समय आया, पर उसी रफ्तार से जिससे उसको आना चाहिए था। साथ ही उस मजबूरी को लिए जिसका मतलब था उस चिट्ठी का पढ़ना। शायद जितनी आशंका-उद्वेग बुढ़िया के दिल में था उससे भी ज्यादा अपने दिल में भरे मैंने पत्र को खोला और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पढ़ा। परन्तु कुछ ही शब्द पढ़ने के साथ ही मेरा काँपता हुआ हाथ स्थित हो गया और बुढ़िया की भरी-भरी आँखों में भी खुशी की चमक आने लगी। मैंने भी पूरे उत्साह और ऊँचे कण्ठ से पत्र पढ़ कर समाप्त किया—नत्थू घर आने वाला था, जल्दी ही। शायद लड़ाई खत्म हो रही थी।

खुशखबरी के पत्र पढ़ कर मुझ में नवजीवनका उत्साह भर जाया करता था और तब मैं नई जिन्दगी की ताजगी के साथ बाकी चिट्ठियों को बाँटने के लिए बढ़ जाया करता था। कभी-कभी मैं बहुत कुछ मन में रखनेवाली पर बेजबान चिट्ठियों से बहुत सी बातें करता। मैं जानना चाहता कि इनके दिल में क्या है? वे किसके लिये क्या ला रही हैं? किसके ओठों की मुस्कुराहट छीन लेंगी तो किसके आँसुओं को हँसी में बदल देंगी? उनमें जीवन और मृत्यु में से क्या है? प्यार और घृणा में से कौन है? आशा और निराशा!

जब मैं उन चिट्ठियों को बगल में दाबे चलता, तो सोचता कि जाने कितनी मौतें और कितनी जिन्दगियाँ मेरे हाथों में हैं। मैं चाहूँ तो एक-दूसरे तक पहुँचा दूँ और न चाहूँ, तो जहाँ की तहाँ रहने दूँ! काश! मैं मौत को जिन्दगी में बदल सकता, आँसुओं को हँसी में मिटा सकता, तो उन चिट्ठियों के लिए सब कुछ करता। यही सोचते-सोचते मैं अपने बगल के उस बोझ के प्रति कभी प्यार से भर उठता तो कभी घृणा से। प्यार खुशी से, घृणा गमी से—ऐसी खुशी और गमी जिनसे मेरा कोई वास्ता नहीं होता। मेरे जैसे और भी तो मेरे साथी डाकिये थे। पर मैंने देखा है कि उन्होंने कभी दूसरों के भावों को पढ़ने, सुनने, या जानने की कोशिश ही नहीं की। वे मानों आदमी नहीं चिट्ठी बाँटने के यन्त्र थे जो रोज-मर्रा किसी भूख-प्यास जैसी प्रेरणा से काम में लग जाते थे। पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

में चिट्ठी देने के लिये बढ़े हुए काँपते हाथ से ऊपर उन आँखों में देखा करता जो उस पत्र को विना पढ़े सब कुछ जान लिया चाहती थीं और उन हाथों पर आ कर रुक जाता जो मुझसे पत्र छीनने की चिन्ता में रहा करते और तब मुझमें इतनी हिम्मत रह ही नहीं जाती कि मैं यह जानने के लिए रुक सकूँ कि वे पत्र कौन-सा सन्देसा लाये हैं—जिन्दगी का या मौत का ! बस मैं बढ़ ही जाता। अपने दूसरे साथियों की तरह बढ़ जाता। बेजान, बेदर्द और बेमुरौव्वत बना; पर दिल पर पत्थर रख कर भावनाओं को कुचल कर।

आज मुझे वे हजारों दिन, हजारों चेहरे और लाखों चिट्ठियों के साथ याद आ रहे हैं, और मुझे लगने लगता है कि मैं अभी भी उन सबसे घिरा हुआ हूं और मौत के आखिरी दिन तक घिरा रहूंगा जब कि मेरे जन्म के बुढ़ापे का अच्छा या बुरा अन्त होगा। अच्छा या बुरा मैं कुछ भी तो नहीं कह सकता क्योंकि जो मर जाता है वह इस तरह की सारी अच्छाइयों और बुराइयों से अपना वास्ता तोड़ चुकता है। अच्छाई-बुराई कुछ रह जाती है, तो उन लोगों के लिये जो उस मरे हुए के किसी तरह अपने हो कर बाद तक जिन्दा रहते हैं।

तो उन हजारों चेहरों में से जिन्हें मैं प्रायः चिट्ठियाँ बाँटते समय चिट्ठियों की तरह ही पढ़ा करता था और उन्हीं में अपने सुख-दुःख के महल खड़े किया करता था। एक लड़की का ऐसा चेहरा भी है जिसे मैं शायद कभी भूल ही नहीं सकता। भूला शायद इसलिए भी नहीं कि मैंने उसके उस मुख पर प्रलयंकारी परिवर्तन देखे हैं और जिनमें जीवन, जीवन न रह कर कहानी बन जाया करता है।

जब मैं उस पीपलोंवाले मुहल्ले से उस गली के पास से हो कर निकलता, तो वह प्रायः हाथ में डोल-रस्सी और कमर पर भरी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

गागर रखे ही मेरी प्रतीक्षा करती हुई मिला करती थी। प्रारम्भ में तो मैं जान ही नहीं सका कि इसे मेरी प्रतीचा रहती होगी। मेरी प्रतीचा का मतलब जितना मुझसे है उससे बहुत अधिक मेरे द्वारा प्राप्त होनेवाले समाचार से समझिए। पर एक दिन जब चिर-प्रतीचा के अनन्तर मैंने उसके किसी मनचीते पत्र को उस तक पहुँचाया था तो उसके हुलास को देख कर मैं अचरज थे ही डुब गया था। वह अभी कुएँ से डोल फांसे पानी खींच ही रही थी कि मैंने बड़े प्यार के साथ जा कर कहा—'लो राधा बेटी' आज तुम्हारी भी चिट्ठी आई है!'

'राधा की चिट्ठी' यह सुनकर राधा को इतना होश न रहा कि उसका डोल कुएँ में फँसा है। उसने उसे जैसे का तैसा डूबने के लिए छोड़ दिया। रस्सी उसके पैर में लिपट कर उसे भी साथ ले जाना चाहती थी, पर मेरा पुण्य, धर्म कि मैं उस बुरे दृश्य को देखने से बच गया। उसने उचक कर, या झपट कर, एक तरह से चिट्ठी मेरे हाथ से छीन ही ली, और बिना किसी बात का विचार किये खोल कर पढ़ने लगी। मैंने पहले अचरज से उसको झपट को देखा और फिर सानन्द उसके उल्लास को। आः, उस समय उसकी आँखों में चाँद-सूरज चमक रहे थे। अंगों में वसन्त फूट रहा था, छाती में सागर उमड़ रहा था। बस वह खुश थी, एक-एक शब्द में खुश थी, इतनी खुश कि इन्तहा नहीं। और उसे उस खुशी में डूबी छोड़ कर मैं बढ़ चला।

पर मैं सोचता हूँ कि मेरी ऐसी खुशियाँ भी गमियों से कितनी घिरी होती थीं। जब मैं उसके रसभरे गुलाब से फूल के मुखड़े को देख कर खुशी की सीमाएँ तोड़ देना चाहता था। तब मुझे वे चेहरे याद आ गये थे जिन तक मैंने जिन्दगी की बदनसीबियाँ और मौत के सन्देसे पहुँचाये थे। भला उन चिट्ठियों को भूलता भी कैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जिन्हें मैं खुद लाया, खुद पढ़ कर सुनाया और खुद ही एक की मौत को दूसरे की जिन्दगी से जोड़ा।

बस इसी तरह चिट्ठियो में दिन गुजारते न गुजारते मुझमें मेरा अपना कुछ न रह गया था। एक शीशा था, जिसमें हर कोई अपने सुख-दुःख की छाया डाल सकता हैं। फिर भी मेरी हालत उस रुके तालाब-सी थी जिसने कीचड़, कंकड़, पत्थर, घोंघे- मेढ़क, कमल सभी को तो अपना समझ कर दिल से लगाया था। फिर चाहे उस पर कोई फूल ही बरसाता या पत्थर ही। किनारों पर जाकर मर जानेवाली लहरों में अपना दर्द, उद्वेग व्यक्त कर शान्त हो जाता। तब शायद यह भी नहीं सोचता कि तट की यह कैसी कठोरता है जिसके स्पर्श से कोमल तरले लहरे भी मर जाती हैं।

और यह सब इसी रूप में हो जाता तो भी वहुत अच्छा था। यह आया बड़े ही अनुताप के साथ, ऐसा अनुताप कि जिसने मुझें सदा के लिये सुखा दिया। मेरा कीचड़, कंकड़, पत्थर, घोंघे, कमल कुछ भी तो मेरा नहीं रहा!

उस दिन मैं रोज की तरह चिट्ठियों से अपना दिन प्रारम्भ करने निकला था। पर ठीक-ठीक कहूं तो बिल्कुल और दिनों की तरह नहीं। आज बहुत-सा अचरज मेरे साथ था, जिसके कारण मैं सड़क-सड़क चल ही नहीं पा रहा था। नहीं जानता कि सर के बल अथवा पैरों के बल मैं किसी तरह उस रोजवाले लाला की दुकान तक पहूँचा। मेरा अचरज मेरे साथ था।

लाला ने सदा की तरह पूछा—'कहो भाई, कुछ हैं हमारा भी ?'

मेरा अचरज यही था कि मैं और दिनों की तरह उसे जवाब नहीं दे सका। मुझें कहना ही पड़ा—'आज तो तुम्हारी चिट्ठी आई है लाला जी!'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

'मेरी चिट्ठी' शायद उसने इसे मजाक ही समझा जिसे आज वह जाने क्यों किसी भी तरह सुनने को तैयार न था। बोला—ऐसा मजाक न करो भाई! मेरी चिच्ठी कहां से आयेगी। मुझे चिट्ठी भेजनेवाला तो....

इसके आगे न तो वही अपना वाक्य पूरा कर सका और न मैं ही सुनने का धैर्य कर सका। चट से चिट्ठी पेश कर दी। 'यह क्या मेरे दिल्लू की चिट्ठी उसने खोल कर जो देखा, दिल्लू की ही चिट्ठी' उस दिल्लू की ही, जिसे वह, मैं और सारी दुनिया ही मरा जानती थी। अर्थात् लाला की एकमात्र सन्तान आज जीवित है। पत्र बताता है कि जीवित ही नहीं धनपति हैं, और वह विदेशो से ढेरों रुपया कमा कर लाया है और दिल्लू वीस बरस से जिसका कोई समाचार न था, आज जीवित है?—लाला सोच-सोच कर पागल हो रहे थे।

पत्र गवाह था, वह मुझे भी उसकी गवाही मान लेनी पड़ी। और तब वे बीसों बरस के दिन मुझे याद आ गये जब मैं लाला को इसी गद्दी पर इतना ही बूढ़ा, इतना ही गमगीन—मानों सुख से उसका कोई मतलब ही नही था, देखा करता था। और चिर-परिचित मजाक करके आगे बढ़ जाया करता था। तब तो मैंने न समझा, पर आज समझ रहा हूँ कि उस अवस्था में भी लाला जीवित था और विनोद के आवरण में अपनी आशा को जीवन दिये मुझसे नित्य ही चिट्ठी के बारे में पूछा करता था। उसका यह चिट्ठी के बारे में पूछना क्या अब भी मजाक कहा जा सकेगा? क्या यही मजाक जो उसकी सर्वोच्च आशा का आधार था; उसकी आत्मा के किसी संकल्प स्वीकार, स्वप्न या सत्य का छद्म रूप न था। आज वह छद्म, चिरपोषित छद्म सत्य के रूप में प्रकट हो गया था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

यही सोचता-सोचता मैं आगे बढ़ गया। उसी तरह जैसे हमेंशा, गर्मी-सर्दी, आँधी-पानी में बढ़ा करता था। उसके उस अप्रत्याशित हर्ष को स्थिरतापूर्वक देखने का तो मुझे साहस न था। दुःख-सुख की अस्थिरता और सुनियमता ने मुझे इतना संशायालु कर दिया था कि किसी भी सुख को इसलिये सुख मान कर स्वीकार करना नहीं चाहता था क्योंकि प्रत्येक ऐसे सुख का अन्त था। और अन्त, सुख का अन्त भी क्या अच्छा हुआ ? वह दूसरी बात कि अन्त ही सुख-मय हो।

मैं आगे बढ़ता ही जा रहा था कि किसी ने चिरपरिचित स्नेहमय स्वर में पूछा—"क्यों बेटा, आज क्या कोई चिट्ठी नहीं ?

मैं अपनी विचार तन्द्रा से जागा ? चिट्ठी, बटोही वृद्धा की चिट्ठी जरूर थी। मैं भी कैसा कि भूल कर बढ़ता जा रहा था। बस चिट्ठी उसको और बढ़ा दी और अपनी-सी धुन में बढ़ने को हुआ—पर बढ़ न सका। पत्र मेंरे ही हाथ में था और बुढ़िया कह रही थी 'इसे पढ़ कर सुना दो बेटा ! आज कुछ जल्दी है क्या ?'

मैंने किसी तरह रुक कर कहा नहीं तो, और पत्र खोल डाला। पर उस पत्र में जो लिखा था, उसे पढ़ कर वृद्धा को सुनाने का साहस नहीं हुआ। किसी तरह अपने मन के हाहाकार को दवा कर कहा—"आज मैं अपना चश्मा भूल आया हूँ इसलिए पढ़ नहीं सकता !'

पर मेरा चश्मा मेरी नाक पर ही था। यह कैसा झूठ ! बुढ़िया ने आशंकित हो कर चिल्ला कर कहा—यह क्या हो गया तुम्हें बेटा, आज इस तरह भागते क्यों हो ?

मैंने कहा दिया—"जल्दी में हूँ ? यह दूसरा झुठ था और भाग चला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पर बुढ़िया से भाग कर भी क्या मैं अपने कष्ट से भाग सका। यह पत्र फौज के दफ्तर से आया था। जिस समय की बुढ़िया का लड़का जल के जहाज़ से वापस देश आ रहा था तो समुद्र की किसी अज्ञात सुरंग से टकरा कर उसका जहाज डूब गया, जिससे एक भी सिपाही जीता न बचा।

आः आग-गोलों से जो बच गया और एटम बम भी जिसे न मार सका उसे समुद्र ने निगल लिया। सो कैसे? सो कैसे? और बुढ़िया चाहती थी कि मैं उसे यह समाचार सुना दूँ ही। भला सो कैसे? सो कैसे?

और मैं इन भयानक विचारों से अपने को बचाने के लिए तेजी से उस धूप में, कड़ाके की धूप में चिट्ठियाँ बाँटता रहा। इच्छा होती थी कि मेरे हाथ की चिट्ठियाँ अनन्त हो जायँ और इसी प्रकार अनन्त काल तक उन्हें बाँटता हुआ मैं भी अनन्त हो जाऊँ ऐसा अनन्त की सुख-दुःख को पहुंच के बाहर।

जब डाक की चिट्ठी का पता पढ़ा तो राधारानी का नाम देखा। मैं प्रायः सभी चिट्ठिया समाप्त कर उस पीपलोंवाले मुहल्ले के कुएँ तक आ पहुँचा था। राधारानी मेरी प्रतीक्षा में मानो जाने को ही खड़ी थी। कमर पर भरा घड़ा, हाथ में डोल-रस्सी! मैंने विना उसके मुँह की ओर देखे वह पत्र उसकी ओर बढ़ा दिया। पत्र देते ही मैं बढ़ चला। शायद आज रुक ही नहीं सकता था। किन्तु दस कदम ही बढ़ा हूँगा कि धड़ाम से घड़ा गिर कर फूटने की आवाज आई! घूम कर देखा तो राधारानी रो रही थी। शायद उसका भी कोई स्वप्न, यौवन का स्वप्न भंग हो गया था। उसकी वह भावना जिसके लिए ही वह अपना रूप, रस, गन्ध सब कुछ सार्थक समझती थी अब न रह गयी थी। उसने अपने बाल नोच लिये! किसके लिये? क्या यह कोई उसका प्रेमी था, और वह भी उसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

एक जहाज में था, या कुछ और ? शायद कुछ और ही, जो भी सही हो।

पर इच्छा रखते हुए भी मुझमें इतना साहस न था कि मैं उसके उस सही को जान सकता। मैं वहाँ से भी भागा। सिर पर पैर रख कर भागा। ऐसा भागा कि फिर मुड़ा ही नहीं।

और जब मैं चिट्ठिया बाँट कर फिर डाकघर लौट रहा था, तो मोड़ पर पहुंचते न पहुचते पता चला कि उस लाला की अचानक दिल की धड़कन बंद हो जाने से मृत्यु हो गई! यह क्या, हर्ष भी इतना मारक ?

"मारक!" मैं चिल्लाना चाहता था, कोसना चाहता था, किसी ऐसे को जिसने मृत्यु बनाई। जन्म के बाद मृत्यु बनाई, और वह भी इतनी स्वच्छन्द और प्रवल कि उसके लिए कोई घड़ी—घड़ी ही नहीं, कोई रास्ता—रास्ता ही नहीं। वह हर समय, हर रास्ते से, हर किसी तक पहुँच सकती है। जिस तक पहुँच चुकीं वे मुक्त हुए, जो शेष हैं, उनका पाप? और मैं? मेरा भी पाप!

उस पाप या भाग्य की यों चिट्ठी बाँट-बाँट कर प्रतीक्षा करने का साहस मुझमें न था। चाहे इसे कोइ कुछ भी कहे—जीवन से पलायन ही सही, पर मैंने यही किया और उस नौकरी से स्तीफा दे दिया।

अब मेरे वे दिन नहीं रहे जो चिट्ठीयाँ बाँटने से शुरू हो कर उनके अन्त के साथ पूरे होते थे। रहे चांद, सूरज उन्हें तो मैंने अपनी दुनिया का समझा ही नहीं। अतएव अब समझता हूँ कि मेरे दिन अब जड़ होकर बैठ गये हैं। या मेरा समय बीतता ही नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मेरा दिन न शुरू होता है न खत्म। मेरी जिन्दगी का छकड़ा जो चल रहा था अब तक दलदल में फँस गया। सदा के लिए रुक जाने को फँस गया। तो क्या इससे मृत्यु की छाया भी टल गई? मौत के रास्ते भी बन्द हो गये? मैं अमर हो गया?

इन के उत्तर मेरे पास नहीं। दुनिया जाने।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

साठ रुपये

वह पढ़-लिख कर भी अपना नाम बिसम्बर ही लिखता था और शहर के किसी दफ्तर में साठ रुपए मासिक का बाबू हो जाने पर भी उसके गाँववाले उसे बिसम्बर ही कहते थे। बड़े-बूढ़ों या यार-दोस्तों ने तो कभी इस नाम में कोई आदरवाचक शब्द जोड़ कर इजाफत की नहीं थी जब कि गाँव का कोई दूसरा लड़का, जिसका कि वह आदर्श बन चुका था, जरूर ही उसे बाबू बिसम्बरदयाल कहा करता था। पर बड़े शहर में भरापूरा परिवार लेकर ६०) की क्लर्की या बाबुई करनेवाले बाबू बिसम्बरदयाल अपने नाम के अन्तर्हित महत्त्व को जानते ही न थे। कारण यही कि ब्राह्मण के घर में पैदा होकर भी उन्होंने बचपन से ही कहीं पेशकार होने की उम्मीद में उर्दू को ही अपनी पहली जबान अख्त्यार किया था। हाँ, यह तो नहीं कहा जा सकता कि पाँच वर्ष का शिशु बिसम्बर पाठशाला के बजाय मदरसे जाकर इतना महत्त्वाकाक्षी हो गया था पर उसके माँ-बाप के ध्यान में वह महत्त्वाकांक्षा अवश्य ही प्रबल रूप से विद्यमान थी। फलतः पेशकारी के फेर में वे संस्कृत को भी संस्कीरत कहा करते थे, फिर दूसरे शब्दों में उनसे अधिक शुद्ध होने की उम्मीद ही क्या चाहे वह उनका अपना ही नाम क्यों न हो। हाँ, तो पेशकारी के बजाय क्लर्की में आ गिरने पर भी उन्हें अपने नाम का शुद्ध रूप नहीं ज्ञात हुआ था। अच्छा ही हुआ, नहीं तो इस मुहावरे को अपने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

ऊपर चरितार्थ देख कर कि 'आँखों के अन्धे नाम नयनसुख' उन्हें विशेष हर्ष या सुख न मिलता।

हमारा यह सन्देह भी पूरा-पूरा ठीक है। बिसम्बर को यह पता चलता कि वह विश्वम्भर हैं अर्थात् विश्व भर का भरण-पोषण करनेवाला—रोटी, कपड़े, पैसे इत्यादि सभी से, तो उसे अपने आपको भी भूखे मरते देख अपने नाम के इतने बड़े झूठ पर क्या आश्चर्य न होता? खैर, यह अच्छा ही हुआ कि उसे अपने नाम के इतने बड़े अर्थ का पता ही नहीं चला, साथ ही निठुर प्रभुओं को दुनिया में रहते-रहते वह यह भी भूल गया था कि विसम्वर न सही, दयालु का भी तो सीधा-सादा पर बड़ा अच्छा अर्थ है। पर जब उसे अपने पिता की प्राणान्तक बीमारी में भी एक रोज की दफ्तर से छुट्टी न मिली थी और उसने उस गुस्से को जो उसे साहब पर आना चाहिए था, अपनी बीवी पर हाथ छोड़ कर उतारा था, तो वह कैसे दयाल के महत्वपूर्ण अर्थ को समझ पाता। मतलब यह है कि जिस तरह वह ६०) की छोटी-सी परिधि में आनेवाले अनन्त सुखों से अपरिचित था, इसी प्रकार अपने नाम के महत्व से भी। नहीं कह सकते कि दुनिया में काम से ज्यादा नाम क्या इसीलिए पुजता हैं कि यहाँ ऐसे पण्डितों की कमी नहीं, जो अपने नाम तक का मतलब नहीं जानते और जो जानते हैं वे लाला छदम्मीमल का अर्थ भी लखपति या करोड़पति लगाते हैं, साथ ही मल का अर्थ भी सोना-चाँदी या इसी तरह ही धन-दौलत करने से नहीं चूकते।

किसी ने चाहे पेशकार से अचानक क्लर्क रूप में अवतरित हो जानेवाले उस २५ वर्ष के महत्वाकांक्षी पर असफल युवक को महत्व न दिया हों, किन्तु हमसे ऐसा नहीं होगा। अतएव जवानी में भी बूढ़ों की सी शक्ल लेकर घूमनेवाले उस आदमी या आदमी जैसे ढाँचे को हम बाबू बिसम्बरदयाल ही कहेंगे। हाँ, पं० विश्वम्भर-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

दयाल कहने की तो हसारी भी हिम्मत नहीं क्योंकि चाहे यह नाम भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कितना ही शुद्ध और सारगर्भित क्यों न हो, कानूनी दृष्टि से बिल्कुल गलत ठहरेगा और उनके इस नाम पर छोड़े गये खत कभी भी उन्हें न मिलेंगे, क्यों डाकिया बड़े-से-बड़े भाषा-विज्ञानी की गवाही पर भी बाबू बिसम्बरदयाल को पं० विश्वम्भरदयालु समझने की मूर्खता न करेगा।

तो बाबू बिसम्बरदयाल अपने दफ्तर की बड़ी पुरानी कुर्सी पर बैठे कुछ सोच रहे थे। इस पुरानी कुर्सी का इतिहास यह है कि यह दफ्तर की सबसे पहली कुर्सी है, जो यहाँ का आज तक का इतिहास अक्षरश; जानती हैं। पहले इस पर, जब यह जवान या नई थी, दफ्तर का बड़ा बाबू, जो शायद कभी, जवान या नया नहीं स्वीकार किया जा सकता था, बैठता था। पर बाद में बेचारी कुर्सी का महत्व इसलिये गिराना पड़ा, क्योंकि उसका साथ उसकी जवानी न दे सकी। बूढ़ा बाबू बदल कर जवान आ गया परावङ् जवान से बूढ़ी हो गई और शायद इसीलिये बाबू विश्वम्वरदयाल को इस असमय में बूढ़ी हो जानेवाली कुर्सी पर बिना उसका दिल-दर्द समझे बैठना पड़ता था। हाँ तो पहले इस कुर्सी की गद्दी टूटी थी, जो कि बढ़िया बेंत की जाली की बनीं थी। जब मरम्मत हुई तो उसका स्थान यों ही खुरदुरे से चीड़ के फट्टों ने ले लिया था। तभी किस्मत ने ऐसी दगा कि बेचारी कुर्सी का एक हाथ भी टूट गया और चूँकि बाबू बिसुम्भर दयाल जैसे आदमी और उनके बाप-दादा, यानी पुरखे भी टूटे हाथवाली कुर्सी तो क्या किसी तिपाई पर भी बाबू बन कर न बैठ पाये थे, अतएव उन्होंने उस कुर्सी पर बैठना भी अपना परम सौभाग्य समझा। वे इस पर बैठ कर समझा करते थे कि वे भी कुछ हैं; और यदि उनके दफ्तर का वह नया बड़ा बाबू उन्हें अपने सामने खड़ा हो रखे और फटकारें भीं इतना बेहिसाब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कि जिसका कुछ ठीक नहीं, फिर भी वे अपने रामू या कालू, अब्दुल्ला या सादुल्ला चपरासी को तो करारी डाट पिला ही सकते हैं। कारण कि चाहे १२०) रु० पानेवाला बड़ा बाबू अपने से भी किसी बड़े बाबू से जो १४०) रु० या इससे भी ज्यादा तनखाह पाता हो, फटकार ही पाता हो, पर १२॥) रु० महीना पानेवाले करीम या कासिम, नत्थू या फत्तू तो उसके ६०) रु० का रोब मानेगा ही, क्योंकि उसकी वे तनखाह के लगभग पाँच गुने हैं, चाहे उस पर निर्भर उसका परिवार बाबू बिसम्बरदयाल के ही परिवार के बराबर हो।

पर बात तो चल रही थी कुर्सी की और उसके महत्त्वपूर्ण इतिहास की। बहुत-सी बेढंगी बातों और अपने पतन को देख कर कुर्सी का दिमाग कुछ चिड़चिड़ा हो गया था। फलतः जिस समय की खुश्की ने उसे सिर्फ खुश्क किया, उसके फेर में आ कर उसके सीट के फट्टे धनुषाकार होते-न-होते जाने क्या हो जाना चाहते थे। फलतः उन फट्टियों को बेमेल जोड़े रखने में जो कीलें समाज की रुढ़ि या दकियानूसीपने की कोटि में आ रही थीं, उसी तरह बार-बार उठ कर अपनी जड़ें छोड़ चुकी थीं, जिस तरह रूढ़ियों की जंजीरें भी आज झनझना कर टूट जाना चाहती हैं। समाज और उन रूढ़ियों की बात तो अलग, पर यहाँ कुर्सी की फट्टियों का विद्रोह बाबू बिसम्बरदयाल के लिए ही विघातक सिद्ध हुआ। फट्टियाँ तो बार-बार ठोक-पीट कर जहाँ-कीं-तहाँ जमा दी जातीं, पर कीलें फिर से उभड़ कर बाबू बिसम्बरदयाल की थेगलियों पर थेगलियाँ लगाये बिना न मानतीं। और इस पर जब कभी वे अपने ऊपर ही झुँझला कर चुप रह जाते थे, तो चीड़ की चीड़ी फट्टियाँ अपनी संघों में उनकी जाँघों की ढीली खाल को पकड़ कर नया मजाक ही खड़ा कर देती थीं। एकाध बार बाबू बिसम्बरदयाल ने पुरुषार्थ का परिचय देते हुए बिना बिहारी या मुरारी, अलाउद्दीन या जलालुद्दीन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

की सहायता के ही दफ्तर के रूल से उन कीलों का मुँह तोड़ देना चाहा था, तो बड़े बाबू बेहद बिगड़ उठे थे। ठीक भी तो है, भला दफ्तर है कि मजाक या लुहार की दुकान! धोती ही तो फट गई कि कोई आफत आ गई। तब बेचारा बिसम्बर, नहीं बाबू बिसम्बर-दयाल, यह कह कर भी प्रत्याख्यान नहीं कर पाता था कि कल ही तो हुजूर थेगलीवाले कपड़े पहन कर आने के लिए बिगड़ रहे थे। भला इन बेलगाम कीलों की हरकतों को बर्दाश्त करते हुए मैं कैसे अपनी रईसी कायम रख सकता हूँ। और उस दिन की फटकारों का तो कोई ठिकाना रहा ही नहीं था, जब उन्होंने फट्टियों के बीच में अपने माँस या खाल को पकड़े जाने से बचाने के लिए किसी पुराने रजिस्टर से गद्दी का काम लेने की कोशिश की थी। उन फटकारों को यहाँ दोहरा कर हम अपने पाठकों की आँखों में अपने बाबू बिसम्बरदयाल की हैसियत को कम नहीं करना चाहते। ज्यादा डर तो इस बात का है कि कहीं ये सब बातें उनके गाँव के उस युवक के कानों में न पड़ जायँ जो उन्हें अपना आदर्श मानकर किसी भी मूल्य पर मैट्रिक तो पास कर ही लिया चाहता है।

बाबू बिसम्बरदयाल उसी ऐतिहासिक कुर्सी पर बैठे हुए किसी ऐसी ही ऐतिहासिक मेज पर कोहनी टेक हाथों में सिर थामे कुछ-का-कुछ सोच रहे थे। बात यह है कि महीने का आखिर था, और आज सौभाग्य से उनका रजिस्टर भर गया था। यह नौबत नहीं आई की नये महीने के पहले ही उस रजिस्टर घर ले जा कर मिट्टी के तेल की डिबिया के प्रकाश में टूटी खाट पर आधी रात तक बैठ कर पूरा करना पड़ता। यह एक स्वर्ण संयोग था कि उनका काम इस बार दफ्तर में ही दफ्तर की छुट्टी से पहले ही खत्म हो गया था। फिर भी वे छुट्टी के समय से पहले अपने घर नहीं जा सकते थे, चाहे समय के बाद तक क्यों न रुकते आये हों। इसका भी कारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

यही था कि रुपये को इस दुनिया में उन साठ रुपयों को उनकी जरूरत नहीं थी, अपितु उन्हें ही उनकी वेइन्तहा जरूरत थी, अतएव उन ६० रुपल्लियों के लिए उन्हें वाबुई में छिपी उस गुलामी और उस शोषण को सहर्ष स्वीकार कर रखा था। और करते भी कैसे न ? साठ रुपवे का मतलव केवल उनकी अपनी ही जिन्दगी न थी, अपितु सात-आठ या इससे भी अधिक प्राणियों का भी, जिनमें थे उनके बीवी-बच्चे, भाई-वहन और एक अभागा साला। और इस साठ रुपये में न केवल उन सबकी रोटी ही थी—अपितु, सबका कपड़ा भी था—सबका भविष्य भी था—लड़कों की पढ़ाई, लड़कियों की शादी, मरने-जीने के साथ-साथ लगो रहनेवाली और भी हजार वातें।

तो इस समय वे कुछ ऐसा ही सोच रहें थे। दफ्तर के हिसाब से थके उनके दिमाग के सामने एक बड़ा चार्ट—अपने जीवन का, जीवन की लरूरतों का, साठ रुपये महीने में सिमिटकर रहनेवाली जरूरतों का चार्ट—विछा पड़ा था। पर वह एक महीने में ही उसे कैसे समेटें ? वहाँ तो पिछला, या इस बीतते महीने का भी अभी वहुत कुछ था, जब कि आनेवाले महीने का तो सभी कुछ। यानी ६०) रु० और डेढ़ महीने, ६०) और ६-१० आदमी, ६०) और बड़े शहर की बड़ी मँहगी जिन्दगी, ६०) और दुनिया की वेइन्साफी, ६०) और पैसोंवालों का शोषण, ६०) और गरीब तथा शोषित की वेबसी, कमजोरी, नपुंसकता—सब कुछ।

बाबू बिसम्बरदयाल उसी चार्ट पर गौर कर रहे थे। उस लम्बे-चौड़े चार्ट में खाने-ही-खाने बने हुए थे और हर खाने पर किसी-न-किसी जरूरत का नाम लिखा था। ये जरूरतें भी कैसी पागल और अन्धी हैं, जो आदमी की हैसियत का विचार किये बिना ही उससे लिपट जाती हैं। चार्ट के पहले ही खाने में लिखा था—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

'रोटी'—जनम के भूखे आदमियों की रोटी। महीने भर की रोटी! पर वह महीना तीस दिन का नहीं था। वह शायद तीस से बहुत ज्यादा का था। पिछले महीने के दस दिनों ने उसे चालीस दिन का कर दिया था, जिसमें मोदी का वह उधार खाता भी आ जाता है, जिस पर निर्भर करके ही वे पिछले महीने के दस दिन और जीवित रह सके। मतलब यह कि महीने की तनखाह मिलने से पहले ही भूखे न मर गये, जरूरतों की फाँसी खाकर खत्म न हो गये।

बाबू बिसम्बरदयाल की समझ में ही नहीं आता था कि इस खाने में चार्ट के चारों ओर बिखरे हुए ६० रुपयों में से कितने रुपये रखें। मजा यह है कि चार्ट इतना बड़ा था और रुपये इतने थोड़े कि सैकड़ों मीलों के फासले पर एक पैसा डालने पर भी वे उस चार्ट के घेरे को पूरा न कर पाते थे। पर अब तो सवाल था चार्ट में पूरी तरह बने हुए खानों में मोटी-मोठी रकमों के रूप में बैठने का और सभी खानों को पूरा करने का। यह रोटी का सवाल एक बात से और भी बेढब हो गया था। राशनवाला उधार राशन देने को तैयार न होता था। इसलिए मजबूर हो कर चोर-बाजार से इतना महँगा अनाज खरीदना पड़ता, जो बाबू बिसम्बरदयाल के ६०) के लिये एक असाधारण बात थी। फिर भी जीने के लिए सब कुछ करना पड़ता था। इसी रोटी के खाने के नीचे कुछ जरूरी हिदायतें भी फुटनोट की शक्ल में लिखी हुई थीं! जैसे—सबको सिर्फ दो बार रोटियाँ मिलेंगी, वह भी भरपेट नहीं। दिन में कभी किसी तरह का नाश्ता न होगा, चाहे भूख कितनी भी प्रबल क्यों न हो। दूध जैसी चीज के दर्शन भी बच्चों को न कराये जायेंगे, चाहे उनकी बाढ़ ही क्यों न मारी जाय। बीमार के लिए भी किसी खास खाने, जैसे फल इत्यादि की गुन्जाइश नहीं, चाहे दुनिया का सबसे बड़ा डाक्टर ही इसकी सलाह क्यों न दे और जिनके न मिलने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पर चाहे मरीज मर ही क्यों न जाय। किसी मेहमान के आ जाने पर घर के किवाड़ बन्द हो रखे जायँगे और कैसा भी दिली दोस्त क्यों न हो, उसकी खातिर सिर्फ ठण्डे जल से ही की जा सकेगी।

इसी तरह की और भी न जाने कैसे-कैसी हिदायतें थीं, जिन्हें पढ़ने का बाबू बिसम्बरदयाल को साहस ही नहीं होता था। एक बार उनके दिमाग में आया भी कि चाहे कोई भूखा उनके दरवाजे पर ही दम तोड़ दे; पर उसे एक मुट्ठी अन्न भी न दिया जा सकेगा, उन्होंने इस हिदायत को भी मान लिया। फिर भी और बहुत-सी जरूरतों के खानों को देखते हुए वे एक भी पैसा रोटी के इस सबसे जरूरी खाने पर रख नहीं पा रहे थे। इस रोटी के खाने के सबसे ऊपर इसका आदर्श भी मोटे अक्षरों में इस प्रकार लिखा हुआ था—दूसरे देशों के आदमियों की औसत उम्र ५०-६० साल और इससे भी ज्यादा ६०-७० तक है; जबकि हमारे गरीब देश की शायद लगभग २५ साल ही। इसका कारण है असामयिक चिन्ताएँ और पौष्टिक पदार्थों का न मिलना। प्रत्येक माँ-बाप को चाहिए कि अपने बच्चों को बचपन में हर प्रकार की चिन्ता से मुक्त रखें और सब प्रकार के पौष्टिक एवं विटामिनप्रधान खाद्यों का उन्हें सेवन कराएँ, जैसे दूध, घी, फल, ग्लूकोज, इत्यादि। स्वस्थ और मजबूत बच्चे हमारे राष्ट्र की महती आवश्यकताएँ हैं, और आदर्श राष्ट्र की तो सबसे अधिक।

इस आदर्श को पढ़ कर बाबू बिसम्बरदयाल के माथे पर पसीने की बूँद चुहचुहा आईं और उन्हें लगा कि हाय, किस प्रकार राष्ट्र-विधाताओं की हत्या उनके हाथों हो रही है और किस प्रकार उनके बच्चे पौष्टिक आहार के अभाव में अपनी जिन्दगी के अधिकांश से वंचित हो रहे हैं। माथे का पसीना पोछने के लिए उनका हाथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उठना चाह कर भी उठ न सका और वरबस घबड़ा कर उन्होंने उस पहली जरूरत के खाने से अपनी दृष्टि हटा ली।

दूसरा खाना कपड़े का था और इसी के साथ एक छोटा सहायक खाना मकान का। ऊपर लिखा था—कपड़ा-मकान। इसका आदर्श इस प्रकार था—"कपड़े शरीर को सजाने में ही सहायक नहीं होते अपितु साफ और अनुकूल कपड़े शरीर को स्वस्थ भी रखते हैं।" इसी की व्याख्या और बढ़ाकर दे दी गई थी—कपड़ों को मौसम के आधार पर पहनना चाहिए। जैसे, जाड़ों में गरम और ऊनी कपड़े, गर्मी में ठंढे सूती या रेशमी कपड़े और बरसात में पतले हवादार तथा हलके कपड़े। नीचे के कपड़े जैसे बनियाइन, अण्डर-वियर इत्यादि तो हर दिन धुलने चाहिएँ, जबकि बरसात और गर्मी में पसीने से तर कपड़ों को, बिना धोये और धूप में सुखाये पहनना आत्महत्या के बराबर हैं।......इस खाने में और भी जाने कैसी-कैसी हिदायतें थीं, जिन पर बाबू बिसम्बरदयाल गौर करते डर रहे थे। उन्हें लग रहा था कि इन हफ्तों में बदले जानेवाले फटे-पुराने कपड़ों को पहन कर वे न केवल अपनी ही हत्या कर रहे हैं, अपितु अपने बीवी-बच्चों, भाई-बहनों और यहाँ तक कि साले की भी। फिर वे सोचने लगे कि कैसे उन्हें ठंढे और अपर्याप्त कपड़ों में ही जाड़े निकाल देने पड़ते हैं, जबकि बरसात में ऐसी मोटी गबरूनों में, जिनमें हवा आदि कुछ भी न छन सके। गर्मी में तो उचित वस्त्रों के अभाव में वे लुओं को ही सहने के आदी हो गये हैं। तब कैसे, इस खाने की हिदायतों को माना जा सकेगा ? हाँ, कैसे ?

और इसी की बगल में मकान के बारे में लिखा था—अच्छा मकान और अच्छी बस्ती ही जिन्दगी की दूसरी जरूरतों के समान पहली जरूरत है। अच्छी बस्ती का होना तो इसलिए जरूरी है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जिससे उसके सम्पर्क में अच्छा मकान भी बुरा न बन जाय और उसमें रहनेवाले लोगों पर, खास तौर पर बच्चों पर बुरा प्रभाव न पड़े। अच्छे मकान के लिए उसका खुला, हवादार, रोशनीदार होना जरूरी है। हर कमरा ऐसा हो, जिसमें कम-से-कम दिन में एक बार तो सूरज की किरणें अन्दर तक पड़ जाया करें। कमरों की छत ऊँची होनी चाहिए और फर्श तथा दीवारें साफ, सुन्दर बे-सीलन को। रात को सोने, दिन में उठने-बैठने, सामान रखने, रसोई बनाने और नहाने-धोने के सभी कमरे अलग होने चाहिएँ। रसोई ऐसी जगह हो कि इसका धुआँ दूसरे कमरों को काला न कर सके तथा पाखाना भी इतनी दूर कि उसका बदबूदार हवा रहनेवाले कमरों तक न पहुँच सके। बच्चों के पढ़ने-लिखने और मेहमानों को ठहराने तथा आनेवाले लोगों से मिलने के कमरे भी अलग-अलग और खास-खास ढँग के होने चाहिएँ। इसके साथ-साथ माँ-बाप को चाहिए कि अविवाहित जवान लड़के-लड़कियों को विवाहितों से अलग कमरों में सुलाएँ। घर में कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाये, तो से ऐसे कमरे में सुलाना और रखना चाहिए, जो खुला, हवादार, रोशनीवाला तो हो ही पर साथ ही एकान्त भी। मकान के बीच में, खुले आँगन का होना भी उतना जरूरी है, जितना कि उसके चारों तरफ खुली-फूली फुलवारी। मकान से सट कर बहनेवाली गन्दी नाली खुली नहीं होनी चाहिए। कोशिश तो यह हो कि नाली ही न हो। हर मकान में नल या कुएँ के पानी का भी पूरा-पूरा प्रबन्ध होना चाहिए।

बाबू बिसम्बरदयाल इन नुसखों-जैसी बातों को पढ़ते गये; पर उन्हें लगा कि हिन्दुस्तान में ऐसा सोचना तो हवाई किले बनाना है। उनकी आँखों के सामने उनकी अपनी दुनिया और उस दुनिया के अपने महल का नक्शा घूम गया। ऐसा नक्शा, जिसमें रसोईघर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

और टट्टीघर सटे हुए थे और रसोईघर ही नहानघर और भण्डार के काम में आता है। इसके अलावा सिर्फ एक कमरा है, जो उनका ड्राइंग-रूम, शयनकक्ष, गोदाम, अध्ययन-कक्ष इत्यादि सभी कुछ तो है। न अन्दर आँगन है, न बाहर बगीचा। गन्दी नालियाँ या तो सटकर बहती हैं या छतों पर से दरवाजों के पास गिरती हैं। प्रकाश और हवा के नाम तो सफाया। कमरों में दरवाजों को छोड़ कर कोई खिड़की न थी और वे भी दरवाजे न होकर खिड़की इसलिये हैं कि उनमें से गुजरते वक्त अपने सिर की रक्षा के लिए वामन को भी सिर झुका लेना पड़ता है।

यह सब पढ़-सोच कर बाबू विसम्भरदयाल का सिर चक्कर खा रहा था। उनकी इच्छा हुई कि इस वाहियात चार्ट को फाड़ दें; पर तभी शिक्षा के खाने पर उनकी नजर पड़ गई, जिसका उल्लेख इस प्रकार था—'अच्छा नागरिक बनने के लिए शिक्षा प्राथमिक आवश्यकता है। शिक्षा के द्वारा ही हम अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों को समझते हैं। तभी अपने अधिकारों के लिए लड़ सकते हैं और कर्त्तव्यों का पालन भी यथावत् कर सकते हैं। शिक्षा ही मनुष्य को मनुष्य बना कर पशु से पृथक करती है और जागरण का सिंहनाद कर उसकी अज्ञान-निद्रा भंग करती है।' हमारे बाबू साहब को ये पंक्तियाँ पढ़ने में बड़ी भव्य जान पड़ीं। इसके आगे शिक्षा के प्रकार, प्रचार, बच्चों की रुचि और उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक शिक्षण के लिए पटु अध्यापकों की चर्चा भी थी। बच्चे तो गीली मिट्टी होते हैं, जिन्हें किसी भी खिलौने की शक्ल दी जा सकती है। इसके लिए अच्छे अध्यापकों का होना आवश्यक है, जो अध्यापित की रुचि समझते हुए उसे उसकी प्रवृत्ति और योग्यता के अनुसार कार्यों में लगाएँ। तभी हमारे यहाँ अच्छे वैज्ञानिक, अच्छे दार्शनिक और दूसरे विद्वान् उत्पन्न हो सकेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

बाबू विसम्बरदयाल इस उच्च कोटि की शिक्षा-पद्धति के उल्लेख मात्र से ही प्रसन्न थे। उन्हें अपने श्यामू की याद आई, जो तोड़-फोड़ में बड़ा ही पटु है और जिस से साफ प्रतीत होता है कि वह एक अच्छा और बड़ा इन्जीनियर बनेगा। वे ऐसा अपनी पत्नी से घोषित भी कर चुके हैं। इसके आगे लिखा था—'पर ऐसी शिक्षा तभी संभव है, जब राष्ट्र की सरकार इसकी ओर ध्यान दे। वह न केवल शिक्षा को अनिवार्य कर दे, अपितु उसकी पद्धति का भी उद्धार करे। साथ ही अनिवार्य शिक्षा निःशुल्क होनी चाहिए, अन्यथा.......।' अन्यथा से आगे बाबू विसम्बरदयाल को पढ़ने की आवश्यकता ही न थी। वे भुक्तभोगी हैं। दस दर्जे तक तो उनके पिता ने उन्हें किसी तरह गाँव के खेत-जमीन बेच कर इस आशा से पढ़ा दिया था कि पेशकार बन कर गाँव को खरीद लेगा पर जब उन्होंने स्वयं पी० सी० एस० की परीक्षा में बैठने के लिए बी० ए० भी करना चाहा, तो उनका स्वप्न चरितार्थ न हो सका। आखिर उन्हें अपने भाग्य के अनुसार क्लर्क बनना पड़ा, ऐसा क्लर्क जिसका भाग्य बड़े ही निष्ठुर हाथों से बनता है—चाहे वे हाथ किसी मान लिये गये भगवान् के ही क्यों न हों। और जब बाबू बिसम्बर दयाल को अपनी असफलता का ध्यान आया, तो उनका अपने लड़के को इंजीनियर, वह भी मामूली नहीं, बनाने का स्वप्न आँखें खुलने से पहले ही भङ्ग हो गया। इस सब से उनके हृदय पर ऐसा आघात लगा कि वे उस वाहियात चार्ट को फाड़ने के लिए मेज पर रखे दफ्तर के ही रजिस्टरों को ही खत्म करने जा रहे थे कि सौभाग्य से अनर्थ होते-होते बच गया।

इस पर झुँझलाहट भी आई और हँसी भी। एक लम्बी साँस छोड़ कर बोले—'ये सब वाहियात, बेकार दिमागी पुलाव हैं। ऐसा भी कहीं बदा है किसी क्लर्क के जीवन में! मुझे तो अपने इन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

साठ रुपयों से ही अपनी जरूरतों से लड़ना है। पिछले महीने का बकाया उधार साफ करना है और अगले महीने उधार लेने से बचना हैं। मुझे तो वही खाना, वैसा ही कपड़ा-लत्ता मिलता रहे तो बहुत ! और मकान आजकल है ही कहाँ ? पगड़ी चाहिए मकान के लिए, वह भी हजार की और फिर मुझसे भी गन्दे और पुराने मकानों में लोग जून पूरी कर रहे हैं। मैं लाख से बुरा सही, दस लाख से तो अच्छा हूँ। इस पढ़ाई से भी क्या ? बड़े-बड़े बी० ए०, एम० ए० बेकार फिर रहे हैं। इंजीनियर को भी क्या पूछ ? बस म्युनिसिपैल्टी का यह मदरसा ही अच्छा। कम फीस में सस्ती पढ़ाई हो ही जाती है। फिर गरीबों का स्कूल है। बच्चे फटे-पुराने कपड़ों में भी निभ जाते हैं।

इतने से घड़ी ने छः बजाये। "अरे छः बज गये !" कह कर वे बड़बड़ाते-से उठे, "दफ्तर बन्द हो गया। चलूँ, खजानची के पास से तनखाह लेता चलूँ।" पर जब वे खजानची के पास पहुँचे तो उन्होंने उसे किसी दूसरे से शायद रामू या कालू से कहते सुना—"बस जमादार, अब तनखाह कल बँटेगी। वक्त हो गया। आखिर मेरा भी घर है। सुबह से चाँदी पर सिर मार रहा हूँ। अब नहीं।" ऐसा करारा जवाब सुन कर बाबू बिसम्बरदयाल को अपने लिये कुछ कहने की हिम्मत ही नहीं हुई और वे 'तनखाह बँटेगी' के 'बँटेगी' शब्द पर विचार करते हुए घर की ओर मुड़ चले !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

दस,
रात के दस !

दीवाल पर टँगी घड़ी ने धीरे-धीरे दस भी बजा दिये। घड़ी तो अपने घंटे पूरे करके चुप हो गई थी, पर श्रीपति के दिमाग में उनकी गूँज शाश्वत होकर समा गई थी। "दस, रात के दस !" कहते हुए बेचैन श्रीपति ने घड़ी की सुइयों पर नजर डाली। उसकी आँखों में ऐसा अविश्वास था, मानों घड़ी ने ये घण्टे बजाने में कुछ जल्दी कर दी हो। किसी की प्रतीक्षा से बँध कर उसका समय पंगु हो गया था और उस पंगु समय को वह स्वयं ही बेचैनी के साथ कमरे में इधर-से-उधर घूमता हुआ गति दे डालना चाहता था। कमरे की चार दीवालों में घूम-घूम कर पूरी तरह थक चुका श्रीपति घड़ी की उन सुइयों की तरह चल कर रह गया, जो समय की रफ्तार का ज्ञान तो कराती हैं, पर खुद उससे कोई वास्ता नहीं रखतीं। जो समय बाध्य हो कर बीत भी रहा था, वह भी उसे कटता हुआ नहीं लग रहा था। प्रतीक्षा की देहरी पर सिर पटकता हुआ उसका धैर्य बराबर क्षीण हो रहा था। अन्त में हारा-सा, चिन्ता' के विश्व का कोई सीमान्त न पा कर, श्रीपति अपनी पढ़ने-लिखने की मेज पर जा बैठा और उस पर रखी किताबों और पुस्तकों को इधर-से-उधर उलटता-पुलटता रहा। पर इससे भी उसका चंचल मन न बँधा। तरतीब से रखीं उन पुस्तकों-फाइलों को ढेर की शक्ल से बदलते हुए अचानक ही उसके हाथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: I

में एक ऐसी चीज पड़ गई, जो प्रारम्भ में बेकार और जी उबानेवाली लगी, पर धीरे-धीरे उसमें दिलचस्पी बढ़ती गई। यह दिलचस्प चीज थी एक डायरी, जो अब पुराने दोस्त के मिल जाने की खुशी-का-सा मजा दे रही थी।

दो पुराने दोस्त जब मिला करते हैं, तो प्राय: वर्तमान उनकी आँखों की ओट में चला जाता है। नवीनता के सारे आकर्षण पुरातन की स्मृतियों के समक्ष क्षुद्र जान पड़ने लगते हैं। उस डायरी की हर बात उसे ऐसी ही प्यारी लगी। वर्त्तमान से घबड़ाया आदमी इसी तरह पीछे की ओर दौड़ा करता है, कारण कि उसकी धुँधली दृष्टि वर्त्तमान के संघर्ष के परे किसी उज्ज्वल भविष्य का साक्षात्कार न कर पा कर अस्थिर वर्त्तमान के अन्धकार में ही खो जाती है।

उस डायरी के एक पृष्ठ पर लिखा था—

"जीवन एक प्रवाह है। इच्छा और कर्म इसके दो कूल हैं। आशा गति-वेग है और निराशा भ्रमर! मृत्यु-सागर में जा कर यह इच्छा-कर्म, आशा-निराशा उसी तरह अस्तित्वहीन हो कर मिलते-जुलते रहते हैं, जिस तरह सागर में भिन्न नाम और भिन्न गोत्रा नदियाँ। किन्तु जीवन का यही और इतना ही तो उद्देश्य नहीं। जीवन को गति से अधिक प्रगति को समझना है। मृत्यु तो ऐसा अवरोध है, जिसमें इच्छा-कर्म के चन्द्र-सूर्य, आशा-निराशा के दिन-रात स्वरूप-भिन्न और स्थिति हो कर मरते ही रहते हैं। फिर प्रगति क्यों रोकें?"

पर आज श्रीपति को ये विचार भाये नहीं। उसने पास हो पड़ी मोटी लाल पेंसिल को उठा कर उस पृष्ठ को जिस बुरी तरह काटा जा सकता था, काट डाला। पर इससे भी सन्तोष न हुआ और तब उसके बेचैन हाथ उस पन्ने को फाड़ ही डालने को तैयार

lepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

हो गये। तभी दीवाल-घड़ी ने फिर से घंटे बजाने शुरू कर दिये और इस तरह दस में एक और जुड़ गया। साढ़े दस का कमजोर घंटा शायद तब बजा था, जब श्रीपति डायरी के किसी दिलचस्प अंश को पढ़ रहा था। वह डायरी पर से दृष्टि हटा कर फिर से घड़ी को देखने लगा और इस बार उसे घड़ी की सभी सुइयाँ इस असाधारण तेजी से घूमती हुई दिखाई दीं, जिसका साथ उसका सिर भी घूम कर नहीं दे सकता था; पर वह सुइयों की कील की तरह चुप ही रहा। चाहे उसकी चिन्ता उन सुइयों की तरह बढ़ती ही क्यों न गई हो।

श्रीपति की डायरी के इस उल्लेख का एक भावनात्मक इतिहास भी है। जब नये विचारों के सम्पर्क में आकर उसके मध्यवर्गीय और मध्ययुगीन संस्कार हिलने लगे थे, तो जैसे जबर्दस्त धक्का देने भर के लिए डायरी के एक खाली पृष्ठ पर कुछ विचार जड़ दिए गए थे। इस महान्-कार्य से निवृत्त होकर उसने मान लिया था कि मैंने जीर्ण-शीर्ण अनुपभोग्य पुरातन संस्कारों को उखाड़ फेंका है।

इतना ही नहीं। तभी तब के युवक छात्र श्रीपति ने, जो आज लब्धप्रतिष्ठ पत्रकार और एक सुख्यात पत्र के सम्पादक भी हैं, अपने एक अभिन्न मित्र को पत्र द्वारा अपनी इस सैद्धान्तिक प्रगति का परिचय भी दे डाला था। तब उस पत्र का जो जवाब आया था, वह उसे कतई पसन्द न था। पर आज वही बहुत पुराना जवाब उसे बार-बार याद आ रहा था। उसे फिर से पढ़ने की लालसा इतनी बढ़ी कि उसने पत्र को बहुत पुराने पत्रों के बंडल में से खोज निकाला और पारायण करने लगा। डायरी के उद्धृत अंश की संगति के लिए पत्र का उद्धरण भी आवश्यक हो जाता है। पत्र की कुछ बातें इस प्रकार हैं—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: I

"भाईजी, तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी। अचानक छोटे-से पोस्टकार्ड से इतने लम्बे खर्रे पर उतर आये, यह देख कर तुम्हारी भाभी को तो जरूर आश्चर्य हुआ, पर मैं भाँप ही गया कि किसी के नाच ने तुम्हारे सुर भी बदल दिये हैं। मेरा मतलब उस लड़की से है, जिसका नाच तुम्हें बहुत अधिक पसन्द है। मगर तुम्हारी यह पसन्द एक से दो और दो से एक हो जानेवाली सीमा की ओर बढ़ती हुई दिखाई दे रही है। खैर भाई, तुम्हारी इस प्रगति से मुझे कोई एतराज नहीं, फिर भी दोस्ती के तकाजे से इतना जरूर कहूँगा कि प्रगति बुद्धि-इच्छा और सामर्थ्य के युगपत् विकास का नाम है न कि भावुकता और भावुकता से भ्रमित ऐसी बुद्धि का, जिसे अपनी सामर्थ्य तक का ज्ञान न हो।...

श्रीपति ने तो आज भी इस पत्र को पूरा-पूरा पढ़ा; पर हम स्पष्टीकरण के लिए इतना ही पर्याप्त समझते हैं। श्रीपति अपनी प्रगति की प्रेरक शक्ति को स्वयं भी प्रकट नहीं करना चाह रहा था और यही छल उसने डायरी के उल्लेख में भी किया। बहुत दिनों का संजोया यह भ्रम—छल सुख—इस उतने ही पुराने पत्र के द्वारा आज दूर हो रहा था। जाने उस पत्र को बार-बार पढ़ कर श्रीपति को कैसा लगा, कि उसने एकबारगी जोर से आँखें बन्द कर अपने आपको कुर्सी पर पीछे की तरफ को डाल दिया।

थोड़ी ही देर बाद कोई आहट पा कर उसने आँखें उघाड़ीं। पर इस बार दृष्टि घड़ी पर न जा कर साक्षात् अपनी धर्मपत्नी पर पड़ी, जिसकी वह अब तक आकुल प्रतीक्षा कर रहा था। पत्नी ने आते ही उलाहने के साथ कहा—"आज आप मेरे प्रोग्राम में नहीं आये ?"

श्रीपति अपनी चिढ़ छिपाने के लिए बेतरतीब पुस्तकों को तरतीबवार करने में लग गया। जो रोष प्रिया पत्नी की प्रतीक्षा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

में बराबर बढ़ रहा था, उसके प्रत्यक्ष होने पर प्रकट होने का साहस ही न कर पा रहा था।

पत्नी ने उनके मन की दशा को न समझते हुए प्यार-भरी कोमल आवाज में कहा—"मेज सँवारना छोड़िए। यह आपका काम नहीं। पर आज प्रोग्राम में न आ कर आप ने बहुत बुरा किया। बड़ा सफल रहा और सफलता का सारा श्रेय था मुझे। तब मेरी आँखें आप ही को ढूँढ़ रही थीं। जाने आप ही क्यों....?"

श्रीपति, जो अब किताबें सँवारना छोड़ पत्र लिखने के पैड पर लाल पेंसिल से बड़े-बड़े अक्षरों में 'सावित्री' लिख कर उन अक्षरों पर बार-बार पेंसिल घुमा रहा था, यह मानने को बाध्य-सा होता जा रहा था कि उसको सावित्री आज भी उतनी ही मधुर है जितनी कि प्रणय के उषःकाल में थी। पर भागते हुए रोष ने इस पर भी मुँह न खोलने दिया। सावित्री उसी तरह प्यार से भरी क्षण भर देख कर पति के हाथ की पेंसिल छीनते हुए बोली—"कैसी बुरी आदत है! फिर मेरा नाम लिखने लगे। मेरा नाम लिख-लिख कर सारी किताबें तो खराब कर डालीं, और बस चले तो घर की दीवालें तक रंग डालो।"

सावित्री की इस भर्त्सना से कृतार्थ हो कर श्रीपति कई बरस छोटा होकर सावित्री के प्रति उसी आग्रह से भर उठा, जिससे वह कभी उसी अनुपात में छोटी सावित्री के प्रति भर उठता था। तभी उसने कह भी दिया—"क्या करूँ! आता तो, पर काम ही से फुर्सत न मिली! फिर इतना थक गया कि घर आ कर सो कर आराम ही करने को मन करने लगा।"

सावित्री परिहास के साथ बोली—"क्यों, क्या मुझे देखे बिना नींद भी आ जाती? आप भी कितने बुरे हैं कि मुझे लेने आना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: I

"भाईजी, तुम्हारी चिट्ठी पढ़ी। अचानक छोटे-से पोस्टकार्ड से इतने लम्बे खर्रे पर उतर आये, यह देख कर तुम्हारी भाभी को तो जरूर आश्चर्य हुआ, पर मैं भाँप ही गया कि किसी के नाच ने तुम्हारे सुर भी बदल दिये हैं। मेरा मतलब उस लड़की से है, जिसका नाच तुम्हें बहुत अधिक पसन्द है। मगर तुम्हारी यह पसन्द एक से दो और दो से एक हो जानेवाली सीमा की ओर बढ़ती हुई दिखाई दे रही है। खैर भाई, तुम्हारी इस प्रगति से मुझे कोई एतराज नहीं, फिर भी दोस्ती के तकाजे से इतना जरूर कहूँगा कि प्रगति बुद्धि-इच्छा और सामर्थ्य के युगपत् विकास का नाम है न कि भावुकता और भावुकता से भ्रमित ऐसी बुद्धि का, जिसे अपनी सामर्थ्य तक का ज्ञान न हो।...

श्रीपति ने तो आज भी इस पत्र को पूरा-पूरा पढ़ा; पर हम स्पष्टीकरण के लिए इतना ही पर्याप्त समझते हैं। श्रीपति अपनी प्रगति की प्रेरक शक्ति को स्वयं भी प्रकट नहीं करना चाह रहा था और यही छल उसने डायरी के उल्लेख में भी किया। बहुत दिनों का संजोया यह भ्रम—छल सुख—इस उतने ही पुराने पत्र के द्वारा आज दूर हो रहा था। जाने उस पत्र को बार-बार पढ़ कर श्रीपति को कैसा लगा, कि उसने एकबारगी जोर से आँखें बन्द कर अपने आपको कुर्सी पर पीछे की तरफ को डाल दिया।

थोड़ी ही देर बाद कोई आहट पा कर उसने आँखें उघाड़ीं। पर इस बार दृष्टि घड़ी पर न जा कर साक्षात् अपनी धर्मपत्नी पर पड़ी, जिसकी वह अब तक आकुल प्रतीक्षा कर रहा था। पत्नी ने आते ही उलाहने के साथ कहा—"आज आप मेरे प्रोग्राम में नहीं आये ?"

श्रीपति अपनी चिढ़ छिपाने के लिए बेतरतीब पुस्तकों को तरतीबवार करने में लग गया। जो रोष प्रिया पत्नी की प्रतीक्षा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

में बराबर बढ़ रहा था, उसके प्रत्यक्ष होने पर प्रकट होने का साहस ही न कर पा रहा था।

पत्नी ने उनके मन की दशा को न समझते हुए प्यार-भरी कोमल आवाज में कहा—"मेज सँवारना छोड़िए। यह आपका काम नहीं। पर आज प्रोग्राम में न आ कर आप ने बहुत बुरा किया। बड़ा सफल रहा और सफलता का सारा श्रेय था मुझे। तब मेरी आँखें आप ही को ढूँढ़ रही थीं। जाने आप ही क्यों....?"

श्रीपति, जो अब किताबें सँवारना छोड़ पत्र लिखने के पैंड पर लाल पेंसिल से बड़े-बड़े अक्षरों में 'सावित्री' लिख कर उन अक्षरों पर बार-बार पेंसिल घुमा रहा था, यह मानने को बाध्य-सा होता जा रहा था कि उसको सावित्री आज भी उतनी ही मधुर है जितनी कि प्रणय के उषःकाल में थी। पर भागते हुए रोष ने इस पर भी मुँह न खोलने दिया। सावित्री उसी तरह प्यार से भरी क्षण भर देख कर पति के हाथ की पेंसिल छीनते हुए बोली—"कैसी बुरी आदत है! फिर मेरा नाम लिखने लगे। मेरा नाम लिख-लिख कर सारी किताबें तो खराब कर डालीं, और बस चले तो घर की दीवालें तक रंग डालो।"

सावित्री की इस भर्त्सना से कृतार्थ हो कर श्रीपति कई बरस छोटा होकर सावित्री के प्रति उसी आग्रह से भर उठा, जिससे वह कभी उसी अनुपात में छोटी सावित्री के प्रति भर उठता था। तभी उसने कह भी दिया—"क्या करूँ! आता तो, पर काम ही से फुर्सत न मिली! फिर इतना थक गया कि घर आ कर सो कर आराम ही करने को मन करने लगा।"

सावित्री परिहास के साथ बोली—"क्यों, क्या मुझे देखे बिना नींद भी आ जाती? आप भी कितने बुरे हैं कि मुझे लेने आना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

तक जरूरी न समझा। यह तक न सोचा कि देर होने पर अकेली आते हुए मुझे कैसा लगेगा !"

रोष की जाने कैसी रेखा श्रीपति के मन में अब भी शेष थी, जिससे वह सावित्री के इस आरोप का उसके प्यार का अधिकार मान अपने को अपराधी स्वीकार कर ही न सका। न चाह कर भी बड़ी निर्दयता से वह कह बैठा—"मेरे न आने से क्या हुआ ? तुम्हें घर तक छोड़ आने के लिए तो जाने कितने लोग लालायित रहते हैं ! तुम्हें भी तो उन लालायितों की लालसा को चरितार्थ करने का अवसर देने में आनन्द आता है।"

सावित्री पर जैसे वज्र गिरा ! आज तक तो श्रीपति उसके प्रति इतना निर्मम कभी न हुआ था। फिर भी वह चुप रही। आँखें, जो वेदना-जल से तरल हो गई थीं, उनमें बलात् लाई हुई मुस्कान तिरने लगी थी। श्रीपति भी कह कर मन-ही-मन पछता रहा था। अब वह न चाहता था कि यह अप्रिय प्रसंग कुछ भी बढ़े। फलतः उसे सावित्री के खाने, पीने और सोने के आदेशों को सुबोध बच्चे की तरह मान कर सब कुछ करना पड़ा।

अगले दिन सावित्री ने, जब श्रीपति का मन प्रभात-कुसुम-सा खिल रहा था, प्राची में उदित उषा की तरह राग का विस्तार करते हुए कहा—"लीजिए, आज से मैं किसी सार्वजनिक समारोह में न जाऊँगी ! आपकी प्रीति के लिए ही यह करती थी, आपको प्रीति के लिए ही न करूँगी ! मैं आज तक जान ही न सकी थी कि आप को यह सब कुछ पसन्द नहीं। आप सदैव मेरी कला की ख्याति में अनुकूल रहे, इससे मुझे अन्यथा समझने का मौका भी न मिला।"

जिस तरह विकच पुष्प कुबेर हो कर अपनी गन्ध, रस और वर्ण के कोप पवन, भ्रमर और प्रकाश के लिए मुक्त कर देता था, उसी तरह श्रीपति ने भी पुरुष-मनोवृत्ति की संदिग्धता और संकीर्णता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

का परिहार कर प्रसन्न-हृदय को अकृपण उदारता का परिचय देते हुए कहा—"ऐसा तुम भला क्यों सोचतो हो सावित्री ? तुम्हारी प्रसिद्धि मेरी भी तो प्रसिद्धि है।"

सावित्री कृतार्थ हो गई।

और इस प्रकार कृतार्थभूता सावित्री ने कभी भी सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित हो कर अपनी कला-द्वारा सार्थक करने के किसी भी आमन्त्रण को यथासम्भव अस्वीकार किया ही नहीं। किन्तु श्रीपति कहने में जितना उदार था, करने और निभाने में उतना प्रमाणित न हो सका। जब वह स्वयं अपनी श्रीमती के प्रदर्शनों में सम्मिलित होता और पुरुष-समाज की लोलुप आँखों को साधुवाद के छद्म में दुष्टता करते देखता, तो सावित्री के प्रति हो अकरुण हो उठता; कारण कि सावित्री अपनी कला के शृङ्गार और स्वयं की प्रतिष्ठा-भावना से इतनी विभोर रहती थी कि प्रत्येक के हास का स्वागत मुस्काने बिछा कर करती और जान भी न पाती। श्रीपति अपने घर पर अपनी ही उपस्थिति में देखा करता कि सावित्री आमन्त्रणों की आग्रह-रक्षा में स्वयं कैसे युवक-आग्रह से भर उठती है। कला, जो सहज ही कलाकार में खिल कर भी स्वेतर भावक की निष्ठा का त्याग नहीं कर पाती, सावित्री को कुछ ऐसी मोहक दुर्बलता से भर डालती कि वह अपने हृदय की तृप्ति अन्य जनों की तुष्टि और स्वयं की स्तुति में ही समझती।

श्रीपति सावित्री से इस सब कुछ के साक्षात् विरोध का तो साहस न कर सका, फिर भी उसका चिर-पोषित असन्तोष एक दिन सम्पादकीय में प्रकट हो ही गया। उसने अपने पत्र के सम्पादकीय में नगर में होनेवाले नृत्य-संगीत के आयोजनों की अनावश्यक बहुलता, द्रव्य और समय के दुरुपयोग पर कटु टिप्पणी लिखते हुए यहाँ तक लिख डाला कि—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

"स्त्री प्रकृति से प्रदर्शन-प्रिया है। उसे स्वयं के रूप और कला का इतना मोह है कि उसे मुग्ध और लोलुप समाज की आतुर प्रशंसा चाहिए ही। इस प्रकार कला के छद्म में मानसिक 'विकार को पूरा-पूरा खुल खेलने का अवसर मिल रहा है, जिसका प्रसार मन की सीमाओं को भी तोड़ता जान पड़ता है। अग्नि और ईंधन के संयोग से जैसे परिणाम की आशंका की जा सकती है, वह स्त्रियों के चाटुकार पुरुषों और पुरुषों की प्रशंसाकांक्षिणी स्त्रियों के सम्पर्क में आने पर नितान्त स्वाभाविक है। जब परिणीताओं को भी गृहिणीत्व की उपेक्षा करके इसी प्रकार के कलात्मक व्यसनों में लिप्त देखा जाता है, तो स्वाभाविक दुष्परिणामों की आशंका के आधार पर यही कहा जा सकता है कि पत्नियों को अपनी अतृप्ति की तृप्ति के लिए पति नहीं; किन्तु विवाहित होने का प्रमाणपत्र चाहिए—ऐसा प्रमाण-पत्र, जिसके शत-शत उदाहरण वे सभी स्त्रियाँ हैं, जो विश्वासी किन्तु मूर्ख पतियों के प्रति इसीलिए अधिक सदय और अनुकूल रहती हैं, जिससे वे भी उनके मार्ग के प्रतिकूल न जा पड़ें। यदि समाज को प्रगति के नाम पर प्रगति के अंधकूप में गिरने से बचाना है तो शीघ्र ही ऐसे उच्छृङ्खल तत्वों का दमन और दुःशील प्रवृत्तियों का शमन करना होगा।"

यह टिप्पणी सावित्री ने भी पढ़ी। वह भी नहीं कि संयोगवश ही पढ़ी हो। टिप्पणी और उसके लेखक को देख कर तो स्पष्ट था कि लक्ष्य सावित्री ही थी और सम्पादक महोदय को दूसरे लोगों की पत्नियों की चारित्रिक नैतिकता की रक्षा की उतनी चिन्ता न थी, जितनी अपनी ही धर्मपत्नी की। अतएव अनायास ही ऐसी व्यवस्था भी की जा सकी, जिससे सावित्री भी उसे पढ़ती और अवश्य पढ़ती, अन्यथा लेखक का मनोरथ ही नष्ट हो जाता। उस व्यवस्था का उल्लेख करके हम अपने परम मित्र लेखकवर्गीय श्रीपति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

को किसी के भी सामने छोटा नहीं बनाना चाहते; पर उसके सत्प्रयत्नों की परिणति जिस रूप में हुई, उसका उल्लेख अवश्य करेंगे।

दो दिन बाद ही, सभी स्थानीय दैनिक और अन्य पत्रों में श्रीमती सावित्री श्रीपति के आत्मघात के समाचार के साथ-साथ उन्हीं का यह संक्षिप्त पत्र भी प्रकाशित हुआ था, जिसे हम यहाँ ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर रहे हैं—

"प्रिय, आपने अपनी पत्नी से प्रणय तो किया; किन्तु उसे प्रणय का एक पुष्प दे कर उसके जीवन के समस्त सौरभ को आत्मसात् कर लेना चाहा। इससे तो यही सिद्ध हुआ कि तुम्हारा प्रणय भी केवल वह पुरुष-इच्छा थी, जो सामान्य जनों की वासना से विशिष्ट नहीं। स्वयं आपने मुझे तब पत्नी-रूप में अङ्गीकृत किया, जब मेरी कला और कीर्ति से परिचित ही नहीं, प्रभावित भी हो चुके थे। पर खेद कि अपने प्रणय को, जिसके प्रकार हैं, आकार नहीं, विस्तार-शून्य से विस्तारबद्ध करने की घातक चेष्टा की, जिससे यह भी सिद्ध हुए बिना न रहा कि पुरुष के लिए पत्नी का अर्थ दासी ही है। प्यार के लिए प्यार में दास्य-भाव माना जा सकता है; किन्तु पति के लिए पत्नी में नहीं। यदि इनमें से एक स्वामी है तो दूसरी स्वामिनी। स्वामिनी को दासी-रूप में देखने की आकांक्षा रखनेवाले स्वामी को भी तो दास बनने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। स्त्रियाँ शब्दों के सछल प्रयोगों-द्वारा इसी प्रकार प्रवञ्चित हो रही हैं; किन्तु युग की प्रगति में यह प्रवञ्चना अधिक कालव्यापी न रह सकेगी। इसी प्रवञ्चना में मैं आज प्राण और प्राण-प्रिय से भी वंचित हो रही हूँ, पर अपनी सभी बहनों से प्रार्थना करूँगी कि वे दृढ़ता-पूर्वक अपने अधिकारों की रक्षा करें!"

सभी जानते हैं कि सावित्री ही आत्मघात से पूर्व यह पत्र विविध समाचारपत्रों को वितरणार्थ डाक द्वारा भेज चुका था। श्रीपति इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पत्र के प्रकाशन के पूर्व ही अपने नाम पृथक् से छोड़े गये पत्र के द्वारा सावित्री के नारी-जगत् को संदेश और पुरुष-कुल की अन्तर्वासना को जान चुका था। पर सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात उसने यह जानी कि व्यक्ति अपने पूर्व युगों के जिन संस्कारों को प्रायः मृत या उन्मूलित मान लेता है, वे अधिक-से-अधिक आवृत्त या मूर्च्छित हो हो पाते हैं। इसी सत्यानुभूति को ले कर उसने अपनी उसी पुरानी डायरी के किसी शून्य पृष्ठ पर वह लिख कर जाने वन, पर्वत, सागर में से किस का रास्ता लिया था,—

"संस्कारों की सत्ता युगों के प्रवाह स्थापित करते हैं, और उनकी महत्ता वैसे ही काल-प्रवाह प्रमाणित। अतएव पूर्वयुगीन संस्कारों की सत्ता, महत्ता तब तक सर्वथा उन्मूलित न हो सकेगी जब तक नवयुग मृत युगों से आमूल विच्छेद करके न चले। इसके लिए सर्वतोमुखी शान्ति अपेक्षित है। अन्यथा गति को ही प्रगति समझे रहने का मोह बना रहेगा, जिसका परिणाम यही होगा कि तथाकथित प्रगति के सभी निर्माण संस्कारों के कोड़ों से अन्दर-ही-अन्दर खाये जा कर सर्वान्त से दूर न रहेंगे। प्रत्येक व्यतीत युग में पुरुष और नारी में प्राकृतिक से अतिरिक्त सामाजिक अन्तर भी पैदा किया गया है, जो शक्तिमान् पुरुष के विकार प्रयत्न और विनाश सर्जन से कम कुछ नहीं। नवयुग इस विचार को समझ कर विनाश से बचे और सच्चा विकास करे।"

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

अमरत्वा

उसका नाम रामधन था। यह नाम इतना सार्थक था कि धन के नाम उसका सब कुछ राम ही था। उसके पिता या पिता के भी पिता शायद बड़े भारी राम परायण थे, जो उन्होंने उसे अपना सर्वस्व जान कर रामधन कहना ही उचित समझा। यह भी हो सकता हैं कि उसकी माँ की माँ को, अथवा बाप की माँ को दौहित्र या पौत्र मुख-दर्शन को लालसा लिये-दिये ही यह लोक-लीला समाप्त कर देनो पड़ी हो और जब परलोक गमन करने लगी तो उन्होंने अपने जामाता, पुत्र या पुत्रवधू से बड़ी आशाओं के साथ कहा हो—"लल्ला हो तो उसका सिर्फ एक ही नाम रखना, रामधन।" कदाचित् इसी से जब नानी-दादी की अन्त्येष्टि कर कुलभूषण लल्ला उत्पन्न हुए तो उनका नाम रामधन ही रख दिया गया। हो सकता है कि आज लोग रामधन के नाम के गूढ़ इतिहास को न जानते हों। नामों की आज दिन परवाह करता भी कौन है। परम निर्बुद्धि को बुद्धिसागर और परम निरक्षर भट्टाचार्य को विद्यासागर कहनेवाले भी तो इसी युग के जीव हैं। बलराज और बलराम नाम वालों का बल भी नामाक्षरों की परिधि नहीं लाँघ पाता। इसी तरह कंगाल से कंगाल भी अपने सुपुत्र का नाम लक्ष्मी-पति रख लेते हैं। बड़े-से-बड़े निखट्टू अपने कुल-भूषणों का नाम राम या कृष्ण रखने से नहीं चूकते चाहे वे कुल-भूषण बाद में कुलांगार ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

क्यों न प्रमाणित हों। पर यह हम दावे के साथ कह सकते हैं कि रामधन के नाम में ऐसा अर्थ असामर्थ्य अंशमात्र भी न था।

रामधन निराश बुढ़ापे की औलाद होने के कारण अपने माँ-बाप के लिये राम के दिये धन के समान था। इसी से कंगाल रामधन के घर में बार-बार लक्ष्मियाँ अवतार ले रही थीं और उनके आनन्द उत्साह को देख कर जान पड़ता था कि अब नौ दुर्गा पूरी होने में कोई विलम्ब नहीं। इतना ही नहीं, कहीं इस निर्धन परिवार पर लक्ष्मियों की अनुकम्पा ऐसी ही भरी-पूरी रही तो दुर्गाओं की पुराण काल से चली आई नौ की मर्यादा भी टूटे बिना रहनेवाली न थी। पर जब आठवें वर्ष लड़की के स्थान पर लड़के ने जन्म ग्रहण किया तो रामधन ने अपने हृदय की समस्त श्रद्धा-भक्ति सहित भवानी दुर्गा के प्रति अपनी असीम कृतज्ञता प्रकट करते हुए जवानी में भी गत यौवना-पत्नी गृहलक्ष्मी से कहा था—जाने पुरखों के किस पुण्य से देवी ने यह एक लड़का दिया।

पुरखों का पुण्य बल इसी से कि यदि कोई हिन्दू प्रजोत्पत्ति द्वारा पुत्र लाभ न कर सके तो उसकी इस शारीरिक हीनता या प्राकृतिक विवशता की दुर्दशा उसके स्वर्ग या नरक में पड़े पुरखों को ही भोगनी पड़ती है। फलतः वे स्वर्ग में हुए तो नरक में ढकेल दिये जाते हैं और नरक में हुए तो उद्धार की आशा से भी हाथ धो बैठते हैं। इसे न्याय कहिए या अन्याय पर हिन्दू का दृढ़ विश्वास यही है। जब रामधन ने पुत्र-जन्म पर देवी की कृपा के साथ-साथ पुरखों की भी प्रशस्ति की तो उसका आशय यही था कि हमारे पुरखे उर्वशी का उपभोग कर रहे हों चाहे रौरव का वास, अब इस कृष्णधन के अवतार के साथ अभय हो गये कि तर गये।

रामधन का पुत्र कृष्णधन? बात जमती नहीं! राम कृष्ण में पिता-पुत्र का संबंध कैसा? असल में हमारे यहाँ नामकरण में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

इतनी छूट है कि सीता नाम की स्त्री अपने बेटे का नाम राम रख सकती है। वे रामचन्द्र अपने पुत्र को रघु पुकार सकते हैं। मगर इस कृष्ण नाम की एक और सफाई है। इस नाम में उत्तर पद ही प्रधान है। इसलिए 'धन' ही विचार योग्य है, राम या कृष्ण नहीं। कहावत है कि धन ही धन कमाता है, इसी से धन के घर में धन का अवतार हुआ बस अब इस नाम के बारे में हुज्जत न करियेगा।

रामधन ने जब गृहलक्ष्मी के मुँह पर अपने पुरखों के पुण्य का बखान किया तो जच्चा-घर की उस कालो अँधियारी कोठरी में भी उसकी गड्ढों में धँसी आँखें चमक उठी थीं। इतना ही नहीं उस सात लड़कियों की माँ में लज्जा का भी ऐसा अभूतपूर्व संचार हुआ कि उसके पोपले पीले गाल गुलाब हो गये थे। तभी उस लज्जावनिता ने अपने आप को व्यस्त रखने के लिए अपने दुग्ध-विहीन चिथड़े से स्थन को कुलतारन के मुँह में दे दिया था।

पुरखों के पुण्य से अधिक था गृहलक्ष्मी का पुण्य। वह पुत्रवती होकर आज तर गई थी। आज से उसकी कोख का लांछन, निपूती देवी की कुख्याति जिसके लिये रामधन भी जिम्मेदार हो सकता था, दूर हो गई थी। थोड़ी ही देर बाद उसने अपने कृष्णधन को दूध पिलाना छोड़ छाती से चिमटा लिया था। कह नहीं सकते कि कोख के लांछन के दूर हो जाने के हर्ष में या उन चमड़े की थैलियों में दूध तो दूध रक्त की बूँद न होने की बेबसी से!

चौखट पर खड़ा रामधन, मुंशी या बाबू रामधन जाने किस दुनिया में घूम रहा था। उसकी मृत आकाक्षाएँ पुनरुज्जीवित हो कर कल्पना के पंखों के सहारे जाने किन अज्ञात लोकों में जिनमें स्वर्ण के पर्वत, दूध के सागर और कल्पद्रुमों से फली धरती होगी, उड़ रही थीं। वह इस क्षण भूल गया था कि जब दिल्ली जैसे बड़े और मँहगे शहर में चालीस रुपए की क्लर्की में एक जीव भी नहीं पल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सकता तब सात-सात लड़कियों को—नंगी, भूखी, रोग-ग्रस्त, शिक्षा और स्नेह से वंचित लड़कियों को लेकर किस तरह जीवन की टूटी गाड़ी खींच रहा है। अब इस एक और कुलतारन कि कुलबोरन रामधन के पुत्र कृष्णधन के अवतार पर कैसे काम चलेगा? क्या सात-सात लड़कियों, पत्नी और खुद की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी कर लेने के बाद भी चालीस रुपयों में से ऐसी विपुल धनराशि शेष रह जायगी जो कुलतारन की शिक्षा-दीक्षा में सहायक हो सकेगी?

पर तब रामधन को यह चिन्ता न थी। वह तो मन ही मन उसका कृष्णधन नामकरण कर अपनी कुलोन्नति की सराहना कर रहा था। उसकी यह भावसमाधि तब टूटी जब गौरी ने काली के बाल नोच लिए और उसके रोने से पहले आप भी रो उठी थी। दुर्गा भवानी को चुरा कर कुछ खाने के सन्देह में उसके गले को चीर-कर हलक तो हलक पेट तक की तलाशी लेने के इरादे से शृगालनाद कर रही थी। पार्वती और गिरिजा भूख-प्यास से बिल-बिला रही थीं। और बरस भर पहले पैदा हुई चण्डी सरकती रप-टती रामधन के पास आ कर उसकी टाँग पकड़े किसी फरमाइश के लिए उठने का अद्भुत प्रयत्न करती न करती असफलता के रोष में चिल्लाने लगी थी। तभी उसकी पत्नी गृहलक्ष्मी ने वास्तविकता समझाते हुए कहा था—बारह तो बज गये होंगे? बच्चों के भी खाने की कुछ सुध कर ली होती!

तब रामधन ऐसा चौंका मानों किसी ने अधपकी नींद में उसे जगा दिया हो। बच्चों की भूख ने उसे कर्म की प्रवृत्ति दी पर जब रसोईघर में रखे नाममात्र के अन्नागार को टटोल कर हवा में मुट्ठियाँ भरता हुआ ही रह गया तो उसकी समझ में आ ही न पा-रहा था कि बड़ी-बड़ी जेबों में पड़ी पाँच-सात आने की रोकड़ कैसे इन बच्चों की भूख मिटा सकेगी जब कि पत्नी के उपचार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

और पथ्य का भी प्रबन्ध करना हैं। पत्नी का उबकाई आना अभी बन्द न हुआ था और कुलतारन की भी पसलियाँ बलगम से ऐसी ठसाठस थीं कि उसे जीने के लिए माँ से पहले हकीम की जरूरत थी।

गृहलक्ष्मी को भी जब ध्यान आया कि घर में तो भुँजी भाँग भी नहीं तब शायद पति के नाम में निहित धन की आशा लगा कर कह बैठी थी—देखिए मेरी फिक्र की तो जरूरत नहीं, पर बच्चों के लिए जरूर ही कुछ कर देखिए।

रामधन सुन कर सह सका, छोटी बात नहीं। फिर भी वह सोचता गया। बाजार की मँहगाई से ये पाँच-सात आने क्या पा सकेंगे। स्त्री, उसकी भी फिक्र कैसे नहीं। उसकी फिक्र का ही मतलब हैं हम सब की फिक्र। कुलतारन की फिक्र। दोनों को ही डाक्टर चाहिए और डाक्टर का मतलब है—पैसा!

चारों ओर से उसे घेर कर जरूरतें चिल्लाने लगीं—पैसा, पैसा, पैसा! तब उसके निराश मन में आया कि उन पाँच-सात आनों को भी किसी कुएँ या नदी में फेंक दे। 'डूबते का सहारा तिनका' यह तो सिर्फ कहावत की बात है। उस का सिर घूम रहा था। एक ओर अभाव घोर अभाव। इसकी घोर आवश्यकता, उत्कट आवश्यकता, जरूरतों की चक्की में पिसता हुआ कंगाल रामधन कुलतारन के अवतार के हर्ष में अधिक काल तक भूला रह ही न सकता। सहसा उसका पुत्र-प्रेम रोष में परिणत हो गया। वह चीख उठा भला यह कुलतारन मेरे पुरखों का पुण्य है कि जीते माँ-बाप का पाप? यह मरों को क्या तारगा जो जिन्दों को ही डुबो रहा है।

इसी तरह सोचता-सोचता मन-ही-मन वह कभी अपनी लोलुपता पर बिगड़ता तो कभी पत्नी की शूकरी-वृत्ति पर या कोसने लगता सात-सात लक्ष्मियों के भाग्य को। पर इससे क्या? पैसे की दुनियाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

में पैसे का काम पैसा ही करता है। सोचना, झल्लाना, कोसना या रोना-पीटना सब बेकार।

वे पाँच-सात आने रामधन का बहुत अधिक साथ न दे सके। मँहगे बाजार की सोने-चाँदी की ईंटों में उन कुछ घिसे पैसों को फेंक कर जब उसे उनका निशान भी ढूँढ़े न मिला और पास ही की दूकान के कैलेण्डर ने बताया कि चालू महीने के खत्म होने में सत्रह दिनों यानी सत्रह युगों की देर है, तो उसकी आँखों के आगे की दुनियाँ ही घूम गई।

सुनते हैं कि दुनियाँ बराबर घूमती आ रही है, ऐसी कि कभी उसका घूमना बन्द हो ही नहीं सकता। जन्म-मृत्यु, दिन-रात, सुख-दुःख, पाप-पुण्य, स्त्री-पुरुष, अभाव-आवश्यकता आदि-आदि के युगों में घूमती ही रहती है। जब रामधन ने देखा कि इन सब के साथ दिन-रात, जन्म-मृत्यु और अभाव-आवश्यकता में जकड़ी हुई उसकी गृहस्थी भी घूम पड़ी है जिसके चक्र के नीचे आ कर उसकी वासना का शिकार धर्मपत्नी मर रही है तो वह उसे बचाना चाह कर भी पैसे की दुनिया में बिना पैसों के बचा न सका।

फिर जब अपनी जीवन-संगिनी के सुन्दरता के शव को छार कर और छार को भी यमुना में विसर्जित कर घर लौटा तो मातृ-विहीन कुलतारन को छाती से लगाकर रोये बिना न रह सका। मगर आँसुओं के थमते न थमते वह कुलतारन के प्रति विरक्ति से भर कर उसे मातृहन्ता समझने लगा। उसने उसकी ओर से मुँह फेर लिया। पर जब भूखा-प्यासा फूल-सा बच्चा बिलबिलाया तो रामधन का गरीबी से दूषित पितृ-हृदय भी अधिक कठोरता का व्यवहार न कर सका। उसने उसे आवेश से भर कर छाती से चिमटा लिया जहाँ वह कुलतारन उसके वक्षपंजर में मातृ-स्तन को खोज-खोज कर हारा और जोरों से रोने लगा, इतने जोरों से कि रामधन ने उसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

निर्ममतापूर्वक पटक दिया और पटक कर आप भी फूट-फूट कर रोने लगा।

रामधन की उस मास की तनखाह अन्त्येष्टि में ही अन्त हो गई थी। मृतक के नाम पर रुपयों को पानी में फेंकता हुआ वह समझ ही न पा रहा था कि मिट्टी और जीवन में किसका सम्मान उसका कर्तव्य है। जिन पैसों को माँ जीवित होने पर बच्चों के जीवन के लिए व्यय करती उन्हें उसने बच्चों के जीवन की उपेक्षा कर माँ की मिट्टी को ठिकाने लगाने में पुण्य किया या पाप—इसे कौन जाने? रामधन जिस समाज का अंग है उसका इतना ही कर्तव्य है कि वह दूसरों को कर्तव्यविमुख होने ही न दे। उनकी जरूरतों और मजबूरियों की ओर तो उसकी नजर जाती ही नहीं। इसी कर्तव्य-भीरुता में रामधन के तीस दिन का जीवन समाप्त हो गया।

अवशेष था रामधन और सातों लक्ष्मियों से प्रिय कुलतारन कृष्ण-धन! प्रिय इसलिए कि वह पुरखों का नाम अमर रखेगा! बस वह उस वंश-गौरव को अपने नामों के समान वहन करने लगा। अब वह कुलतारन सर्वस्व था।

एक रात वह अपने उस सर्वस्व को लिए उस एक मात्र खटिया पर जिस पर उसके पैर घुटनों तक लटके ही रहते थे, लेटा हुआ था। उसके चारों ओर नंगी धरती पर सप्तलक्ष्मियाँ सोई पड़ी थीं कि बिखरी पड़ी थीं! अचानक नींद की गोद में जा कर वह स्वप्न देखने लगा! उसने देखा—भूख-प्यास से संत्रस्त जब अचानक ही उसके अभावमय जीवन के मरु में एक अमृत का सोता उमड़ पड़ा। सोते को देखते ही वह निहाल हो गया और वह अमिट साध के साथ उस अमृत जल को पीने लगा; पूर्ण-तृप्ति के पश्चात् जब उसने अमृतपान बन्द किया तो कोई अन्तरिक्ष का देवता या उस कुण्ड का यक्ष घोषणा कर उठा—'जा बेटा, इसी क्षण से तू अमर हुआ।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

'अमर' प्रसन्न होकर उसने अपने जीवन के आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, चारों ओर दशों दिशाओं में देखा जो उसकी अमरता के उपरान्त भी अभावों से भरी पड़ी थी। वह आर्त होकर चिल्ला उठा—'अरे यह कैसा शाप दे डाला देव! मेरे साथ-साथ मेरी दरिद्रता, मेरे अभावों, प्रपीड़नों और विडम्बनाओं को भी अमर कर डाला। आः, इन अभावों की अनन्तता का पार कैसे कोई भी अमरता पा सकेगी।' निराशा के उस तिमिरशाप में वह आत्महत्या के संकल्प से उस अमृत-कुण्ड में कूद पड़ने को उद्यत हुआ। कदाचित् मर सकता। तभी उसने अनुभव किया कि अमृत का सोता उसके आँसुओं से उफन पड़ा है और वह खुद उसके वेग में अब बहा कि अब बहा।

इसी घबड़ाहट में रामधन की आँखें खुल गईं। जाग कर उसने देखा कि कुलतारन कृष्णधन के पेशाब की धार ठीक उसके ऊपर पड़ रही है। स्वप्न का मोह अभी तक शेष था। उसी मोह में उसने सोचा—कुलतारन कृष्णधन उसके वंश की अमरता ही नहीं अपितु दरिद्रता और अभावों की भी चिरन्तनता है। तब क्यों न अमरता के इस अभिशाप को समाप्त कर दूँ।

तत्क्षण उस अन्धकार में रामधन के ऐंठते हुए हाथ कुलतारन कृष्णधन का गला खोज रहे थे। लक्ष्मियाँ तब भी सोई पड़ी थीं।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

एक खरा, एक खोटा

मैं प्रायः सोचा करता था कि दुनिया गोल क्यों है? यह बचपन का सोचना था, जिसका समाधान इस बड़ी उम्र में जा कर हो ही गया। आज मैं जान गया हूँ कि इस दुनिया को चलानेवाला पैसा या पैसे का भी बाप रुपया गोल है, इसी से यह पैसे की माँ या उसके बाप की गुलाम दुनिया भी गोल है। मेरी इस बात में कोई विश्वास न रखे, तो मुझे कोई एतराज नहीं। मुझे तो गोल रोटी की भूख ने बता ही दिया है कि जहाँ-जहाँ पैसे के बाप के पैर की गोल छाप पड़ी वहाँ-वहाँ गोल दुनिया ही बन गई। इस गोल दुनिया में हर चीज का पर्याय पैसा है और यही इसके जानने की विधि भी है। इतना ही नहीं यहाँ बुद्धि का मतलब भी पैसा है, बड़प्पन का अर्थ भी है पैसा!

रह गई बात खूबसूरती की। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि खूबसूरती की हदें भी इसी पैसे में हैं। जवान और तन्दुरुस्त सूरतें जब तेजी से चलती हुई फिल्म की तरह आँखों के आगे से निकल जाती हैं तो देखनेवाले के दिल पर जिस खूबसूरती की छाप रह जाती है—यह होती है पैसे को ही!

जब मैं साक्षरता की सीमा लाँघने ही वाला था तो मेरे भविष्य के जिम्मेदार बन्धुओं ने मेरी आगे की पढ़ाई का विरोध करते हुए कहा—अब इस पढ़ाई का मुँह काला करो। कुछ ऐसा पढ़ो, जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

तुम्हें गोल दुनिया की रफ्तार बताये। इस दुनिया में सफलता के लिए डिग्रियों से ज्यादा कामयाब होती हैं थैलियाँ।

पर मैं विद्यावारिधि बनने के फेर में इस बात का कायल न हो सका। मुझे तिजोरियों की अपेक्षा पुस्तकालय प्यारे थे। बस इसी धुन में कुबेरपंथी न बनकर बुद्धि के देवता गणेश की सलाह से सरस्वती की पूजा शुरू कर दी। लक्ष्मी को घर से निकाल बाहर कर देने के लिए इतना ही काफी था।

तब मैं इतना दूरन्देश न था जो जान पाता कि सरस्वती पर दिमाग दीवाना हो सकता हैं, दिल भो दिल दे बैठ सकता है, पर पेट उसका पढ़ाया पाठ नहीं पढ़ सकता। पेट को तो भाव और शब्द नहीं, रोटियाँ चाहिए। इस पेट के न भरने पर देह का दैत्य भी हार मान लेता है, भूख और काम के जोरों से चलनेवाली देह की मशीन के दिल और दिमाग तो निहायत बेकार पुर्जे हैं। पर जब मेरे सिर पर से कल्पद्रुम सदृश पूज्य पिताजी का वरदहस्त उठ गया, माँ निरी ममतामयी न रह कर इच्छामयी हो गई, छोटे-छोटे भाई-बहन सिर्फ प्यार से न बहलाये जाकर जब कुछ और उम्मीद करने लगे तो मेरी सरस्वती की सुन्दर मूरत धुँधला गई और किताबों के जिस किले में बैठ कर मैंने स्वयं को जरूरतों के हमलों से अभय मान लिया था, ताश के महल को तरह किस्मत के मजाक के हाथ से ढह गया।

मरी अनन्त स्नेहमयी माँ को भी अब मेरी सरस्वती की चरण-सीमाओं में मस्त रहना न भाता। जब तक उनके गहने और पास की रकम मेरी सरस्वती के पेट भरने के लिए बाकी रही तब तक तो वे चुप ही रहीं, पर अब फाके की नौबत आई तो उन्हें स्पष्ट कह देना ही पड़ा कि इसे सरस्वती के पूजा-मन्दिर से निकाल कर कारखाने में काम करने के लिए भेजो और लक्ष्मी के मन्दिर में प्रतिष्ठित कर पूजा करो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

यह सब जब मैंने खुली आँखों से देखा तो देख कर मान ही लेना पड़ा कि मेरी स्नेहमयी माँ अभावमयी हो गई है, दुलारे भाई-बहन दीन पड़ गये हैं। बस मेरी आँखों के सामने की हर चीज गोल हो गई। गोल हो कर तेजी से घूमने लगी, और तभी मैंने जाना कि धरती गोल है।

अब मैं लक्ष्मी-पूजन का प्रयोग करने लगा, पर जाने भली सरस्वती ने मेरी सूरत कैसी बिगाड़ दी थी कि लक्ष्मी को मैं मोहित कर ही न सका। मैं लक्ष्मी की कृपा के लिए उसका मुँह निहारा करता जब कि अनुभवी जन समझा-समझा कर हार गये कि—पैर निहारो। पर किताबी किले के ढह जाने पर भी मैं इतना नीचे न आ सका था कि लक्ष्मी के पैरों में मस्तक ले जाना गवारा करता।

किसी तरह दिन गुजारते-गुजारते एक दिन अचानक ही जोरों की भूख लगी—रोटी की नहीं, रुपये की। क्षणभर में पेट तो पेट दिमाग तक में ऐंठनें पड़ गईं। माँ ने रोते हुए बताया था कि शशि का विवाह तो तय हो गया अब दहेज की फिक्र करनी होगी। दहेज के बिना...

इसके बाद माँ ने रुपयों की जो संख्या बताई वह लक्ष्मी की भूख जगा डालने को काफी थी!

माँ उदास-सी चली गई और मैं चटाई पर बैठते-बैठते लेट गया। सारी किताबों, आलों, दीवालों, जेबों को खोज कर जो कुछ धन के नाम पर मैं पा सका—वे थे मेरी अन्तिम पूँजी, दो रुपये! एक खरा और एक खोटा, पर वे पेट-दर्द के लिए चूर्ण कैसे होते!

उन दो रुपयों को मुट्ठी में बन्द कर लक्ष्मी के चरण-चिह्न खोजने कल्पना-मार्ग से उड़ चला। अलादीन का चिराग भी याद आया और बाबाजी का कमण्डलु भी, जिसके जल के छींटे से नवनिधियाँ और अष्ट-सिद्धियाँ भी सुलभ हो जाती थीं! कितना अच्छा होता जो मेरे हाथ के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

खरे रुपये को जादू की रोटीवाली सिफत हासिल हो जाती और जिस तरह वह रोटी कामधेनु की तरह सबको तृप्त करके भी एक ही बनी रहती उसी तरह मेरा यह आखिरी सहारा रुपया भी लाखों का वारा-न्यारा कर एक ही बना रहता !

पर इस जगत् की एक और खूबी देखी। यहाँ जिनके पास सोने-चाँदी के तालाब थे वे उनका समन्दर बनाना चाहते थे, जिनके पास टीले थे वे पहाड़ उठाना चाहते थे; पर जिनके पास न था एक बूँद जल गला तर करने को, एक मुट्ठी धूल फांकने को उनकी खाली जेबों में भी छेद-ही-छेद हो रहे थे। मुझे लगा कि मेरी जेबों में ऐसे ही हजारों-लाखों छेद हैं। मैं सन्नाटे में आ गया। कहीं अपने दो रुपये भी उनमें डाल कर खो न बैठूँ। बस मैंने दोनों रुपयों को अलग-अलग मुट्ठियों में बन्द कर लिया—एक खरा दूसरा खोटा ! खरे-खोटे की माला जपते-जपते मैं खुद भी उन्हीं जैसा कुछ हो गया। तभी मुझे लगा कि वे दोनों अपनी भाषा में बातें कर रहे हैं और मैं सुन-समझ रहा हूँ।

खरा रुपया खोटे से पूछ रहा था—क्यों भाई, तुम इतने मलिन क्यों हो ?

खोटे ने मुँह लटका कर कहा—जिसकी कीमत बाजार में दो कौड़ी भी न रह गई हो वह मलिन न होगा तो कौन ?

खरा समझ न पाया। पूछा—मैंने तो अब भी कुछ नहीं समझा भाई !

खोटा बोला—समझने को इतना ही है कि मैं तुम्हारी तरह कुलीन नहीं। जिस टकसाल की छाप तुम पर है उसकी मुझ पर नहीं। मिट्टी हम दोनों की एक ही सी है, फिर भी मैं टकसाली नहीं। इसी से बाजार में साख भी नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

खरे ने संवेदना के रूप में कहा—मुझे तुम्हारी इस विडम्बना का पता न था भाई। पर मैंने तो सुना था कि गैरटकसाली सिक्के चलते ही नहीं। फिर तुम यहाँ तक कैसे चले आये। मुझे तुम अपनी कहानी तो सुनाओ।

खोटे ने सब्र के साथ कहना शुरू किया—'पाप की औलाद की तरह मुझे भी अपने बनानेवाले का पता नहीं और अज्ञान के दिनों की तरह बचपन भी याद नहीं। जब मैंने होश सम्हाला तो अपने आपको एक अन्धे भिखारी के पास पाया। वह मुझे लेकर कुछ अन्न खरीदने एक बनिए की दुकान पर गया। लाला ने उसकी सूरत देखते ही कहा—'आगे बढ़ यहाँ भीख नहीं मिलेगी।'

भिखारी ने कहा—'मैं भीख माँगने नहीं खरीद करने को आया हूँ।''

लाला ने फिर दुतकारा—'कुछ है भी कि यूँही चला है खरीद-दार बनने।'

उसके जवाब में भिखारी ने मुझे उसके बेरहम हाथों में थमा दिया। उस निर्दय ने मुझ पर क्रूर दृष्टि डाली और फिर घृणा के साथ पास ही रखे लोहे के बटखरे पर पटक दिया। मैं दर्द के साथ कराह उठा। लाला मेरे वेसुरेपन पर चीख उठा—'बदमाश कहीं का खोटा रुपया लेकर चला है ठगने। भाग नहीं तो पुलिस को पकड़वा दूँगा।

इतना कह कर उसने सबके सामने मुझे दुकान के नीचे की नाली में फेंक दिया। बेचारा अन्धा किस्मत को ठोंकता लौट चला। उस समय मुझे अपनी हालत से भी अधिक उस पर तरस आया।

जैसे ही रात का अँधेरा घना हुआ, किसी का सांप जैसा हाथ मुझे टटोलता हुआ नाली में बढ़ा। मैं यह देख कर कि यह उस बेरहम का ही हाथ है सन्न रह गया। उसने बड़े लोभ से मुझे उठाया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

नहलाने तक की जरूरत न समझी। अपनी लाँग से कहने भर को पोंछ दिया।

लाला के जिस लड़के ने मुझे नाली में फेंकते देखा था वही उठाये जाते देख कर बोला—'इस खोटे रुपये का क्या करोगे पिताजी?'

लाला ने कहा—'अबे! तुझे क्या पता? इसमें आठ आना भर चाँदी है। आजकल के खरों में तो दो आना भर ही होगी। इसे सर्राफ़ के यहाँ ले जाकर...'

लाला का इरादा साफ था। मैं काँप उठा। लाला ने अण्टी में लगाया और मुझे लगा कि बस सर्राफ की भट्टी में ही झोंक दिया गया! तभी लायक बाप के लायक बेटे ने सलाह दी—'पिताजी, सर्राफ को क्यों देते हो? इससे तो अच्छा यही होगा कि आप इसे किसी आँखों के अन्धे नाम नयनसुख को भिड़ा दें।'

लाला को होनहार बेटे की सलाह पसन्द आई। उसने वैसा ही किया। एक दिन जब यह भला आदमी जिसकी मुट्ठी में आज हम आराम से बातें कर रहें है उसके यहाँ सौदा लेने पहुँचा तो उस शैतान ने इस गरीब को ही मुझे दे दिया।

खरे ने हमदर्दी की सांस छोड़ कर कहा—आज से मैं भी तुम्हारे दुःख में शामिल हुआ। अब हम दोनों ही साथ ही बाजार चलेंगे और मैं अपनी गवाही पर तुम्हारी साख बैठाऊँगा।

खोटा रुपया उत्सुक हो कर बोला—तुम भी मुझे अपनी कहानी तो सुनाओ, भाई।

खरे ने कहना शुरू किया—मेरी कहानी छोटी नहीं। जितनी लम्बी है उतनी ही रंग-बिरंगी भी। जबसे पैदा हुआ हूँ सफर ही कर रहा हूँ। तुम एक बात जानते हो।

खोटा—वह क्या?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

खरा—यही कि हमारी दो प्रकार की कीमतें होती हैं। अंग्रेजी में उन्हें 'प्राइस' और 'वैल्यू' कहते हैं। और अपनी भाषा में "मूल्य एवं अर्घ्य। मूल्य तो मेरा एक ही रुपया है पर विनिमय करते-करते अर्घ्य एक हजार हो चुका है।

खोटा—यह बात तो मेरी समझ में नहीं आई।

खरा—समझाता हूँ। बात यह है कि यदि आज मैं बाजार में जाऊँ तो एक रुपये मूल्य की ही वस्तु खरीद सकूँगा। इस तरह बार-बार खरीदा बेचा जाकर मैं एक हजार रुपये की कीमत की चीजों का लेन-देन कर चुका हूँ। इस प्रकार मेरा अर्घ्य मेरे साधारण मूल्य से हजार गुना हो चुका है।

खोटा—ओः मैं समझा। सच ही तुम्हारा प्रयोजन महान् है।

खरा—तो जन्म से सुनो। कलकत्ते की टकसाल में आज से दस साल पूर्व मेरा जन्म हुआ था। बचपन से बुढ़ापे तक हमारी मूल्य-शक्ति में कभी अन्तर नहीं आता और अर्घ्य तो शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की कलाओं के समान बढ़ा ही करता है। इसी तरह अच्छों के हाथ से निकल कर बुरों के हाथ में पड़ जाते हैं। तब हमारे दिलों पर क्या न बीतती है। जितना हमारा सदुपयोग हो सकता है उतना ही दुरुपयोग भी। देखो न हमारी बेबसी। मैं ही शराब के लिए बिका हूँ, जुए के दावों पर चला हूँ, वेश्याओं के कुत्सित संग पर लुटा हूँ। हम लक्ष्मी के वंशज और जनसेवी होकर भी जब पाप की कमाई बन जाते हैं तो इच्छा होती है कि हमारा समूल नाश ही हो जाए तो अच्छा।

खरा बोलते-बोलते आवेश से भर उठा था। उसने दुःख के साथ पुनः कहा—हाय री तकदीर! गुनाहों को छिपाने के लिए रिश्वत के काम में आया, बुराइयों पर पर्दा डालने के लिए बुरों का इनाम मैं बना। गरीब बाप बेटे को न पढ़ा सका, निर्धन माँ अपने लाल की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

दवा न कर सकी, अभावग्रस्त अभावों की कब्र में ही दफन हो कर मैं वेश्या की नजर, शराब की कीमत, जुए का दाँव, रिश्वत, क्या और क्या नहीं बना रहा। मेरी ही बनाई तलवार से युद्ध हुए, मेरी ही पैदा की गई मुनाफाखोरी से अकाल पड़े, मैंने ही हिटलर पैदा किया, मैंने ही फोर्ड और मैंने ही गरीब नत्थू-पत्तू।

खरा गला साफ कर धीमे स्वर में फिर बोला—मेरा अर्घ्य भी बाँध कर नहीं रखा जा सकता। इसे बढ़ाने के लिए मुझे बाजार की राह लेनी ही होगी इसे एक हजार से एक हजार एक, एक लाख एक, एक करोड़ एक, और इससे भी अधिक अरबों-खरबों की कोटि में ले जाना होगा मेरे अर्घ्य का बँध जाना मेरी मृत्यु है अच्छा तो...

मैं घबड़ा कर उठ बैठा। मुझे लगा कि वह रुपया हाथ से निकल कर भागा जा रहा है। मैंने मुट्ठियाँ जकड़ लीं। दृष्टि उठाकर देखा तो माँ सामने खड़ी कह रही थी—उठो बेटा, अब तो कुछ खा लो, और रात के लिए.......

मैं समझ गया। रात के लिए फिक्र करनी होगी। रोशनी की फिक्र। आनेवाले दिनों की फिक्र। शशि की शादी की फिक्र। फिक्रें ही फिक्रें। उनके समाधान के लिए चाहिए ढेरों रुपए। मेरे पास हैं सिर्फ दो—एक खरा, एक खोटा।

तभी जैसे फिर से खरा खोटे से कह रहा था—मेरा मूल्य तो एक ही रुपया है पर अर्घ्य हजार हो चुका है। इसे मुझे अरबों-खरबों की कोटि में पहुँचाना है।

मैंने सुना, और वही मुट्ठी माँ की तरफ बढ़ा कर कह दिया—क्यों फिक्र करती हो माँ! मेरी इस मुट्ठी में एक हजार एक रुपए बन्द हैं। मैं इससे अरबों-खरबों बना सकता हूँ।

माँ के आँसू मचल पड़े। उन्होंने सोचा मैं पागल हो गया हूँ।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

श्वेतिमा

वह टापू कबूतर-टापू के नाम से विख्यात था। उस टापू पर साल और खैर के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष सैकड़ों की संख्या में थे जिन पर कबूतरों के सहस्रों छोटे-बड़े धोंसले बसे हुए थे। जब वे सब-के-सब कबूतर अपने-अपने नीड़ों से निकल सरिता की उत्तर धारा पर से उड़ते हुए तलहटी के जंगलों की ओर उड़-उड़ कर जाया करते तो जान पड़ता कि कबूतर-टापू ही उड़ा चला जा रहा है।

उस टापू पर की सालवनी में एक पीपल का पेड़ भी उद्भिजों का अपवाद सा खड़ा था। उस बड़े पीपल के पेड़ पर केवल एक ही छोटा-सा कबूतर-परिवार रहता था। वह परिवार टापू भर के अन्य परिवारों में सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वपूजित था। उस परिवार में कपोतियों का ही संख्याधिक्य था जो अपने वर्ण की शुभ्रता, ग्रीवा की सुन्दरता और पक्षों की स्वर्ण-धवल मसृणता के कारण शारीरिक आकर्षण में अद्वितीय थीं। यह कपोत-कुटुम्ब कपोतियों की अतुल रूपता के बल पर ही टापू भर के कुटुम्बों का शिरोमणि था।

श्वेतिमा इस कुटुम्ब की सबसे छोटी, चंचल और सुन्दर कपोती थी। यौवनांकुर मानों अभी उसके अवयवों की और भी सौन्दर्य-वृद्धि करने के लिए फूटा ही चाहते थे और इसी निमित्त किसी विशेष क्षण की प्रतीक्षा में निमीलित-प्राय थे। तरुणाई जाग कर अँगड़ाई लिया ही चाहती थी। और आश्चर्य कि श्वेतिमा अपने इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

यौवनोदय की अँगड़ाई से इतनी अधिक परिचित थी कि उसे भय था कि कहीं अँगड़ाई की लहरों में उमड़ आई शोभा के भार को वक्ष वहन न कर सके तो ? किन्तु इस 'तो' की अनिश्चितता में भी उसके कामिनी-हृदय का दर्प भरा था। वह प्रायः इस 'तो' तक आकर ही रूप-दर्प से कुछ और ही हो जाती थी। जवानी और उसके साथ-साथ रूप का सज्ञान मान, श्वेतिमा वैसे ही कम न थी और इस जानकारी ने तो उसके पङ्खों में विद्युत-वेग ही भर दिया।

श्वेतिमा—उसका यह नाम सार्थक ही था। उसके पक्षों का वर्ण शरच्चन्द्रिका की भाँति शुभ्र, सुचिक्कण एवं चक्षुविषयों का अपार सुख था। उजली धूप और चाँदनी में वह जब कभी उड़ती तो उसके वपु की वर्णता धूप या चाँदनी से सवर्णता के कारण निमीलित होकर पृथकता के नाम पर निर्वर्ण ही हो जाती थी। ऐसी अवस्था में उसके केसर वर्ण के पंजों और चोंच से ही पृथक् सत्ता का अभिज्ञान हो पाता था। अपने वंश की एकमात्रता अथवा अद्वितीयता के वर-दान-स्वरूप ही उसकी मात्र ग्रीवा ही सुनहली बुँदकियों से चित्रित थी, जहाँ उस वंश के अन्य प्राणियों का सम्पूर्ण वपु ही इस प्रकार चित्रित रहता था। जब वह अपने पक्षों की शुभ्रता का विस्तार कर ग्रीवा को गर्व से किंचित् तिरछा कर उत्पतनोन्मुख होती तो प्रतीत होता कि हिमवान् पर स्वर्णशृंग का उदय हो रहा है।

वह अपने समाज में रूप-शरीरता के कारण ही कुछ विशेष नहीं थी, किन्तु स्वयं उसका आचरण इतना रहस्यमय, अकल्पित और अनिश्चित होता था कि उसके मन के अनोखेपन को—भावनाओं के अछूतेपन को—अनेकों सद्यःतरुण एवं गतप्रायतारुण्य अहंमना कपोत तक सम्पर्क में आने पर भी न जान सके, न पहचान सके, न छू सके। श्वेतिमा अपनी इस रहस्यमयता के बल पर न कपोतक-वृन्दों से केलि-क्रीड़ा करती, घनिष्ठता की ओर अग्रसर होते-होते ही उनके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

समर्पित-प्राय हृदयों को, द्रवीभूत पौरुष को, छिन्न-विच्छिन्न कर अपूर्व तृप्ति का अनुभव करती। जो दिल बेगाने हो चुकते उन्हें ही मसोस डालने में, नोच डालने में, उसे विशेष आनन्द आता। और किसी भी तरुण कपोत की ओर वह आकर्षित होती तो इसी भाव से कि उसके हृदय को पराया कर कहीं को न छोड़े। ठुकराए हुए कपोत प्रायः वेदना-मुहर्त्तों में क्षणैक के लिए समझ पाते कि अभी हम इसके हृदय के रमणी भाव के स्पर्श से भी कितनी दूर थे। वह अपने रूप और यौवन-विभ्रम के बल पर जो जाल खड़ा करती उसमें फँसकर अभी तक कोई कपोत अपने पक्षों को बचा न सका था। फलतः वह कपोतियों की ईर्ष्या का तो प्रधान विषय थी ही, साथ ही जो कबूतर उसके वपु को प्यार भी करते थे वे भी उसके हृदय की विलक्षणता से आतङ्कमयी घृणा करते थे।

अतएव जब कभी उस टापू के कबूतर विशेष उद्देश्य से उत्तार वनी की ओर उड़ानें भरने जाया करते थे तब वह अण्डों की रक्षा में रुके नर या मादाओं के साथ-साथ अकेली ही उसी टापू पर रुक जाती थी। चाहने पर या चाह का संकेत भर कर देने पर वह अकेली न रह जाती, किन्तु जब उसे अकेलापन ही भाता तो वह सगर्व सबसे असहयोग रखती। और मन होने पर जब कभी वह अकेली ही किसी दिशा-विदिशा की उड़ान का संकल्प करती तो उसके संकल्प के सहयोगी अनायास ही वे सब कपोत भी बन जाते जिन्हें वह प्रवञ्चित कर हताश कर चुकी थी। यह उसके गर्व का पर्याप्त कारण भी था।

किन्तु निभृत टापू में एकाकी रुक रहना और गंगा तट की रेती पर बैठे-बैठे कुछ सोचना उसे विशेष प्रिय था। उसे अपनी चिन्ता के लिये गंगा की द्विधा धारा के अतिरिक्त कोई संगी न भाता था। उसने अकेले ही अविश्रान्त और निराहार गंगा-धारा के साथ-साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

उत्तरी शैली की हिमावृत ढालों तक उड़ानें भरीं थीं और गंगा के वे सभी स्वरूप देखे थे जहाँ वह शैल श्रेणियों की कारा में बन्दी-सी या तो भ्रमरचित्त रह.कर घुटती ही रह जाती थी अथवा आवेग में भर अपने नारी-वीर्य से पाषाण-दैत्यों का मानमर्दन करती हुई निरन्तर अग्रसर रहती थी। उसने नदी के प्रति समतल का दीन समर्पण और निरीह आग्रह भी देखा था; और वह रूप भी, जब वह पुरुष की सहज कुत्सितता से भरकर उपेक्षित भर रह गया था। और बस, वह कपोती भी अपनी इन साहसपूर्ण उड़ानों में अपने तरुण-जीवन के दर्शन के सूत्र भी सुलझाया करती थी।

इसी आधार पर कपोती श्वेतिमा ने अपने जीवन की सर्वोपरि भावना इस प्रकार आस्थ कर ली कि,

नारी स्वभाव से स्वतंत्रता-प्रिय है,

नारी प्रकृति से स्वच्छन्द प्रेम का आग्रह करती है,

नारी का यौवन जन्म और मृत्यु के बीच में परा अतृप्ति पर स्थिर रहता है,

नारी निरी लालसा, उद्दाम लालसा है,

नारी केवल गति, अव्याहत गति है,

नारी काम (इच्छा) की आदि और अजेय शक्ति है,

नारी शुद्ध काम है।

कपोती श्वेतिमा की जीवन-आस्था कुछ ऐसी ही बन चुकी थी। उसने नारी के, अपने इस स्वरूप पर विचार किया और गंगा की उच्छलित धारा पर से उड़ते हुए भ्रमरों पर नाचते हुए, सिक्त सिकता पर बैठे हुए यही—और बारम्बार यही—विचार किया और उसे नारीत्वेन अपने जीवन-प्रवाह में, इच्छावेग में, जो बाधा दिखाई दी वह था पुरुष। उसने पुरुष के स्वरूप पर चिन्तन प्रारम्भ किया और उसने उन्हीं दुर्गम शैलपथों पर उड़ते हुए तथा अपने टापू,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

सरिता के अभिशाप के टापू पर ही चिन्ता करते हुए अनुभव किया कि,

पुरुष नारी-स्वातन्त्र्य पर नियन्त्रण है,

पुरुष सहज प्रेम की कारा है,

पुरुष जन्म और मृत्यु के बीच में केवल वालहठ है, दुराग्रह-सा, या अंध बल है, पशु-सा,

पुरुष रुद्ध वासना है,

पुरुष गति और वेग की प्रतिक्रिया है।

पुरुष काम का अभिशाप है,

पुरुष अज्ञात काम है।

श्वेतिमा के नर और नारी स्वरूप-चिन्तन के ये ही दो पक्ष रहे। वह प्रायः इन दोनों में समन्वय की भावना से कभी-कभी अधिक सहृदय होकर विचार करने की चेष्टा भी करती और तब वह इन विरोधी तत्त्वों के जीवन-संघर्ष में निहित सृष्टि की जीवन विद्युत्-शक्ति के मर्म तक पहुँचती-न-पहुँचती पुनः कुछ विशेष विचञ्चल और वितृष्ण हो उठती और जब वह नदी की प्रभंजन-वेग से वढ़ती हुई केवल गतिरूप उच्छृंखल धारा को देखती तो सोचती कि नारोशक्ति प्रतिक्रिया है, नारो भावना सहिष्णुता है। पर जब समतल पर उसी प्रवातवेगा का हंसगमन देखती तो सोचती की नारी सदय है, नारी पूर्ति में प्रस्तुत इच्छा की कृपा है, तृप्तिरूप वासना का वरदान है। और फिर जब समतल की विषमता तज्जन्य नदी का उच्छलित प्रवाह, और अनकशः विभक्त रूप देखती तो तत्काल आवेग से भर कह उठती—पुरुष संकीर्णमना, स्वार्थी और बर्बर पशु है। नारी उसकी संकीर्णता का उपहास, उसके स्वार्थ का अभिशाप, उसके हिंसक पशुत्व के लिए भीषण प्रवञ्चनामय प्रतिशोध है।''

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

और तब वह मान लेती कि नर और नारी में समझौते लिए कोई स्थान नहीं। इन दोनों में से एक अवश्य ही प्रकृति की भूल है। ये ऐसी विषमताएँ हैं जिनका संघर्ष अवश्यम्भावी है, जिनका विनाश परम्परा में है और जिनके विनाश से ही सृष्टि की जीर्णता में नूतनता विकास प्राप्त करती रहेगी।

पर इस जटिलता में सफल जीवन-यापन का कौन-सा मार्ग? इस प्रश्न के उत्तर के लिए वह चिरकाल तक चिन्तित रही और अन्त में जब उसने नदी के स्वतः निर्दिष्ट और स्वेच्छया गृहीत मार्ग की ओर देखा, उदधि के दिशा-विदिशाहीन आन्दोलित प्रवाह की कल्पना की, आकाश की सीमा केवल कल्पना की असमर्थता को समझा, प्रत्येक अवरोध की प्राकृतिक प्रतिक्रिया को निश्चित परिणाम माना, पृथ्वी और नभलोक की प्रत्येक सृष्टि के उद्देश्य और संकल्प में वही अचिन्त्य भाव देखा तो उसने विराट् की ओर विमुख होकर अपने क्षुद्र वपु की महती शोभा से अभिभूत होते हुए मान लिया कि इच्छा का सहज मार्ग अथवा समर्थ इच्छा ही इस जीवन का स्वागत योग्य मार्ग है। बस, इस भाव के आते ही रूप और यौवन की चंचल वितृष्णा तथा चिन्ता की श्याम-गम्भीर छाया से अपरूप हो इच्छालोक को उड़ चली।

:o: :o: :o:

श्वेतिमा अपनी इच्छा के लिए जी रही थी। उसने यौवन के नैतिक या सामाजिक नियमों में से उन्हीं को माना जो उसकी इच्छा के वशवर्ती रह कर उसकी पूर्ति अथवा तृप्ति के सहायक होते थे। किन्तु उसके जीवन का यह उद्देश्य वैसे ही अनिश्चित और अनेक दिशाओं की ओर जानेवाला था जैसे विना लीक और पगडण्डी का, मैदान का रास्ता। उसी विलक्षण भ्रमण के सुख के लिए

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

चलते-चलते आखिर वह थक गई। वह उड़ रही थी। तृप्ति के सागर में तैरती हुई, आकाश में पवन-वीचियों के ऊपर भी नक्षत्रों के प्रग्रहों में बँधी-सी उड़ती रही। इच्छाओं के लिए कोई बाधा न पाकर भी जब इच्छा करके भी विश्राम करना चाहती और विश्राम के लिए कोई ठौर ढूँढती, कोई बसेरा चाहती, तो निरुद्देश्य इच्छा के उस महाशून्य विवर में उसे कोई शाखा, छोटी-से-छोटी सही, सहारा देने के लिए आगे बढ़ो हुई नहीं दिखाई देती। रैन-बसेरों से वह ऊब चुकी थी; क्योंकि हर सुबह वे उजड़ जाते थे, अब वह अपनी वितृष्णा से स्वयं विचलित होकर पश्चात्तापपूर्वक सोचती कि क्यों न चुन ली एक डाल स्थायी बसेरे के लिए, क्यों न बना लिया कोई नीड़ जिसमें जीवन दिन और रात से ऊपर उठकर निरन्तर विश्रान्ति पाता रहे। आः! अभी तो पंखों में जीवन है जीवन की शक्ति है जो उसकी इच्छाओं के दुर्निवार भार को वहन करने में अभी समर्थ भी है। किन्तु जब न रहेगी वह शक्ति और इच्छाओं का जड़ भार और भी अधिक बढ़ जाएगा, तब, तब क्या इतने ऊँचे उठ कर, इच्छा के हिमालय की ऊँचाई तक उड़ कर भी यों ही चू जाना पड़ेगा उसे नीचे की ओर, निरन्तर नीचे की ओर, निराधार और निरन्तर, जब तक कि कोई खड्ड उसकी समाधि बनने की इच्छा में मुँह बाये बैठा हुआ न मिल जाए। और उसके गिरते ही खड्ड अपना मुँह बन्द कर ले, जिसके बन्द होते ही उसका जीवन, जीवन का प्रकाश, इच्छाओं की शक्ति सदा के लिए चिर-अन्धकार में बन्दी हो जाए।

श्वेतिमा के लिए यह कल्पना बड़ी ही भयावह थी। किन्तु इसकी सत्य विभीषिका उसकी आँखों का अन्धकार, चक्षु-विवरों की कालिमा, बन कर शनैः–शनैः घनीभूत हो रही थी। कपोती, जो बराबर इच्छा के साथ उड़ना ही जीवन समझे रही, आँखों के इस अन्ध-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कार के वशीभूत हो जाने पर इच्छा-मार्ग पर भी अग्रसर होने में अक्षम हो गई तो फिर वह अन्त, आः आरम्भ में ही अन्त की कल्पना कितनी त्रासद ! कपोती के पंखों की शुभ्रता चिन्ता से मलिन पड़ने लगती।

अभी तो कपोती ने उड़ान ही भरी थी, जीवन की उड़ान, जीवन जिसका प्रारम्भ यौवन से समझा जाता है। और श्वेतिमा जो अपने इस प्रारम्भ से ही अन्त की भयङ्करता से त्रस्त रहने लगी थी। उत्थान के मूल से ही पतन की प्रस्तावना, श्वेतिमा ने चाहा कि कुछ निश्चित हो जाए।

अब वह अपनी प्रकृति के विरुद्ध एक स्थायी आश्रय की कल्पना करने लगी। पर अब वह देखती कि उसके नीड़ के एक-एक तिनके को उससे प्रवञ्चितों की अतृप्त वासनाओं का प्रभंजन उड़ा कर ले जाने के लिए पहले से ही सन्नद्ध है तो वह पुनः अपने रूप और यौवन की ओर देखती जो उसकी नारी-सुलभ प्रतिहिंसा को ही जगाता। तब वह प्रतिहिंसा-प्रचलित-सी पुनः जीवन के लिए विडम्बना ही बन जाती है। और कहीं प्रतिहिंसा में निरीहता प्रबल हुई तो वह जीवन के उस सङ्कोच में, उसी शाश्वत अन्धकार में ही प्रयत्नतः बन्द आँखों का सुख अनुभव करने लगती। तब जीवन को नूतन परिभाषा देते हुए कहती कि मेरे ये दुःख, मेरे सतत उत्पीड़न, मेरी भावनाओं का यह सङ्कोच ही मेरा जीवन है और जीवन जिस रूप में भी निर्वाह-योग्य है, वही सुख है। सुख जीवन की चिन्ता की कैसी विभ्रममयी वितृष्ण स्वप्न-कल्पना है।

श्वेतिमा जीवन की चिन्ता एवं ऊब से घबड़ाई-सी पुनः एक प्रयोग करने के लिए प्रस्तुत हुई।

उन्हीं दिनों उस टापू पर कोई कपोत दक्षिण की ओर से उड़ कर आया। कदाचित् वह जीवन में जागने के पहले से ही अकेला था,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

अतएव जब उसे अपने आस-पास का जीवन रुका-रुका-सा, बँधा और ऊब-भरा जान पड़ा तो उसने आकाश की ओर देखा और किसी के अज्ञात संकेत से ही अपने पंख खोल दिए। जिस डाल पर वह बैठा था, जहाँ वह पुरानी-से-पुरानी स्मृति के क्षण से अकेला ही बैठता आया था; वह डाल बराबर पीछे छूटती गई और वह दिशाज्ञान से शून्य-सा बढ़ता ही गया, मानो बढ़कर ही अपने जीवन का छोर पाना चाहता हो। किन्तु गति, सतत गति, विरामहीन अनुद्देश्य गति स्वयं एक थकान है। अतएव जब सन्ध्या-समय सूरज को डूबते देख वह भी थक चला तो नीचे की ओर गंगा के किसी छोटे-से टापू पर सुन्दर-सी बनी देख कर दूर से ही दिखाई पड़नेवाले पीपल के पेड़ पर उतर गया। अस्तप्राय सूर्य को प्रणाम करते हुए उसके शिथिल पक्ष पार्श्वों से चिपक गए।

अगले दिन उषःवेला में ही खगों की प्रभाती के साथ-ही-साथ जब वह पवन-वीचियों पर सन्तरण करने का विचार कर रहा था तब सहस्रों कबूतर-कबूतरियों को उत्तर वनी की ओर उड़ते देख वह स्वतः एक झिझक के साथ रुक गया। उसकी झिझक का कारण एक और भी था। उसी के समीप वाली शाखा पर आ बैठी एक अनिन्द्य सुन्दरी कपोती उससे पूछ रही थी—श्यामवर्ण, तुम्हारा परिचय ?

उस कपोत के लिए यह सम्बोधन, प्रिय और अपनत्व-भरा स्वागतगान-सा सम्बोधन, अभूतपूर्व था। सर्वथा अभूतपूर्व। वह अपने कापोतिक समाज से इतना विलग्न रहा था कि उसे कभी नामकरण की आवश्यकता ही न पड़ी थी। उसने अपने शरीर की ओर देखा। सचमुच ही तो वह श्यामकाय था। बहुत कुछ स्लेटी रंग का और उसके सामने खड़ी कपोती पुष्पों के विशुभ्र सुगन्धित उच्छ्वास-सी। इस आकस्मिक तुलना से वह सहज हीनता के भाव से भर गया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

फिर भी उत्तर में उसने अपने पंखों को उड़ान के वेग से भर कर फैलाया और समेट लिया। कपोती ने समझ लिया कि वह एक पक्षी है, पतत्री, सतत उत्पतनशील !

कपोती मुस्करा दी ! कपोत ने उससे प्रोत्साहित होकर कहा—मुझे श्यामवर्ण ही समझना, और प्रत्येक पूर्वपरता के सम्बन्ध से हीन पवत्री-मात्र जानना। किन्तु तुम्हारा तो अवश्य ही कुछ विशेष परिचय होगा, श्वेतिमा !

'श्वेतिमा !' कपोती को समझते देर न लगी कि श्यामवर्ण विचक्षण है। कहा—'तुमने मुझे ठीक ही संज्ञा दी हैं, श्यामवर्ण ! मैं इस कबूतर-टापू के अभिजात-वंश की एक कुमारी हूँ !

'अभिजात' ! श्यामवर्ण को उसका और अपना अन्तर स्पष्ट जान पड़ने लगा ! वह तो जंगली था, कुलीनता की मर्यादा से रहित ! वह चुप रह कर भी उस अभिजातकन्या को देखने लगा। उसकी आँखों के चारों ओर की श्यामता से उसे अनुभव होने लगा कि इस रूप के कोमल आवरण में दुश्चिन्ता की ज्वाला वेदनामुखी होकर धधकने लगी है। वह वन्य था। संकोच सीखा ही न था, अभिजातों का-सा शिष्टाचार जानता ही न था। स्पष्ट ही कहा—अभिजातकन्या को किस बात की दुश्चिन्ता है ? मैं तुम्हारी इस दुश्चिन्ता के साथ ही इस कापोतिक द्वीप को छोड़ना चाहता हूँ।

श्वेतिमा ने उत्तर दिया, उसके स्वर में दृढ़ता थी—तो तुम्हें जीवन भर यहीं रुक रहना होगा, श्यामवर्ण। मेरी दुश्चिन्ता केवल कथन का ही विषय नहीं है।

श्यामवर्ण ने श्वेतिमा की ओर गूढ़ दृष्टि से देखा और श्वेतिमा ने श्यामवर्ण की ओर। श्यामवर्ण ने सोचा कि इसका परिचय केवल रूप की परिभाषा में ही नहीं आता। इससे भी आगे कुछ है, कुछ अधिक गम्भीर, अधिक विदग्ध, अधिक वेदनामय। श्वेतिमा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

नर की दृष्टि से बहुत अधिक परिचित थी। नर की वह दृष्टि जो रूप और यौवन की सीमा से आगे कभी कुछ देख ही न पाई। उसने अनुभव किया, नहीं, यह दृष्टि अवश्य ही कुछ अधिक गम्भीर, अधिक विदग्ध और अधिक मेदनामयी है। बस, दोनों में परस्पर जिज्ञासा उमड़ी, जिज्ञासा जो व्यक्त से शेष को जानना चाहती है, और वे दोनों एक-दूसरे के प्रति अधिक सहृदय, सहिष्णु, महत्वपूर्ण मित्र ही हो गए।

कपोत ने जीवन की अनन्त उड़ान के लिए पंखों में वेग भरना चाहा, किन्तु कपोती की दृष्टि से वे बँधकर रह गए।

:o: :o: :o:

श्वेतिमा और श्यामवर्ण दोनों प्रायः साथ ही रहते, साथ ही आहार-विहार के लिए निकलते और साथ ही विजन प्रान्तों की उड़ानें भरते। वे परस्पर एक-दूसरे के साथ वहाँ तक उड़ते रहने का संकल्प कर चुके थे जहाँ तक जीवन और मृत्यु में कुछ भी अन्तर सम्भावित हो सकता था। श्वेतिमा बार-बार अनेक प्रसंगों द्वारा अपने इस संकल्प का पुनरुद्बोधन कराती, किन्तु श्यामवर्ण जीवन में आवृत्ति, चाहे वह किसी भी बात की क्यों न हो, करने को प्रस्तुत न था।

यह द्वन्द्व अपनी व्यक्तिगत दृष्टियों में तो विलक्षण था ही, किन्तु उस टापू के समस्त कबूतरों के लिए भी आश्चर्य, जिज्ञासा कुतूहल, शंका, भय, ईर्ष्या और द्वेष का विषय भी था। कबूतरियाँ श्वेतिमा की बुद्धि पर आश्चर्य प्रकट करतीं और इसे उसके रूपगर्व का समुचित दण्ड-विधान ही मानतीं। वे प्रसंग में इतनी अधिक आलोचनाप्रेमी, व्यंग्यशील और असहिष्णु हो गई थीं कि श्यामवर्ण उनकी चर्चाओं के सर्वप्रिय विषय से भी आगे वह सब कुछ बनता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जा रहा था जिसे नर नहीं समझ पाता और मादा करती दिखाई देती है।

कवूतरों में गतायु उदासीन होते हुए भी श्वेतिमा के इस आचरण से प्रसन्न न थे। उन्हें वन्य के प्रति उसकी यह ममता अपने वर्ण-सम्मान के प्रतिकूल ही जान पड़ती थी, किन्तु नवयुवक और प्रबुद्ध-काम कवूतर तो श्यामवर्ण के प्रतिहिंसक विद्वेष से भर उठे थे। उनमें स्वयं तो इतनी क्षमता न थी कि श्वेतिमा का प्रत्यक्ष विरोध कर पाते, क्योंकि उसकी रूप और यौवन की शक्ति अभी नाम को भी कुण्ठित न हो पाई थी और वे उसके आगे निरन्तर झुकते ही आए थे। किन्तु वेचारा श्यामवर्ण कपोत! वह केवल अपने आत्मवल पर ही उस समाज में जीवित था। उसके पंखों में उन सवसे अधिक वेग, शक्ति और तत्परता थी। उसकी चोंच और पंजों के प्रहार वहुत ही प्रबल थे। सबसे अधिक उसके मन की शान्ति अभङ्ग थी। स्वयं सबके लिए प्रतिद्वन्द्वी-रूप होते हुए भी स्वयं का किसी को प्रतिद्वन्द्वी न समझता था। वह उसके आत्म-विश्वास की पराकाष्ठा थी जिसे वह सरल वचनों में प्रकट भी कर चुका था।

श्वेतिमा ने उसे बारम्बार स्मरण दिलाया कि इस टापू का सम्पूर्ण कपोत-समाज उसके प्राणों का ग्राहक है। वे उसका स्वागत कदाचित् कर ही नहीं सकते। किन्तु इस कथन के साथ-ही-साथ वह जिस बात का मार्मिक ढंग से विज्ञापन किया चाहती वह यही था कि उसका रूप टापू भर के तरुण कपोतों का याचित सौभाग्य है जो वन्य के लिए व्यर्थ ही लुट रहा है।

किन्तु यह वन्य इतना अधिक गम्भीरवेदी रहा कि अभिजात-कुमारी का अभिप्सित प्रभाव उस पर पड़ा ही नहीं। उसने उसके सम्पर्क को कभी अपना सौभाग्य समझा ही नहीं। हाँ, एक बार, केवल एक बार और सदा के लिए एक बार उसने अवश्य घोषित

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कर दिया था कि मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं। और श्वेतिमा शनैः शनैः अनुभव करने लगी थी कि सच ही उसकी प्रतिद्वन्द्विता की क्षमता टापू भर के किसी एक कबूतर में नहीं। पर इसे मनसा स्वीकार कर उसकी अन्तरात्मा कभी प्रसन्न न हुई। उसके मन की एक अतृप्त वासना थी जो किसी प्रकार उस जंगली को अपने रूप की मोहकता और मादकता से परिचित करा 'साधुवाद' प्राप्त किया चाहती थी। फिर भी उसकी परम विवशता यह थी कि वह उस जंगली से अभिभूत होती जा रही थी और चाहने पर भी उस अभिभव से बच न पा रही थी।

दिवस बीत रहे थे। वन्य और अभिजात की घनिष्ठता में कोई अन्तर न आ रहा था। वन्य को श्वेतिमा के आग्रह और स्वयं के प्रभाव-स्वरूप टापू के सभी विशेषाधिकार प्राप्त हो चुके थे। वह वहाँ के सभी व्यापारों में अग्रणी रहने लगा था।

फिर भी श्वेतिमा श्यामवर्ण को जिस रूप में अपने प्रति पाना चाहती थी वह प्राप्त न हो रहा था। उसने देखा कि वन्य सभी इच्छाओं को छोड़े या भूले, अथवा प्रत्येक कामना से सर्वथा अपरिचित-सा, हो रहा है। वह उसके सम्पर्क में आया और खूब आया, किन्तु निरीह होकर ही। उसने उसकी इसी अनीह दीनता, सरलता और निष्कपटता के लिए उसे प्यार किया था, किन्तु यह जड़-तुल्य अनभिव्यक्ति उसे अपनी व्यक्तिगत अवमानना जान पड़ती। उसका अपना सम्पर्क, इतना रूप, यौवन और कामनाओं का आग्रह लेकर भी दीर्घ एकान्त सम्पर्क, वन्य में वासना न जगा सका, कामेच्छा न उत्पन्न कर सका, तो यह उसकी रूपता का अभिभव न हुआ तो क्या? अभिभव की इस कल्पना से वह मान से भरा चाहती, किन्तु किसके प्रति मान? असंवेदनशील के। उसका आहत नारी-दर्प प्रतिशोध की भावना से भर उठता। किन्तु फिर वही प्रश्न। किससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

प्रतिशोध ? क्या प्रत्येक वार को सहने के लिए, पानी बने रहनेवालों के लिए ? और वह तब वित्रस्त-सी न तो मान ही कर पाती और न ले पाती प्रतिशोध ही।

श्वेतिमा सोचती, और वन्य के सम्पर्क के प्रत्येक क्षण में सोचती, सोच कर अन्त में उसने उसमें संवेदन जगाना चाहा। तृष्णा भर देनी चाही। वह अपने विगत जीवन के संस्मरण प्रस्तुत करती और वे संस्मरण होते उसके रूप की दिग्विजय मात्र के। नारी-रूप से नारी-रूप की विजय। रमणी-रूप से पुरुष, हृदय की विजय। उसने विजय सर्वदा पाई और सर्वत्र पाई। उसकी विजय व्यापक और स्थिर रही। उसे नाज था कि उसके वर्ण की शुभ्रता वायु-संस्पर्श से भी मलिन होती हैं और उसके पक्षों की मृदुता दृष्टिपात से भी बाधित होती है। तब वह सहसा रूप-गर्व के चिवित्र भाव से भर उठती और कहती—मेरे वपु का स्पर्श तो करो, वन्य ! मैं नहीं चाहती कि इसकी मृदुता एवं विशुभ्र मसृणता से तुम अपरिचित ही रहो।

वन्य देखता—अभिजात के दृगों में अनोखा गर्व होता। सूक्ष्म ग्रीवा स्फीत होकर और भी सुन्दर लगने लगती। पंखों में पुलक-भाव तरंगों-सा उमड़ पड़ता। वह साक्षात् अदृष्टपूर्व, अश्रुतपूर्व, अभुक्त और अभूतपूर्व वपु-कान्ति को देखता; फिर भी उद्गारों में संन्यासी ही बना रहता। वह प्रशंसा कर ही न पाता कि 'इतने सुन्दर ! आश्चर्य !'

कपोती का आग्रह बढ़ता। वन्य उसका स्पर्श तो करे। उसे विश्वास था कि वह उसके स्पर्श से अवश्य ही पागल हो उठेगा। वह उसके उसी उन्माद का सुख पाना चाहती थी। आखिर वन्य को विवश होकर अपनी चञ्चु और पक्षों से उसके वपु का यथाविध स्पर्श करना पड़ा, किन्तु आश्चर्य कि न तो वह उस दुर्लभ अननुभूत स्पर्श से रोमांचित ही हुआ और न उसने कपोती की श्लाघा में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

वचन-व्यय ही किया। उलटे बाल-सरलता से कह उठा—मुझे तो इस स्पर्श में कोई अतिरिक्त सुख नहीं जान पड़ा, अभिजात और न मैं अपने कृष्ण काय के स्पर्श से तुम्हारी वपु-शुभ्रता को ही मलिन होते देख रहा हूँ।

कपोती आर्त्त स्वर में अनायास ही कह उठी—तुम जड़ हो, वन्य, निरे जड़। स्पर्श की सुखद अनुभूति में भी असमर्थ!

कपोती निरन्तर ऐसे अवसर उपस्थित करती और कपोत अनिच्छया उसके आदेशों का पालन करता हुआ जड़त्व-प्रदर्शन करने के अभियोग में उसी प्रकार कीर्त्तित होता। श्वेतिमा की इस भर्तस्नाओं में यत्किंचित् प्रशंसा भी होती, किन्तु कटूक्ति कहीं अधिक!

श्वेतिमा हताश नहीं हुआ चाहती थी, किन्तु उस दिन के बाद से जब उस काले जंगली ने उसके स्पर्श के आग्रह पर स्पर्श न कर चञ्चु-प्रहार के द्वारा अपना अनुराग व्यंजित किया तो उसके समस्त विजय-प्रयत्नों का अन्त हो गया।

श्वेतिमा ने निरुद्देश्य जीवन की ऊब से घबराकर अपना एक निश्चित सन्धान किया था। निकट के ही विगत जीवन की उमड़ती आनेवाली शून्यता वह भूल न पाई थी, अतएव प्रकृति से अनुदार असहिष्णु होते हुए भी रूप-गर्व से प्रेरित अतृप्ति और आकांक्षा में पलते हुए भी प्रयोग-दृष्टि से गृहीत इस लक्ष्य, अथवा केन्द्र से सहसा विमुख न हुआ चाहती थी।

एक दिन जब वन्य तट के छिछले जल में एकान्त क्रीड़ा कर रहा था तो वह पास जाकर रूप के विभ्रम का विस्तार कराती हुई सहसा बोल उठी—जानते हो वन्य, इस कापोतिक द्वीप का सर्वसमृद्ध, बलिष्ठ और तरुण कपोत मेरे रूप की ज्वाला में अतृप्त रह कर ही भस्म हो चुका है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

वन्य अपनी क्रीड़ा में व्यस्त रहा, मानों कुछ सुना ही न हो। अभिजातकुमारी खीझ से भरे कुछ तीखे स्वर में बोली—सुनते नहीं, श्यामवर्ण, इस द्वीप में प्रत्येक कपोत युवक ने मुझसे प्राणों को न्योछावर कर प्रेम किया और बदले में मुझसे पाई केवल घृणा। मैंने उनसे जब तक चाहा क्रीड़ा की, उनके मोह को बनाए रखा और ऊब जाने पर सुख-स्वप्न-सा भङ्ग कर दुःस्वप्नों को अमिट कर दिया!

इस बार जंगली ने मौन भंग किया और स्थिर होकर सरल वाणी में कहा—सुनता हूँ, सुन्दरी! तुम्हारे द्वारा यह अघटनीय नहीं। क्या तुम मुझ पर भी अपनी घृणा का वैसा ही प्रयोग किया चाहती हो? किन्तु ध्यान रहे, मेरी दृष्टि कुछ दूसरी ही है।

कपोती ने तेज स्वर में साग्रह पूछा—कैसी दृष्टि, मैं नहीं समझी कपोतक। क्या तुम मेरे सम्बन्ध में ही कुछ कह रहे हो?

कपोतक ने उत्तर दिया—नहीं सुन्दरी! मुझे कुछ भी कहना नहीं है। तुम कुछ सुनाने जा रही थी। हाँ, क्या था वह?

श्वेतिमा ने देखा कि वन्य को भव्य-भावनाओं के संस्पर्शों और अभिजातों के समान रूपसियों के अनुकूलवचनता करने में कितना अज्ञान है। अतएव वह अपने रूप-भार से वाणी को गरिमा प्रदान करती हुई-सी बोली—तुम इसे वृत्तमात्र ही न जानो वन्य! इनमें मेरे जीवन के अभिशाप हैं। आः जिनके प्यार को मार कर मैंने जिन्हें मार ही डाला था वे अन्तिम समय मेरा भला न चाह सके। उनमें से अनेकों की दृष्टि मुझे अभी तक अविस्मृत है। उनके अभिशापों में मेरा जीवन-सुख ही विनष्ट हो गया। उनकी आर्त्त दृष्टि की स्मृति मेरे मन-रूपी आकाश में आज तक कुग्रहों-सी, पुच्छल तारे-सी विद्यमान है। और विशेष कर उसकी दृष्टि उस बेचारे तरुण कपोतक की दृष्टि जो मेरी रूप-शिखा में सचमुच ही शलभ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

बन कर जल मरा, नहीं भूली जा सकती, वन्य, कदापि नहीं भूली जा सकती।

श्वेतिमा रो रही थी। उसका स्वर, उसकी आँखें सचमुच रो ही रही थीं। और हृदय ? उसको कौन जाने ? वह तो निरन्तर ही रहस्य और अज्ञेय रहा। सरल वन्य उसके आंसुओं के प्रति सहृदय हो उठा सभी क्रीड़ा-व्यापारों को रोक सच्चे संवेदन के साथ पूछा—तुम अपनी इस पीड़ा को कह जाओ, अभिजात ! मेरा तुम्हारे वचनों में पूर्ण विश्वास है। मैंने तुम्हारे कथन के प्रति उचित सजगता न व्यक्त कर अवश्य ही भूल की।

और तब श्वेतिमा अपने आँसुओं के नीचे से मुस्कुरा उठी थी। बरसाती बादल में अन्तर्हित विजली-सी अभिभूत कर डालनेवाली शक्ति उस अश्रु-हास में थी। वन्य चकित भर रह गया। किन्तु वह अपना आश्चर्य अपनी संवेदना में निमग्न कर श्रोतुकाम ही बना रहा।

अभिजात-कुमारी ने सुनाया—उसका नाम रक्तग्रीव था। इस द्वीप भर में रक्त ग्रीवा का विशेषत्व एकमात्र उसी को प्राप्त था ! यदि वह जीवित रहता तो अवश्य ही इस द्वीप में प्रतिष्ठित होता। किन्तु शोक उसके हृदय ने स्वयं के साथ छल किया। वह एक पत्थर को प्यार करने लगा। और उस पत्थर ने उस पर वज्र प्रहार किया। एक दिन जब मैं सान्ध्य बेला में थकित-सी निमीलित-नयम साल-शिखा पर विश्राम कर रही थी तो वह चुपके से आकर अपने पखों के कोमल स्पर्श द्वारा मेरी क्लान्ति परिहरण की चेष्टा करने लगा। स्पर्श से चौंक कर जो मैंने अर्द्धनिमीलित दृष्टि से देखा तो रक्तग्रीव ही था। उसके स्पर्श में भी मैंने अपमान का अनुभव किया। कुछ कहूँ कि वह स्वयं कह उठा—क्या मेरा स्पर्श इतना अनीप्सित है, श्वेतिमा ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मैंने उत्तर दिया—हाँ, अग्निस्पर्श से भी अधिक अनीप्सित ! और मैंने कुछ ही दूरी पर प्रकृत्या धधकती आग की ओर संकेत कर दिया।

वह बोला—किन्तु मुझे तो तुम्हारे आदेश पर अग्निस्पर्श भी सुखद होगा श्वेतिमा। कह तो देखो।

और श्वेतिमा पुनः श्यामवर्णा का स्कन्धाश्रय ले रो उठी। रक्त-ग्रीव को उसने भस्म हो जाने का आदेश जो कर दिया था। पर वन्य उसके आँसू भी न पोंछ सका।

:o: :o: :o:

चैत्र के आरम्भ में प्रतिवर्ष उस टापू के कबूतरों में उड़ान की प्रतिद्विन्द्विता होती थी। प्रतिद्विन्द्वियों को उत्तरशैल की तराई की बनी तक जाकर वहाँ से अभिज्ञान के लिए विशेष प्रकार का तृण लाना पड़ता था। इस प्रकार जो कबूतर सर्वप्रथम आता था उसे टापू की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कबूतरी की विशेष कृपा का लाभ प्राप्त होता था। उस कबूतरी को अनिच्छा रहने पर भी आठ याम तक विजयी कबूतर के प्रति प्रेम प्रदर्शित करने को विवश होना पड़ता था।

श्यामवर्णा इस प्रतियोगिता से पहले दिन ही श्वेतिमा के मनः-प्रसाद के लिए हिमवान् की अत्यन्त कष्टकारिणी यात्रा से लौटा था। रास्ते में लौटते समय कुछ विशेष प्रकार के अपने से आकार और बल में श्रेष्ठ खगों के द्वारा आक्रान्त हुआ। वह संकट सामान्य न था, फिर भी श्यामवर्णा को अपने लिए नहीं, श्वेतिमा की सुरक्षा के लिए अपने से अधिक बलशालियों पर भी संघर्ष-द्वारा विजय पानी थी। सदा से उसके अडिग आत्मविश्वास और संचित पौरुष ने उसकी सहायता की। श्यामवर्णा श्वेतिमा के अक्षत शरीर सहित कबूतर टापू तक लौटने में समर्थ हुआ था। किन्तु इस प्रयत्न और संघर्ष में उसके पक्षों और पार्श्व-मर्मों में कुछ विशेष आघात लग गए थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कबूतर टापू के पीपल की, नदी की ओर बढ़ी हुई, शाखा पर बैठ कर जब भययुक्त श्वेतिमा ने उसके क्षत-विक्षत शरीर को देखा था तो उसकी त्रस्त दृष्टि आँसुओं से रुँध गई थी। आँसुओं को छिपाने की चेष्टा में उसने आँखें बन्द करनी चाहीं, किन्तु उलटे आँसुओं का बांध रोके न रुका। उसने त्रस्त होकर कहा—आः वन्य, तुमने मेरे लिए ये आघात सहे, प्राण संकट में डाले। तुमने मेरी रक्षा की इतनी चिन्ता क्यों की ?

वन्य ने दृढ़ वाणी में उत्तर दिया था—अभिजात, मैं तुम्हारे लिए सब कुछ सह सकता है। प्राणों का क्षय भी। मेरे जीवन को तुम्हारी रक्षा ही तो अभीष्ट रह गई है।

कपोती ने सुना और आरम्भ मेंउसे यह सुनकर हर्ष भी हुआ। इतने दिनों के सम्पर्क में वह वन्य के मुख से आज पहली बार ऐसे वचन सुन पाई थी जिनमें उसके प्रति एकान्त निष्ठा से भरा अनन्त अनुराग था। किन्तु वन्य के कथन समाप्त कर चुकने पर भावानु-भाव-शून्य मुद्रा में बैठे रहने से उसे, उसके दर्पिता वाले नारी-रूप को, क्षोभ हुआ। वह वन्य को अपने लिये कर्त्तव्यों से अधिक स्थूल व्यवहारों में अधिक व्याकुल और आसक्त देखना चाहती थी। वह चाहती थी कि वन्य का प्यार उसके बन्द गले से प्रतिक्षण चिल्लाया करे कि मैं श्वेतिमा का हूँ। उसके दर्प की सबसे पहली माँग थी कि वन्य उसके गर्वीले हास के विस्फार के लिए आर्त्त स्वर में कहे कि मैं श्वेतिमा के बिना जीवित नहीं रह सकता।

किन्तु नर वन्य था, नारी की इस अज्ञेयहृदयता के लिए नितान्त अबोध। वह कपोती की खिन्नता को भी समझ न सका। अगले दिन वह अपने क्षत-विक्षत शरीर को लेकर ही प्रतियोगिता के लिए प्रस्तुत था। श्वेतिमा, कापोतिक द्वीप की अन्यतमा सुन्दरी कपोती श्वेतिमा, उसके अनुराग की अनन्यता, उसे सह्य न था कि कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कपोत उसकी प्रेम-प्रतिमा का क्षण भर के लिए भी अधिकारी बने। उसने अपने क्षत देह की भी चिन्ता न की।

श्वेतिमा ने क्षत-देह वन्य को प्रतियोगिता के लिए सन्नद्ध देखा। उसे आश्चर्य ही हुआ। न केवल क्षत देह पर ही अपितु अपनी स्वीकृति की अनपेक्षा पर भी। उससे पूछा—वन्य, क्या तुम अपने उपाहास के लिए ही प्रस्तुत हो? इस क्षत-विक्षत देह को लेकर तुम कैसे अग्रणी रह सकोगे?

वन्य ने सस्मित उत्तर दिया—तुम्हारे प्रेम के बल पर, श्वेतिमा। अभिजात वन्य ने तुम्हें प्रेम किया है और तुम्हारा प्रेम पाया है। वही प्रेम मुझे किसी से भी द्वितीय न रक्खेगा। प्रेम-पुष्ट वन्य अजेय है, अभिजातकन्या!

प्रेम! इतना स्पष्ट उच्चारण, इतना मुक्त और विश्वस्त निवेदन, ऐसी प्रगाढ़ निष्ठा! कपोती को आश्चर्य हुआ। गर्व भी। पर गर्व का तोष नहीं। उसे प्रतीत हुआ कि वन्य में पौरुष का अहं अभी तक शेष है। स्वर में वैसी आतुरता है ही नहीं, जैसी आत्म-समर्पण के लिए वह आवश्यक समझती थी! उसने स्पष्ट ही अनुभव किया कि उसकी रूपशक्ति की सम्पूर्णतः मानना नहीं की जा रही है नारी का मान, विद्वेष-भरा मान, चीख उठा—पर मैं तो तुम्हें प्यार नहीं करती, वन्य! मैंने तो किसी को भी प्यार नहीं किया, श्याम-वर्ण! और वह हँसती हुई सदर्प लौट गई।

श्यामवर्ण ने सुना। एकान्त भाव से सुना। उसकी शक्ति नष्ट-प्राय हो गई थी। खड़ा रहना भी उसके लिए असम्भव हो रहा था। किन्तु प्रतियोगिता के लिए प्रस्तुत होकर पीछे हटना उसके स्वाभि-मान के विपरीत था। एक बार तो उसे लगा कि मूर्च्छित होकर गिर ही जायेगा, किन्तु दूसरे क्षण ही अपने पाँव पर दृढ़ था। उसने स्फूर्ति-संचय के लिए स्नायुओं को खींच कर फैलाया। उसकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

ग्रीवा फूल उठी। पक्ष फैल गए, पार्श्व भर उठे और संकेत पाते ही वह सबके आगे था। उड़ते-उड़ते उन सभी के दृष्टिपथ से ओझल हो जाने पर श्वेतिमा ने जब नीचे की ओर देखा तो वह स्थान ताजे रक्त से रँगा था जहाँ कुछ ही क्षण पूर्व वन्य खड़ा था। श्वेतिमा की आँखें भय और पश्चात्ताप से निर्जीव हो गईं। किन्तु दूसरे ही क्षण जब आत्मसंवरण किया तो वह भी आकाश-पथ की ओर उड़ी जा रही थी! जो रक्त वन्य ने उसकी रक्षा के लिए सदर्प संघर्ष में बहाया था और उसने जिसका कीर्त्तन ही किया था, वही अपने वाक्य-प्रहार से भूमि पर बहता देख अपने दर्प में भूली न रह सकी।

:o: :o: :o:

कपोती का प्रतियोगियों का अनुगमन करना नियमतः निषिद्ध था, फलतः श्वेतिमा को आकाश में उठ जाने पर भी शासन की रक्षा के लिए लौट आना पड़ा। अब तक वह जीवन में जब भी सच्चे आँसू बहा पाई थी तो केवल अपने ही लिए, किन्तु आज दूसरे के लिए उसने वे आबदार मोती लुटाए जो अपने लिए भी लुटा न पाई थी।

'अभिजात वन्य को प्यार नहीं करती, तो क्या घृणा करती है, घृणा ही सही' और यह घृणा वन्य की गति का वेग थी। वह इसी घृणा के बल से भरा निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने और अभीष्ट अभिज्ञान का शोध कर लौटने में निरन्तर अग्रणी रहा। किन्तु प्रत्यावर्त्तन का मार्ग अभी आधे के लगभग और शेष था कि उसकी दैहिक शक्ति शिथिल पड़ने लगी। अब उसके लिए आगे बढ़ते रहने से भी प्रबल समस्या थी आकाश में उठे ही रहने की। उसके अपने शरीर का और पृथ्वी का आकर्षण इतना अधिक बढ़ता जा रहा था कि वह क्रमशः धरा की ओर झुकता ही गया। अपने आपको वायु में उठाये रखने का उसका प्रयत्न विफल हुआ। और अन्त में जब वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

पृथ्वी की ओर सवेग झुकने लगा तो बनैली बरियों की एक झाड़ी ने उलझ कर उसके हतसंज्ञ शरीर को थाम लिया।

वे आठ प्रहर और उनके अतिरिक्त भी अनेक आठ प्रहर व्यतीत हो गए थे किन्तु वन्य फिर कभी कबूतर-टापू के लिए उस कँटीली झाड़ी की विवशतया गृहीत शय्या को छोड़ कर उड़ ही न सका।

:o: :o: :o:

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मृत्यु की मीनार

रात का वक्त था। तारों की छाया में एक वहुत बूढ़ो मीनार उतनी ही बूढ़ी कोठरी को अपने साथ में लिये खड़ी थी। चेतराम उस कोठरी से निकल बाहर आया। वह उस मीनार की चौकसी करता है। रात विरात में जब आँखें खुलती हैं तो एक नजर उस मीनार की चोटी और बन्द दरवाजे को देख लिया करता है। बूढ़े चेतराम की आँखें धीरे-धीरे ऊपर उठती हुई मीनार की चोटी पर पहुँच कर ठहर गईं और फिर किसी छाया के साथ ही जैसे धरती पर कूद पड़ीं। हवा में चीख-सी उठी। चेतराम आँखें मलता हुआ सुनसान के उदास प्रहरी-सा अपनी कोठरी में लौट आया। जिस दिये को जलता हुआ छोड़ गया था वह बुझ गया था। उसे जलाने की फुर्सत न थी। अन्धेरे में टटोलते हुए उसने किसी के शरीर पर हाथ रखा और मेरी बच्ची कहते हुए सब्र की साँस ली।

इसी तरह बरसों पर बरसों की तह लगती गई। मीनार कुछ और बूढ़ी हुई। चेतराम भी उसी हिसाब से बूढ़ा हुआ और उसकी बच्ची बालिका से तरुणी हो गई। फिर भी आस-पास के उजाड़ सुनसान में कोई फर्क न आया।

एक दिन उजाड़ से ऊब कर चेतराम ने कहा...मीना, अब हम यहाँ क्यारियाँ बनाएँगे। उनमें गुलाब और बेला लगायेंगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

). In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

मीना बोली...ऐसा ही क्या बुरा बाबा ! कल सपने में उस औरत ने...

चेतराम ने चट से काट कर कहा...सपने झूठे होते हैं, बेटी ! हम गेंदा भी लगायेंगे ।

फिर भी मीना ने कहा...जो भी हो बावा, वह औरत कहती थी कि यहाँ फूल कभी न लगाना ।

चेतराम झल्ला उठा और 'पागल है' कह कर वहाँ से हट गया ।

चेतराम अपनी कोठरी में आ बैठा । कितनी ही देर हो गई मीना भीतर न लौटी । चेतराम ने बहुत देर तक अपने आप को हुक्का पीने में लगाये रखा । अन्त में जब उससे रहा न गया तो बाहर आया । देखा मीना फूटे घड़े के ठीकरों से पथरीली जमीन को खोदने की बेकार कोशिश कर रही है । उसने आते ही दुलार के साथ पूछा...'यह क्या बेटी ?'

बेटी ने सिर झुकाये झुकाये ही आँसुओं से भींगी आवाज में जवाब दिया...क्यारी बना रही हूँ बाबा, तुम्हें फूल पसन्द हैं न । गुलाब बेला, मौलसरी ।

कहते-कहते मौलसरी के फूल से उसके आँसू लड़ियों में टूट पड़े । चेतराम ने देखते ही कह दिया....'नहीं बेटी, हम फूल नहीं लगायेंगे । उजाड़ अपने आप में सुन्दर है ।'

मीना के आँसू खुशी की चमक से मोती हो गये । चेतराम अपनी बात कह कर मीनार की चोटी को देखने लगा था । मीना की निगाह ने भी उसका पीछा किया । कुछ देर चुप रह कर बोली...बाबा, तुम्हें भी वहाँ कुछ दिखाई देता है । मुझे मीनार की चोटी पर से आवाजें सुनाई देती हैं । लगता है, जैसे मुझे कोई बुला रहा है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

चेतराम की दृष्टि मीनार पर से उतर कर मीना के मुख पर जम गई थी। उसने भय-जड़ित आवाज में कहा—वहाँ कुछ नहीं है, मीना। चल अन्दर चलें।

मीना ने भीतर चलने की कोई चेष्टा न करते हुए कहा—बाबा और वह आवाज ठीक सपनेवाली औरत की सी होती है। अब मैं उस आवाज को खूब अच्छी तरह पहचानने लगी हूँ।

चेतराम ने उसका हाथ पकड़ कर चलने को विवश किया। चलते चलते कहा ..'तुझे कहा न सपने सब झूठे होते हैं।'

इस एक छोटे से वाक्य को कहने में ही चेतराम का स्वर कठोर हुआ, कोमल पड़ा और काँप उठा। पर मीना ने उसका भय न जाना।

मीना उजाड़ के फूल की तरह खिलती रही; पर विकसित शरीर में भी उसका मन अविकसित ही रहा। मीनार के शौकीन दर्शक आते और चले जाते। उनकी छाया-स्मृतियाँ ही मीनार के साथ साथ मीना की सहेलियाँ बन कर रह जातीं। उन स्मृति-सखियों के छाया संग में हँसती भी, रोती भी पर कभी भी रोने हँसने का फर्क न जान पाती। एक बार वह अपने बाबा से पूछ ही तो बैठो...बाबा रोना किसे कहते हैं ?

चेतराम क्या जवाब दे। नित्य ही तो वह रोती है ?

बाबा को चुप देख मीना फिर बोली—बाबा रोना हँसना एक ही है न ?

चेतराम की बुद्धि काम न दे रही थी। फिर भी उसने कहा...'नहीं रोना रोना है; हँसना हँसना।'

मीना कैसे मान ले। उसने कहा—...'पर बाबा मुझे रोते रोते हँसना आ जाता है, हँसते हँसते रोना, जैसे कोई...'

'कोई क्या...' चेतराम का स्वर भयातुर था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

मीना ने झिझक के साथ कहा...जैसे कोई मेरे कानों में हँसता है, तो मैं हँस पड़ती हूँ। कोई मेरी आँखों में रोता है, तो रो पड़ती हूँ। मुझे तब कोई दिखाई नहीं देता। सिर्फ गुमसुम छाया ही आती जाती जान पड़ती है। तभी सोचती हूँ क्या आदमी छाया नहीं। छाया आदमी नहीं ? एक छाया जिसे मैं सपनों में देखती हूँ, कहती है कि मैं तेरी माँ हूँ। माँ क्या बाबा ?

चेतराम गम्भीर पड़ गया था। उसने जाने कैसे आशंका से भर कर मीना का सिर सूँघा और आसमान की ओर ताकते हुए कह दिया...'सपने की बातें न सोचा कर। माता धरती है।'

"धरती क्यों ?'

'सब धरती से पैदा हुए हैं।'

'हम सब। आसमान भी, चाँद-सूरज भी, दिन रात भी, नदी भी, पहाड़ भी, मीना भी, मीनार भी, वह भी जिसे तुम सैकड़ों मील गहरा हजारों मील चौड़ा और लाखों मील लम्बा कहते हो। सो कैसे बाबा ?

चेतराम समझ रहा था कि उसने दुर्भेद्य अन्धकार इस लड़की के चारों ओर जमा कर दिया है, पर दूर भी करता तो कैसे ?

अन्धकार प्रकाश का विरोधी होते हुए भी उसकी प्रवृत्ति प्रकाश है। मीना के मन का अन्धकार प्रकाश के लिए छटपटाता तो वह अजीब सवाल कर बैठती। एक दिन उसने पूछा...बाबा, मेरा नाम मीना क्यों ? मुझे मीनार क्यों नहीं कहते ?'

चेतराम ने कह दिया, 'नाम अलग अलग होते हैं। जैसे मैं बाबा हूँ। यह पेड़ है। वह पहाड़ है। इसी तरह तू मीना है, यह मीनार है।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmand

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

मीना ने फिर भी कहा...'पर बाबा मीनार से उठती हुई आवाजें मुझे इस तरह अपनी ओर खींचती हैं जैसे मैं मीनार से अलग कुछ नहीं।'

चेतराम ने निराशा के साथ कहा...'तू पागल हो जायेगी लड़की।'

इस पर मीना चुप न रही। वोली...'तुम ठीक कहते हो बाबा। मैं मीनार नहीं। मीनार मेरी माँ है। धरती पहाड़ की माँ होगी, मीना की नहीं। मीना की तो...।'

मीना की आवाज बदल चली थी, आँखों के भाव बदल चले थे। बड़ी बेचैनी के साथ बोली...'सुनते हो बाबा, मीनार मुझे पुकार रही है। मेरी माँ मुझे बुला रही है। माँ मीनार...'

और तभी मीना बेहोश होकर गिर पड़ी।

चेतराम के बुढ़ापे पर छायायें मँडरा रही थीं। मीना अक्सर बेहोश हो जाती। बाबा मीनार पर न चढ़ने देते, पर उसके नीचे वह घंटों बैठी रहती है। वहाँ से उठने को चेतराम कहता तो वह रो पड़ती।

एक दिन जब मीना मीनार के नीचे बैठी थी कोई युवक आया। मीना को लगा जैसे वह उस युवक को जानती है। युवक को भी लगा जैसे वह मीना को जानता है। फिर भी वह न रुका। मीना ने भी न रोका। युवक मीनार पर चढ़ा। थोड़ी ही देर बाद कोठरी में बैठे चेतराम ने मौत के धमाके की सी आवाज सुनी, उसी के साथ मीना की चीख। वह घबड़ाया सा बाहर आया। मीना बेहोश पड़ी थीं पास ही एक लाश। मीनार के ऊपर से रोने की आवाज आ रही थी। चेतराम ने सिर उठा कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: N

ऊपर की ओर देखा तो रोना हँसी में बदल गया था। पर दिखाई कोई न दिया।

थोड़ी देर बाद मीना होश में आ गई थी, पर चेष्टाओं में विक्षिप्तता सी समाई रही। दिन बीता, रात आई चौदह कलाओं का चाँद मीनार को चाँदनी से नहला कर उस बियाबान उजाड़ में रात के साथ अभिसार कर जाने कहाँ चला गया था। मीना उस रात के बाद सोकर उठी तो रोते रोते चेतराम से बोली... 'बाबा' मेरे भैया मर गए!!'

चेतराम ने अचकचा कर पूछा—'कौन भैया री ?'

मीना ने भरी हुई आवाज से कहा—वही, माँ कहती थी, वही मीनार से जो कूदे, वही।

चेतराम का असमंजस और बढ़ा, पूछा...माँ, कौन माँ ?

मीना ने बताया—'मेरे सपनों की माँ, वही माँ जो मुझे मीनार पर से आवाजें दिया करती है।'

चेतराम दिलासे के ढंग पर बोला...'तू डर गई है मीना! तेरी माँ कोई नहीं, तेरा भाई कोई नहीं। मीनार पर से कूद कर मरने की घटना भी नई नहीं। जब तक यह मीनार ढह नहीं जाती तब तक ऐसा ही होता रहेगा।'

मीना ने घबड़ा कर पूछा...'मीनार ढह जायगी ?'

चेतराम दार्शनिक के ढंग पर बोला...'हाँ बेटी, मीनार भी ढह जा सकती है। इसके बनानेवाले न रहे, यह भी न रहेगी। मीनार खड़ी करके उन्होंने अपनी कीर्ति से आसमान की ऊँचाई नापनी चाही, पर मिट्टी से तुल कर रह गये। यह मीनार भी मिट्टी होकर रह जायेगी।

मीना त्रस्त होकर बोली...'तब मेरी माँ कहाँ रहेगी ? भैया कहाँ रहेगा ? मरने के बाद मैं कहाँ रहूँगी ?'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

कहते कहते मीना काँप उठी थी। चेतराम ने उसे छाती से लगा कर प्रबोध दिया, 'घबड़ा मत बेटी। अब हम यह मनहूस जगह छोड़ देंगे। सुनसान मुझे प्यारा हो चला था पर तू उससे भी प्यारी है।'

छाती से लगी लगी मीना बेहोश भी हो गई, पर चेतराम को भान हुआ अपनी बात खत्म कर लेने पर।

उसी रात को दुःस्वप्न से जाग कर चेतराम ने देखा; झरोखे से नीचे उतर कर चन्दा की किरणों मीना की खाट पर सो रही थीं; पर मीना वहाँ न थी। तत्काल वह कोठरी से बाहर आया और मीनार की ओर बढ़ा। मीनार की सीढ़ियों का दरवाजा जिसे वह ताला लगा कर सोया था, खुला पड़ा था। वह झपट कर घूमदार सीढ़ियों से मीनार पर चढ़ने लगा। जगत पर पूनम का चाँद चाँदनी बरसा रहा था पर मीनार की घुमेरों में अन्धेरा जश्न मना रहा था। बीच-बीच में झरोखों से छन कर भीतर घुस आई चन्दा की विरल किरणें जैसे अन्धकार को ही मार्ग दिखा रही थीं। आवेग ने चेतराम के होश दुरुस्त न रखे थे। घुमेरों को भूल कर वह सीधे बढ़ने की कोशिश करता और तभी दीवाल से टकरा कर चत हो बैठता। उसके आगे ही मीना घुमेरों में हवा सी चढ़ रही थी। हाथ से न पकड़ पा कर आवाज से बाँधने की कोशिश में चेतराम चिल्लाया, 'मीना! बेटी ठहर जा। मैं भी आया।'

मीना ने बिना रुके हाँफते हुए कहा.....'तुम लौट जाओ बाबा मैं माँ के पास जा रही हूँ'—

'लौट जाओ' इन दो शब्दों के साथ चेतराम पन्द्रह बरस पीछे लौट गया। किसी ऐसी ही रात को एक जवान स्त्री इस मीनार की इन घुमेरदार सीढ़ियों से ऐसे ही ऊपर चढ़ने लगी थी! चेतराम ठीक आज ही की तरह उसके पीछे था। घुमेरे उसे बार बार सीधे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

बढ़ने से रोक लेतीं। माथा दीवाल से टकरा कर भन्ना उठता। वह रुकता फिर आगे बढ़ता और इस तरह फासला कम न हो पाता।

उसने चिल्ला कर कहा था—'तुम कौन हो ? लौट जाओ।'

आगे बढ़ती हुई औरत का जवाब था—'लौटने का ठौर होता तो आगे बढ़ती ही क्यों ?'

चेतराम ने फिर कहा था, 'ईश्वर की धरती पर बहुत ठौर हैं। मत बढ़ो। आगे मृत्यु हैं।'

स्त्री का जवाब था—'मृत्यु भी ईश्वर का दिया ठौर है। वह भी ईश्वर की सृष्टि है। मैं एक सृष्टि से दूसरी सृष्टि में जा रही हूँ।'

चेतराम ने हताश होकर पूछा था, आखिर क्यों ?

इसी क्यों के जवाब में, हाँफती हुई आवाज में, उसने कहा था 'तुम पुरुष हो। वह 'क्यों' किसी पुरुष की समझ में कभी न आयेगा। तुम भी न समझोगे। तुम स्वयं वह 'क्यों' हो।'

इसके बाद जब जिस किस तरह चेतराम मीनार की चोटी पर पहुँचा था, तो वहाँ उसने एक दुधमुँही बच्ची को छोड़ कर और किसी को न पाया था। बच्ची को चीखों से मीनार हिल रही थी।

इस घटना के स्मरण से चेतराम आतंकित हो उठा था। दीवाल की रगड़ से अंगप्रत्यंग क्षत-विक्षत। उसी हालत में जब किसी तरह चाँद के नीचे पर मीनार के ऊपर पहुँचा, तो अपनी पाली हुई बच्ची को यहाँ न पाया। हवा में तीन मलिन छायायें जैसे हँस रही थीं। एक युवती, एक किशोर, एक किशोरी। किशोरी को देख कर चिल्लाया, मेरी बच्ची मीना, तू भी छायाओं से जा मिली। आदमी और छाया का फर्क तेरी समझ में आ ही न सका।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

जवाब में छाया स्त्री बोली, 'लौट जाओ भले आदमी मीना मेरी है। मैंने अपनी बच्ची को जैसे छोड़ा था, वैसे ही पा लिया। आज मैं खुश हूँ। मेरा बच्चा, मेरी बच्ची, मेरी खुशियाँ मेरे साथ हैं। तुम लौट जाओ।'

वह छाया जैसे हँसी फिर रो पड़ी, उस हँसने रोने को सुन कर चेतराम की समझ में आज पहली बार आया कि रुलाई और हँसी की लहरें दो हैं, पर उत्स एक ही।

उस उत्स को जान कर अब वह भी लौटना न चाहता था, जैसे उसके पीछे उसका भी कोई ठौर न रह गया था। उसने शून्य की ओर पैर बढ़ा दिया। हवा में मौत की चीखें गूँज उठीं। न कोई रोया न कोई गाया। बस छाया छाया भर हो कर रह गई।

●

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding:

epal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathman

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: M

प्रकाशक

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,

पो० बक्स नं० ७०, पिशाचमोचन

वाराणसी–१

मु. : विद्यामन्दिर प्रेस (प्रा०) लि०, मानमन्दिर, वाराणसी–१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu